

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178479

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H 83.)**

Accession No. **H 2008**

Author **S13H .**

Title

This book should be returned on or before the date
last marked below.

हास्य-रस की कहानियाँ

हिन्दी तथा उर्दू के सर्वप्रसिद्ध लेखकों की चुनी हुई
हास्य-रस की ३४ कहानियों का अनुपम संग्रह

सम्पादक :

श्री० आर० सहगल,

भूतपूर्व सम्पादक तथा अध्यक्ष 'चौद' और 'मविध्य'

भूमिका लेखक :

हिमाचल प्रदेशीय कांग्रेस कमिटी के उपा-प्रधान

श्री० दौलतराम गुप्त

प्रकाशक :

कर्मयोगी प्रेस, लिमिटेड,

रैन बसेरा : इलाहाबाद

मूल्य चार रुपये

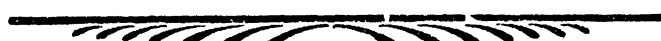


मुद्रक : श्री० आर० सहगल

प्रकाशक : कर्मयोगी प्रेस, लिमिटेड,

स्थान : रैन बसेरा, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, १९५०



विषय-सूची

१—भूमिका	...	पाँच से सोलह
२—आखिर खो ही गया [मिर्जा अजीम बेग चराताई]		१
३—गार्ह का साथ [श्री० चञ्चल]		२६
४—बेगम साहिबा का कुत्ता [श्री० रामचन्द्र गुप्त]		३७
५—तीन सौ वर्षे पढ़ले [श्री योगेश धूतिया]	...	४३
६—पेशबन्दा [हाजा लकलक]		५३
७—चचा छकन ने भगड़ा चुकाया [श्री सत्यद		
इम्तियाज अली 'ताज']		५८
८—शैतान की खाला [श्री० जयकृष्ण]	...	७८
९—आ-क्-छीं [श्री० रमेन्द्र कुमार]		८४
१०—कहानीकार मिस्टर वमा [श्री० इन्दु]	...	१०७
११—पीछा [श्री० कन्हैया लाल कपूर]		११४
१२—मुल्लाजों की बोबा [श्री० मदनमोहन लाल अग्रवाल]		१२१
१३—शेर का शिकार [मिर्जा अजीम बेग चराताई]		१२६
१४—मेरी फजीहत [श्री० प्राणनाथ बोहरा]	...	१४६
१५—मैं सम्पादक [श्री० रामशरण शर्मा]	...	१५७

(चार)

१६—रिफॉर्मर [श्री० जयकृष्ण]	...	...	१६३
१७—मिस्टर टॉम [श्री० रामचन्द्र गुप्त]	...	...	१६६
१८—विद्व [श्री० मदनमोहन लाल अग्रवाल]	...	...	१७५
१९—कॉलेज का स्वप्न [श्री० प्राणनाथ बोहरा]	...	...	१८६
२०—हमारी आशिकी [श्री० “लहरी लाला”]	...	...	१९६
२१—चिरई [श्री० सरयूपण्डा गौड़]	...	...	२१३
२२—अस्पताल के चक्कर में [श्री मदनमोहन लाल अग्रवाल]	...	...	२२२
२३—ह ' शरफ' [श्रीमती आर० सी० सहाय]	...	...	२३०
२४—सेल्समैन [श्री० मपसठराय बनारसी]	...	...	२३५
२५—जमादा ख साहब [श्री० रामचन्द्र गुप्त]	...	...	२३६
२६—भाभी जान का कमाल [श्री० मंमट]	...	...	२४५
२७—घनश्याम की सजनी [श्री० ‘नामालूम’]	...	...	२५५
२८—हारने का शुकुराना [श्री० विक्रमादित्य सिंह]	...	...	२६३
२९—शादी या बर्बादी [श्री० ‘गिरिजेश’]	...	...	२६६
३०—चचा छक्कन ने कारतूस भरे [श्री सत्यद			
इम्तियाज अली ‘ताज’]	...	...	२८१
३१—हमारी पड़ोसिन [हज़रत ‘कोई’]	...	...	२९१
३२—प्रोफेसर साहब [श्री० अशोक जी]	...	...	२९७
३३—राहीद [श्री० कन्हैयालाल कपूर]	...	...	३००
३४—बदबलन [श्री० राजेन्द्र नागर]	...	...	३१५





य ज मनुष्य को अपने सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में सुख, शान्ति, चैन और आराम की इतनी परवाह नहीं ; जितनी दुर्भिन्न, अकाल और बेकारी से संघर्ष करके केवल उदर-पूर्त के लिए पर्याप्त सामग्री जुटाने की चिन्ता हो रही है । भूख, बेकारी और मँहगाई से संतप्त समाज के सामने हँसने-हँसाने का प्रस्ताव फक्कड़पन माना जाएगा, प्रस्ताव सामने आते ही वह कह बैठेगा :

न छेड़ ऐ बादेबहारी, राह लग अपनी,
तुम्हे उठखेलियाँ सूझीं, यहाँ बेजार बैठे हैं !

समाज का प्रत्येक वर्ग आज की भयानक परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ जैसे-तैसे बच निकलता है तो वह एक क्षण भी आगम किए बिना आने वाले कल की चिन्ता में डूब जाता है। आगामी कल की विघ्न-वाधाओं और अचानक आ पड़ने वाली मुसीबत का एक मानचित्र उसके सामने अपनी भयानक आकृति लिए हुए आ उपस्थित होता है। भला ऐसा हालत में, जबकि अच्छी तरह बैठ कर दिल का गुबार निकालने के लिए रोने तक को भी पर्याप्त समय नहीं मिलता, हँसने-हँसाने का तो सवाल ही नहीं उठता।

इस तथ्य और निर्विवाद सत्य को भली प्रकार जानते हुए भी ; और स्वयं भी प्रत्येक भयानक परिस्थिति से दो-चार होते हुए, हम हँसने-हँसाने की सोच रहे हैं। दुःख को दुःख मान लेने से वह अपनी मात्रा से कहीं अधिक मालूम देने लगता है। जितना हम उसे अधिक मानने लगेंगे वह उतना ही अपना आकार 'सुरसा' के मुँह की तरह बढ़ाता ही जाएगा। अतः हमें 'सुरसा' से महावीर बन कर ही टक्कर लेना है। दुःख की इन घड़ियों का, जिनका समय-कल अनिश्चित है, हमें मुक्ताबला करना ही है; ऐसा किए बिना और कुछ कर भी तो नहीं पाते। क्यों न इन परिस्थितियों का मुक्ताबला हम अपनी स्वभाविक सहनशीलता, धैर्य और शूँता से ही करें। इन में से जिननी भी घड़ियाँ हंस कर टाली जा सकें, टालें, कुछ हँस के टालें, कुछ मर्दानावार लड़ के टाली जाएँ, परन्तु मुँह लटका

(सात)

कर, टालने के पक्ष में हम नहीं हैं। प्रत्येक अवस्था का सामना हम जिन्दादिली से करेंगे :

जिन्दगी जिन्दादिनी का नाम है,
मुर्दा-दिल खाक जिया करते हैं !

जीवन मुस्कानमय हो तभी सफल जीवन कहला सकता है। अर्थात् मुस्कान ही जीवन है। मन और शरीर का प्रफुल्लित रहना सुखमय जीवन व्यतीत करने के लिए कितना आवश्यक है, यह तो शायद किसी को बताने की जरूरत नहीं है।

केवल सांसारिक जीवन के लिए ही हास्य और विनोद को जरूरत है, ऐसा नहीं है। संयम आर त्यागमय जीवन में भी मुस्कान, हास्य और विनोद को विशेष स्थान प्राप्त है। श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गाँधी के वचनमृत, भाषण, वार्तालाप और दैनिक घटनाओं का अध्ययन करने पर कई जगह आप को गूढ़ आध्यात्मिक विषय, गम्भीर शास्त्रार्थ और शुष्क राजनीतिक बातचीत पर उन महापुरुषों द्वारा की गई ऐसी विनोदपूर्ण युक्तियाँ मिलेंगी, कि आप खिलखिला कर हँसने पर बाध्य हो जाएँगे।

हास्य को हमारे साहित्य का एक प्रधान अङ्ग माना गया है। परन्तु न जाने किन कारणों से अगाध संस्कृत साहित्य में हास्य विषयक साहित्य की अखरने वाली त्रुटि रह गई है, कि

(आठ)

बहुत ढूँढने पर भी आप को हास्य विषयक पर्याप्त साहित्य नहीं मिलता। वर्षों माथा-पच्ची करते रहने पर भी किसी सर्वमान्य निर्णय पर न पहुँच पाने वाले साहित्य की संस्कृत में कभी नहीं है। उपनिषद् तो तलाश करने पर १०१ मिलेंगे और एक-एक में अनेक ऐसी बातें भरी पड़ी हैं जिन पर आम चाहें तो जीवन भर सोचते रहिए। परन्तु एक भी “हास्योपनिषद्” नाम का ग्रन्थ हमें दृष्टिगोचर नहीं हुआ ! अट्टासह पुराणों में लिङ्ग पुराण तक है, परन्तु किसी ऋषि-मुनि ने “व्यङ्ग्य पुराण” की रचना क्यों न कर डाली ? यह बात एक साहित्य-प्रेमी होने के नाते हमें अब तक अखर रही है। संस्कृत के नाटक साहित्य में विदूषक एक पात्र है, जो सभी कवियों और नाटककारों का समान पात्र मालूम देता है। विदूषक का कर्तव्य अधिक भोजन वरना, पेटूपन दिखाना या तोंद फुला कर हँसाना होता है। इस से आगे, न तो विदूषक ही का कुछ कर्तव्य रह जाता है और न हमारे कवियों ही ने विदूषक को इस नपे-तुले हास्य की सीमा से बाहर निकाला। उन्नत समझ और इस तरह यह साहित्य का प्रधान अङ्ग संस्कृत साहित्य में भङ्ग हो कर रह गया दिखाई देता है !

हास्य केवल समय को हँस कर टालने की ही वस्तु हो, ऐसा भी नहीं है। वैद्यक और डॉक्टरों के अनुसार हास्य स्वास्थ्यप्रद है। वैद्यों और डॉक्टरों का ‘खुशकी और गर्मी’ के विषय पर मतभेद भले ही हो, लेकिन हास्य दीर्घ जीवन और स्वस्थ

(नौ)

जीवन के लिए आवश्यक है, इस पर दोनों, न केवल एकमत हैं, बल्कि इनका कहना है कि हास्य सौन्दर्य भी प्रदान करता है। वैद्य समुदाय हास्य को 'सर्व-वर्गीय च्यवन प्राश' कहे और डॉक्टर सभी जीवनदायक विटोमिन् मयुक्त पदार्थ ! इस नाम-मात्र के मतभेद को हम गिनती में लाना नहीं चाहते।

सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य भेंट करने का कार्य यदि हिन्दी संसार में किसी ने किया है, तो उनमें स्वनाम-धन्य पत्रकार और ख्यातिनामा प्रकाशक श्री० आर० सहगल का नाम सब-प्रथम आएगा। "चाँद", "भविष्य" और "कर्मयोगी" में हमेशा व्यंग्यमय कविता, कहानी और सामयिक चुटकुले छपते रहे हैं। उपरोक्त पत्र-पत्रिकाओं में जहाँ एक ओर गम्भीर और गवेषणापूर्ण सामाजिक और साहित्यिक तथा ओजस्वी राजनीतिक लेख निकलते रहे हैं वहाँ "रोनी सूरतों" को भी खिल-खिला कर हँसा देने वाला व्यङ्ग्य और विनोदपूर्ण सामग्री भी मिलती रही है। "गुलदस्ता" मासिक तो हिन्दी संसार की अकेली पत्रिका थी जो जिन्दगी को जिन्दादिली प्रदान करती थी। 'कुमकुमे' नाम की हास्यरस की कहानियों का एक संग्रह भी सहगल जी हिन्दी संसार को भेंट कर चुके हैं। और अब 'हास्य-रस की कहानियाँ' देकर हिन्दी साहित्य को सर्वाङ्गपूर्ण साहित्य कहजाने का गौरव प्रदान कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य में हास्य-रस का कितना अभाव है, यह छिपी हुई बात नहीं। यदि इधर-उधर से कुछ इकट्ठा भी कर

लिया जाए तो 'भाँग' और 'भोजन' के आस-पास घूम कर रह जाने वाली तथा-कथित हास्य-रस की रचनाएँ मिलती हैं। उन में भी अधिकांश ऐसी हैं जो अपनी सामग्री, शैली व कलेवर के कारण तो पाठकों को हँसा नहीं पातीं चाहे अपने भद्दे और फूहड़पन से भले ही हँसा दें। यह अखरने वाली कमा किसी भी हिन्दी प्रेमी के लिए अमह्य हो सकती है।

हिन्दी राष्ट्रभाषा बन चुका है। निकट भविष्य में संसार की बड़ी-बड़ी भाषाओं में इसे यथोचित स्थान मिलने की सम्भावना है। ऐसी परिस्थिति में हिन्दी साहित्य के भण्डार में किसी भी विषय पर उरयुक्त साहित्य की त्रुटि हिन्दी भाषा के भविष्य पर आघात का कारण हो सकती है। अतः कर्मयोगी प्रेस का यह प्रयत्न स्तुत्य और सराहनीय है कि वह हिन्दी साहित्य को सर्वङ्गपूर्ण साहित्य बनाने में ऐसी व्यवस्था कर रहा है कि किसी का उँगला उठा कर यह कहने का गुञ्जाइश न दी जाए, कि इसमें यह त्रुटि माजूर है।

हा य-विषयक हिन्दी तथा उर्दू के लेखकों को चुनी हुई और लिखी हुई रचनाओं का चयन करके भारता का भण्डार भरने में उनका प्रकारान कितना आवश्यक है, यह लिख कर समझाने की आवश्यकता नहीं। उर्दू में लिखी हुई व्यङ्ग्यपूर्ण रचनाओं का हिन्दी रूपान्तर, उर्दू लिपि से अनभिज्ञ साहित्य-प्रेमियों के हितार्थ और हिन्दी के लेखकों की सहायताथ कितना आवश्यक है और इससे लेखकों को कितना प्रोत्साहन

(ग्यारह)

तथा स्फूर्ति मिलेगी, इसका अनुमान लगाना कठिन न होगा। विनोद, व्यङ्ग्य और हास्य का मनुष्य के जीवन में क्या और कैसा स्थान रहता है, यह हमारे दैनिक जीवन अध्ययन करने पर भली प्रकार जाना जा सकता है। अच्छे और सुनके हुए व्यङ्ग्य से मनुष्य के मन, मस्तिष्क और शरीर पर ऐसा चमत्कारपूर्ण प्रभाव पड़ता है, कि जिससे नई चेतना और स्फूर्ति आ जाती है। निद्रा और आराम से शरीर भी थकान दूर की जाती है परन्तु हास्य मन, मस्तिष्क और शरीर को मुर्झाने नहीं देता। हस्य के भी अंग हैं—मन्द मुस्कान, मुस्कान और खिलखिला कर हँसना तथा यह मन, मस्तिष्क और शरीर पर अपना प्रभाव डालते हैं।

भड़ा व्यङ्ग्य, चोट करना या खिल्ला उड़ाना हास्य नहीं, यह तो द्वेष और मनमुटाव का कारण बन सकता है। व्यङ्ग्य वही है जो चोट किए जाने पर भी चोट मालूम न दे और आदमी मुस्काने या खिल खला कर हँसने पर मजबूर हो जाए। फ़ब्ती कसने और चुटकी काटने का ढंग हमारे हिन्दी के हास्य लिखने वालों को भवर्गीय जॉर्ज बर्नाडे शॉ की कृतियों से सीखना चाहिए और देखना चाहिए कि सुन्दर आर चुभता हुआ व्यङ्ग्य कैसे किया जाता है। उच्छङ्खलता और हास्य में बड़ा अन्तर है। पगड़ी उछलने और मार्मिक एवं शिष्ट व्यङ्ग्य करने में तथा व्यावसायिक चोट करने में दिन और रात का अन्तर है। यदि हमारे हास्य-रस के लेखक इन बातों क

(बारह)

ध्यान रख कर लेखनी का चमत्कार दिखाने लगे तो शीघ्र ही हिन्दी का हास्य रसात्मक साहित्य, लेख, कविताएँ और कहा-नियाँ एक अद्भुत वस्तु हो सकती हैं ।

हिन्दी भाषा को यदि अपना साहित्य भंडार विविध विषय सम्पन्न बनाना है तो निश्चित है, कि भारत का अन्य प्रान्तीय भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में करना ही होगा और प्रचलित शब्द भी अपना लिए जाने आवश्यक होंगे । ऐसा किया जाने पर साहित्य में वृद्धि नो होगी ही, साथ ही भंडार में भी, जो कि हिन्दी को सर्वमान्य राष्ट्र-भाषा बनाने में भारी सहयोग देगा । हिन्दी केवल अपना शब्द सागर लेकर सारे भारत का साहित्यिक भूमि को सींचने में रही । आज हमारी भाषा में अङ्गरेजा के कितने ही शब्द आकर घुल-मिल गए हैं जिन्हें पढ़े-लिखे नागरिक और अल्पपढ़ ग्रामीण समान रूप से समझ सकते हैं और प्रयोग में भी लाते हैं । हमें ऐसे शब्द बुरे नहीं मालूम पड़ते । यहाँ वर्तानु हमें उद्घोष से करना है । उसके मूल्यवान साहित्य को अपनाना ही पड़ेगा । उपेक्षा करने से हिन्दी साहित्य घाटे में रहेगा । हास्य को ही ले लीजिए । क्या गद्य और क्या पद्य, सभी ऐसा है जिस से हिन्दी की हास्य रसात्मक रचनाओं की तुलना नहीं हो सकती । स्वर्गीय महाकवि अकबर इलाहाबादी की व्यङ्गाक्तियों की यदि उपेक्षा की जाए तो उसकी पूर्ति हम क्या और कहाँ से लेकर कर सकते हैं ? अकबर के बाद भी यदि किसी ने

(तेरह)

व्यङ्गात्मक काव्य लिखा है तो वह उर्दू भाषा में ही सफलतापूर्वक लिखा गया है। यही अवस्था कहानी साहित्य और निबन्धादि की है, चाहे अब मान लीजिये या आगे जा कर, परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि उर्दू में व्यङ्गात्मक और ऐसा, जो कसौटी पर खरा उतर सके, लिखने वाले अधिक हैं। यदि यह कह दिया जाए कि सफल हास्य रस के लिखने वाले हैं ही उर्दू में तो यह अतिशयोक्ति न होगा। हिन्दी भाषा में लिखने वाले वही लेखक सफलता और ख्याति प्राप्त कर सके हैं, जो उर्दू भाषा के पण्डित और सिद्धहस्त लेखक थे। स्व० मुं० प्रेमचन्द, स्व० कौशिकजी, स्व० मु० शी नवजादिक लाल श्रावाभतव, और सर्वे श्री० कृष्णचन्द्र, कन्हैयालाल कपूर, उपेन्द्रनाथ अश्क और सुदर्शन जी के शुभनाम लिए जा सकते हैं जो पहले केवल उर्दू में ही लिखते रहे हैं और जो उर्दू भाषा के बड़े सफल लेखक माने जाते थे। बतलाना न होगा, हिन्दी को भी इन की देन सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। सर्वे श्री० शौकत थानवी, सैयद इम्तियाज अली, चिराग हसन, हसरत और हाजी लकलक आदि मुसलिम लेखक हिन्दी में नहीं लिखते, परन्तु हास्य-रस के माने हुए लेखक हैं। आज हमारा राजनीतिक और सामाजिक वातावरण कुछ ऐसा बन गया है कि उसकी छाप प्रत्येक दिशा में पाई जाने लगी है। डर है कि कहीं यह उपेक्षणीय वातावरण हमारे साहित्य और भाषा को दूषित न कर डाले। ईश्वर न करे कि ऐसा हो अन्यथा यह चीज हिन्दी साहित्य

(चौदह)

को भारी क्षति पहुँचाने का कारण हो सकती है। उपरोक्त हिन्दी और उर्दू के लेखकों की नामावली में हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही शामिल हैं और वहना न हंगा कि सभी कलम के धनी हैं। इन में से याद कुछ एक को, केवल इसलिए अलग कर दिया जाए, कि यह किसा एक भाषा या एक धर्म के अनुयाई हैं तो इससे हिन्दी के हास्य-रसात्मक साहित्य को कितनी हानि पहुँच सकती है, यह अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। हिन्दी के व्यङ्ग लिखने वालों की तुलना उपरोक्त लेखकों से करके अपने विषय में आप स्वयं जान जायेंगे कि हम इस दौड़ में कहाँ तक उनके साथ हैं और क्या हमारी वर्तमान परिस्थिति, यदि हमने इस विषय पर आज के वातावरण से उठ कर विचार न किया तो ऐसी नहीं, कि हम इस दौड़ में पिछड़ जायेंगे? आज हम साथ साथ भी तो नहीं हैं, आगे निकल जाने की बात करना बेकार है।

इस क्षेत्र में आज की भारत और पाकिस्तान के बीच राजनीतिक खींचातानी या हिन्दी-उर्दू के झगड़े को सामने रख कर कुछ सोचना या एक ऐसी भावना बना लेना जो हिन्दी भाषा का साहित्यिक भण्डार भरने में बाधा डालने वाली हो, खुद हिन्दी के लिए हानिकारक हैं। इसी सद्विचार से 'हास्य-रस का कहानियाँ' ऐसे लेखकों की रचनाएँ लेकर हिन्दी संसार के सामने रखी जा रहा है जो हास्य-रस के कुशल और सिद्धहस्त लेखक हैं। हमें विश्वास है कि पाठक भी इसे उसी दृष्टि से

(पंद्रह)

देखेंगे और अपनी गुण ग्राहकता का परिचय देंगे, जिस दृष्टि-कोण से कि यह उनके सामने रक्खी जा रही है। हिन्दी में हास्य-रस के वर्तमान लेखकों या लिखने के इच्छुकों को इस संग्रह को पढ़ कर इन कहानियों की भाषा, इनकी लोच एवं शैली से लाभ उठाना चाहिए।

हिन्दी के दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्रों में जो चुटकुले छपते हैं वे प्रायः यूरोप से आने वाले पत्र-पत्रिकाओं से उद्धृत किए जाते हैं। प्रायः हर रोज होने वाली घटनाओं से आवश्यक चुटकीली सामग्री लेकर चुटकुले और व्यङ्गात्मक साहित्य पैदा कर लेना उन लोगों के लिए कठिन नहीं। सम्पन्न और रोटी की किरा से परे रह कर सोचने वालों के लिए ऐसा करना सम्भव है। परन्तु हमारे लिए अभी ऐसा कुछ सोचना 'बेवक्त की शहनाई' होगा अतः हमें अपने यहाँ के इधर-उधर दिखरे हुए व्यङ्गात्मक साहित्य को एकत्र करके संतप्त और जीवन संघर्ष में उलझे हुए समाज को क्षण भर हँसने-हँसाने और भूति देने का प्रयत्न करना होगा ताकि समाज में नवचेतना आ सके और प्रत्येक भयानक परिस्थिति का हँसते-हँसते स्वागत करके उससे जूझ कर विजयी होने की वीरता प्राप्त की जा सके।

हँसते-हँसते फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाना, हँसते-हँसते सीने पर गोलियाँ खाना, अमुक कार्य की पूर्ति में हँसते हुए अमुक ने प्राण दे दिए, ऐसे मुहावरे हैं जिनका उल्लेख

(सालह)

इतिहास के पृष्ठों में आज भी सुरक्षित है । अतः हँसते-हँसते सब कुछ कर गुजरने का बात नई नहीं है, बल्कि हँसते हँसते दुख और दुखद परिस्थिति से टकर लेना वीरता है, ऐसा मानना पड़ेगा । ऐसी अवस्था में और आज के ज़माने में 'हास्य रस का कहानियाँ' हिन्दा संसार के सामने रखना एक आवश्यक, उपयोगी और सामयिक प्रयत्न ही माना जाएगा और इसका समुचित स्वागत होगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

चम्पा,
(हिमाचल प्रदेश) }

—दौलतराम गुप्त

२०-११-१९५०

आखिर खो ही गया !

श्रीमतीजी ने स्टेशन पर टिकट सँभालते हुए कहा—“ देखो सफ़र लम्बा है और इण्टर क्लास की गड़बड़, कहीं खो न जाना फिर !”

मैंने गौर से इस अहमक बीबी को देखा । मरदाना जज्जबात की क्या यह तौहीन नहीं है ? अरे, ओ हौआ की बेटी ! ज़रा गौर कर कि यह नक्काब चेहरे से हटा कर सर पर ढालते ही, तेरे होश जाते रहे ! गोया पर निकल आए ! मैंने कुछ बिगड़ कर कहा :

“तो हम कोई बच्चा तो हैं नहीं !”

“माफ़ किजिए”, श्रीमतीजी ने एक ताने के लहजे में कहा —“जैसे आप कभी पहिले तो खो नहीं गए हैं ।”

मैं क्या अज़र् करूँ, मुझे कैसा गुस्सा आया है ! ज़रा कोई इस मुन्तज़िम बीबी से यह पूछे कि नेकबख्त पहिले तो यह बता कि तेरा मियाँ तुझे पहुँचाने जा रहा है या तू उसे पहुँचाने जा रही है ? वह तेरा ज़िम्मेदार है या उसकी तू

आँखों पर पहरा लगाए रहती हैं। इधर किसी नकटी-चपटी औरत के पाँव के जेवर की आवाज़ छम से आई नहीं; कि उधर श्रीमतीजी की आँखें बगैर उस औरत को देखे हुए मेरी आँखों पर जम जाती हैं, कि कहीं उसे देखता तो नहीं हूँ !

क्रिस्ता मुखतसर यह, कि बक्रीया सामान भी वहीं आ गया। जगह काफ़ी थी और अब हम जम कर बैठ गए। इतमीनान से और फिर बहुत जल्द हमें यह भी मालूम हो गया, कि ऐसा क्यों किया गया है। महज़ इसलिए, कि न तो हम खुद कहीं खो सकें और न लोटा-ओटा फेक सकें। और फिर टीप का बन्द मुलाहज़ा हो—“ तुम्हें बार-बार पैसे-पैसे के लिए दौड़ कर आना पड़ता है।”



हमने कहा कि ‘हिन्दुस्तान टाइम्स’ खरीदेंगे, ताकि ताज़ी खबरें पढ़ें ! जवाब में हमें तस्वीरदार हफ़तावार ‘टाइम्स’ अख़बार दिखाया गया, जो पाँच-छः दिन का बासी था और कुली से पेशतर ही मँगवा लिया गया था। अब हुक्म यह, कि देखिए इसमें खबरें ! गो फ़िलहाल खुद तस्वीरें देखनी थीं। जब हमने कहा कि यह तो पुराना है, तो जवाब मिला कि “सब ठीक है।” और फिर जब हमने ताज़ा खबरों का उज़्र किया तो जवाब मिला कि “ जल्दी क्या है ? खबरें आगे चल कर किसी से पूछ लेना। वरना कोई और खरीदेगा उससे माँग कर पढ़ लेना।” चलिए छुट्टी हुई। खैर, सत्र किया।

२

गाड़ी चली और बहुत जल्द करीब के बैठने वालों से हमने बातें करनी शुरू कर दीं। एक संजीदा सूरत खाकी ड्रेस वाले ने मुझे बड़े गौर से सर से पैर तक देखा। इस तरह कि मुझे शुबहा हुआ, कि अब यह कहता है कि मैंने आपको कहीं देखा है। लेकिन बहुत जल्द मालूम हो गया कि यह बात नहीं है, बल्कि वजह और है। वह यह समझा, कि मैं निहायत ही रद्दी सूट पहिने हूँ, जैसे कि मालूम दे कि मैं किसी गोरे के तीजे में गया था और वहाँ उसके दादा का सामान नीलाम हो रहा था, उसमें से ले आया।

इन हज़रत ने मुझे कुछ मशकूक (सन्दिग्ध) नज़रों से देख कर श्रीमतीजी की तरफ़ भौँओं से इशारा करके कहा :

“यह कौन हैं ?”

मैं—“क्यों ? यह...”

वह—“आप उनके साथ हैं ?”

मैं—“जी हाँ, मैं.....।

वह—(बात काट कर) “ नौकर हैं आप ?”

मैं—“जी क्या फ़र्माया आपने ?” (हालाँकि मैंने सुन लिया था)

वह—“मेरा मतलब है कि आप...” (खामोश)

मैं—“मेरी बीबी हैं यह।” (गर्व से)

वह—“बीवी !” (इस तरह गोया में झूठ बोलता हूँ—
भक मारता हूँ)

मैं—“जी हाँ ।”

यह कह कर मैंने उस आदमी-नुमा शक्की हैवान को देखा ।
बखुदा उसकी जेरे-लब मुस्कुराहट और आँखों की गुस्ताखाना
हरकत ! गोया वह यक्रीन नहीं कर सकता, और नहीं करेगा !
मुझे कैसा गुस्सा आया है इस वहमी पर, कि बयान से बाहर !
गुफ्तगू खतम करने के बाद; यानी यक्रीन करने से इन्कार
करने के बाद, वह सिगरेट का धूँआ दूसरी तरफ एक
“हूँकारे” के साथ नहीं छोड़ने लगा, बल्कि जोर देकर गोया
कह रहा था मुझसे कि “तू झूठ बकता है ।”

मैं भला यह कब गवारा कर सकता था । मैंने उनका
हाथ पकड़ कर अपनी तरफ मुतवज्जह करते हुए कहा—“जनाब
को इस बारे में आखिर शक क्यों हुआ ?”

यह मैंने बहुत आहिस्ता से कहा कि श्रीमतीजी न सुन लें,
वरना नातका बन्द करतीं कि ऐसी बातें शुरू ही क्यों कीं ।
लेकिन इस बदतमीज और शक्की मिजाज को तो देखिए कि
मज्जाकिया लहजे में “भक” से धूँआँ मुँह से निकाल कर कहता
है और वह भी मुस्कुरा कर निहायत ही आहिस्ता से, गोया
राजद्वारांना लहजे में—“ जी...मगर आहिस्ता बोलिए । ”

यह कह कर उसका लापरवाही से दूसरी तरफ मुँह करके
धूँआँ उड़ाने लगना । मैं जल कर कवाब हो गया । मैंने दिल

में कहा कि ओ बदनसीब तू मत यक्रीन कर शक्की दरिन्दे—
जा चूल्हे में ! बीबी तो यह हमारी सोलह आना है—बिला
शिरकते-गैर, भाड़ में पड़ हमारी बला से, जहन्नुम में जा !
मत यक्रीन कर !!

३

इसके बाद मैंने खुद का गौर से मुआइना किया। सुना
करते थे, कि पहिले ज़माने में लोग कपड़े घड़ों में रखते थे,
जब सन्दूक आम न थे। आज पता चला कि यह रवायत
बिलकुल ग़लत है। बात दर-असल यूँ होगी कि ऐसे लोगों की
बीबियाँ मैले कपड़े निकाल कर अपने शौहरों को ज़बर्दस्ती
पहिना देती होंगी। चुनाबचे मुझे श्रीमतीजी पर बेहद
गुस्सा आया। सरक कर ज़रा करीब आया। वह समझी कि मैं
कुछ ज़रूरी बात कहना चाहता हूँ। लिहाज़ा उसने भी कान
बढ़ाया आगे, और मैंने चुपके से उनके कान में कहा—“क्यों जी
यह तुमने आखिर हमें समझा क्या है ?”

इसके जवाब में उसने मुझे भौंहेँ सिकोड़ कर इस तरह
देखा कि मुझे यह शुबहा हुआ कि दिल में कह रही है बजाय
ज़बान से कहने के—“अहमक !”

फौरन मुझे इस तरह गुस्ताखाना नज़रों से उसके देखने
पर और भी गुस्सा हुआ और फिर मैंने इसी तरह कहा :

“आखिर तुमने हमें समझा क्या रक्खा है ?”

“हूँ !” उसने आखिर को कहा—“खैर तो है ?”

मैंने भुन्ना कर कहा—ये हमारे अच्छे-अच्छे सूट, मँहगे-वाले, बल्कि सेकिण्ड क्लास में सफ़र करने वाले सूट, उम्दा-उम्दा टाइयाँ वगैरह किस दिन के लिए तुमने बनवा रखी हैं ? क्यों नहीं आखिर तुम पहिने देतीं ? चलते वक़्त हमने तुम से कितना-कितना कहा और कैसे-कैसे कहा, कि यह सूट मैला और दस दफ़ा का पहिना हुआ है । जिससे दो-चार दफ़ा जूता भी पोंछा जा चुका होगा, यह क्यों पहिने को दिया ? क्यों नहीं तुमने... ..”

वात काट कर, वह भी अहिस्ता मगर तेज़ी से बोलीं—
दीवानों की-सी बातें तो करो मत ; जानते हो, सफ़र में कपड़े खराब हो जाते हैं ।”

अब आपही इन्साफ़ कीजिए; कि ऐसे नामाकूल जवाब से मैं क्यों कर कवाब न हो जाता ? खुद तो पहिने हुए है रेशम के कपड़े, रेशम के मोजे, ग्यारह रुपए वाला जूता और हम पहिने हुए हैं एक मैला कुचैला सूट, टाई ऐसी, जैसे भंगिन का कमरबन्द, कॉलर ऐसा, जैसा टॉमी का पट्टा और पैर में हमारे एक अंगरेज़ी जूता ! यूँ कहिए एक नकटा-मुण्डा ! इनके कपड़े तो मैले न होंगे और हमारे हो जायँगे । या अल्लाह ! इन बदसूरत शौहरों की खूबसूरत बीवियों ने आखिर दिल में सोच क्या रक्खा है ! मैं जल ही तो गया और मैंने बल खाकर कहा :

“और यह तुम जो अपने अच्छे कपड़े पहिने हो, ये मैले होगें ?

“रेल में ये बातें नहीं.....” यह कहकर, गोया एक घसीट हा पेंच था, कि खींच कर वह काटा ! जवाब आँखों से गुस्सा के इजहार के जरिए से खतम !

मैंने भुन्ना कर इस चटाखोदार वरजस्तगी पर गोया गुस्सा का घूँट-सा पिया; मगर सब आखिर कौ न हुआ और फिर मैंने जोश में आकर कहा :

“आखिर यह भी कीई.....।”

मगर मेरी बात तेजी से काट दी गई, यह कह कर कि “और जो सफर में कोई मिलने-जुलने वाली मिल जाय तो ?.....बस बच्चा बनते हैं।” यह कह कर दूसरी तरफ मुँह मोड़ लिया। गोया आगे बहस नामञ्जूर है। मैं सिवा इसके क्या करता, कि जलता और सुनता रहा !

इतने में गाड़ी रुकी। एक सब-इन्स्पेक्टर साहब मय अपनी कौज के और इस कदर सामान के ‘धक-पेल’ करते हुए दाखिल हुए कि, खुदा की पनाह। घबड़ा कर श्रीमतीजी ने कहा—हमें सेकिएड क्लास का टिकट बनवा दो.....जल्दी..... जल्दी।”

मैंने कहना चाहा —“मगर।”

“जल्दी...यह लो...जल्दी-जल्दी।” यह कह कर मुझे टिकट दिए और फिर—“जल्दी करो”। मैंने मोचा अच्छा है।

सेकिएड क्लास में चलकर उससे खूब लड़ूँगा; और कौरन दूसरा सूट निकाल कर पहिनुँगा; लिहाजा मैं टिकट बनवाने दौड़ा।

४

इन रेलवे बाबुओं को इतनी जम्हाइयाँ आती हैं और फिर ऐसी-ऐसी, कि छोटी-छोटी आँखें मोटी-मोटी चेहरों पर मे खो-खो जाती हैं। दिल का खून सिमट कर नाक की फुनगी पर आ जाता है और फिर उसके साथ अँगड़ाइयाँ अलावा ! ऐसी बे-तुकी और बे-मौक़ा, कि बयान से बाहर। यह नहीं देखते कि हमारा वज़न क्या है, और जिस कुर्सी पर हम खुद धरे हुए हैं वह कैसी है ? इन्हें तो इससे बहस ही नहीं; बस अँगड़ाई लेने से काम। मैंने तो कहा कि हज़रत मुझे कानपूर तक के सेकिएड क्लास के टिकट बनवाने हैं। उधर इसके जवाब में अन्वयल तो मुझे उन्होंने गौर से देखा और शायद किसी दूटे-कूटे अंगरेज़ का बटलर समझ कर जवाब में अँगड़ाई लेना मुना-सिब समझी (मय जम्हाई)। कुर्सी जो चरचराई तो एक दम से ऐसा मालूम हुआ, कि जैसे जादू के जोर से चेहरे पर आँखें पैदा हो गईं। यह इटावा का स्टेशन था और मैं पुल पार करके प्लेटफ़ॉर्म के उस तरफ़ गया था टिकट बनवाने। बाबू जी ने बड़ी इनायत की जो कदरे-ताम्बुल के बाद एक लापता टिकट-चैकर का हवाला दे दिया। मैं उनकी तलाश में लग गया और उन्हें हर जगह तलाश किया। कोई जगह न छोड़ी, सिवा स्टेशन के पाखाने के। गर्ज इसी तलाश में था, कि वह

खुद मुझे तलाश करते आ पहुँचे। मैंने टिकट हवाला करके बदलने की फरमाइश की तो उन्होंने कहा—“दाम” और मैंने जवाब में कहा—“अरे !” वटुआ रुपये-पैसे का श्रीमतीजी के पास ! लिहाजा दौड़ा एकदम से टिकट-विकट छोड़ कर दाम लेते। दौड़ा ही था, कि खयाल आया कि कहीं टिकट-चैकर मय टिकट के गायब न हो जाय ; लिहाजा दौड़ा वापस और उधर रेल ने दी सीटी। जब तक मैं झपट कर उनके हाथ से टिकट वापस लूँ, रेल चल दी ! अब बजाय पुल पार करने और उस तरफ पहुँचने के मैं रेल की पटरी फाँद कर दौड़ा बुरी तरह और जो डिब्बा सामने आया, उसी में बैठ गया। अब हाँफते-हाँफते खिड़की से सर निकाल कर बाहर जो देखता हूँ तो रेल तो प्लेटफॉर्म से बाहर और श्रीमती जी खड़ी हुई हैं मय असवाब के ! बौखलाया हुआ तो आया ही था बस देखते ही उछल पड़ा। इरादा किया कि खिड़की खोल कर कूद जाऊँ; मगर एक बड़े मियाँ बैठे थे, मोटे से। उन्होंने शायद सोचा कि यह बाबला है, लिहाजा हाथ पकड़ लिया। जल्दी में झटके पे झटके देता हूँ, मगर हाथ नहीं छोड़ता। वह न मालूम क्या पूछते हैं, और मैं क्या कहता हूँ। खिड़की उन्होंने बन्द करते हुए मुझे छोड़ा तो मैं जञ्जीर खींचने दौड़ा। दो-तीन झटके दिए मगर भला उसे कहाँ जुम्बिश। दूसरों से कहता हूँ तो वह बजह पूछते हैं, यह सब पल भर ही में हो गया। बजह बताई तो फिर बड़े मियाँ ने हाथ पकड़ कर बिठा लिया और

कहा—“आखिर इस क़दर घबराहट क्यों रहे हैं ? तार दे देना अगले स्टेशन पर से, और दूसरी गाड़ी से वापस आ जाना ।” मेरी समझ में बात आ गई, भाँक कर फिर श्रीमतीजी को देखने की कोशिश की । खयाल आया कि ठीक है, ऐसा हो चुका है । उस दफ़ा जब रह गया था तो श्रीमतीजी चली गई थीं । बाद में उसने कहा था कि मैंने गलती की, अगले स्टेशन पर उतर कर तुम्हें तार दे देती और तुम आ जाते । ठीक है । मैंने कहा—दे दूँगा और वह आ जायगी ।

५

एक्सप्रेस के रुकने का दूसरा स्टेशन जसवन्तनगर था । वहाँ उतरा तो पेशतर ही से तार मौजूद था । लिखा था कि इन नाम के आदमी को रेल के डिब्बे से यह कह कर उतार लो कि तुम्हारी बीबी इटावा पर उतर गई हैं । मैं उतर ही चुका था । मेरे पास तार के पैसे भला कहाँ ? मगर मालूम हुआ कि तार मुफ्त दिया जायगा । लिहाज़ा मैंने तार दिलवा दिया कि “उतर पड़ा हूँ । घबड़ाना मत । दूसरी गाड़ी से चली आओ ।”

मेरे यहाँ पहुँचने के थोड़ी ही देर बाद एक माल गाड़ी इटावा जा रही थी । मैंने दिल में सोचा कि फुरकत और जुदाई के सदमे कौन उठाए ? बेहतर है, इससे ही क्यों न चले चलो ? मालूम हुआ कि सेकिएड क्लास का टिकट लेना पड़ेगा । जब हमने कहा—रुपए हैं नहीं; तो यह भी तै हो

गाया कि अच्छा, तुमको मुफ्त पहुँचा दिया जायगा। हमने कहा बेहतर है, और खुश थे कि गार्ड साहब ने बड़े इतमीनान से प्रोग्राम बनाया। लेकिन यह कि इतना तो यकीन था कि कभी न कभी यह गाड़ी जरूर ही जायगी। मगर यह पता न था कि वहाँ पहुँचेगी कब? सवारी गाड़ी जो इसके बाद जायगी उससे पेशतर या बाद में। तहकीकात से मालूम हुआ कि सवारी गाड़ी बीच के किसी स्टेशन पर नहीं रुकेगी और यह जरूर रुकेगी। पहुँचने के बारे में उम्मीद थी कि सवारी गाड़ी से कुछ पहिले पहुँचेगी। लेकिन ऐसा न हुआ तो फिर शायद सवारी गाड़ी के भी आध घण्टे बाद पहुँचे। और किलहाल तो यही पता नहीं था, कि यह मक्कार ठीक-ठीक छूटेगी कब। जहन्नुम में जाय ऐसी गाड़ी, हमने कहा। और इरादा बदल दिया, और लगे सवारी गाड़ी का इन्तज़ार करने।

इन्तज़ार भी बुरी चीज़ है। और फिर ऐसे मौक़े पर। तंग आकर हमने भी बड़े इस्तक़लाल से एक कुर्सी पर बैठ कर आँखें नीमबाज़ करके पैर हिलाना शुरू कर दिए। यहाँ तक कि थक गए, फिर बड़ी देर तक आँखें खोल कर सीटी बजाते रहे। उसके बाद फिर पैर हिलाए। ख़ामख़वाह घड़ी बार-बार देखी। शुबहा हुआ कि सूइयाँ चल नहीं रही हैं। कान से कई बार लगा कर देखा। बार-बार अपनी घड़ी में बज़ देखा और फिर स्टेशन की घड़ी देखने गए! कुछ बस न चला तो ख़याल आया, कि लाओ न सही कुछ पानी ही पीएँ। पानी पीने जा रहे थे,

कि खयाल आया कि पेड़ा खाकर पानी पीना ठीक रहेगा, पहुँचे पेड़े वाले के पास। कहा, दो आने के पेड़े देना। वह तोलने को हुआ तो खयाल आया कि कैसे ? और उससे पेड़ों का भाव पूछ कर महुँगे होने की बजह से खरीदारी से मुआजरत चाही और वहाँ से सीधे स्टेफॉर्म की कगर पर चहलकदमी करना शुरू की। बहुत जल्द तै कर लिया कि इस तरह चहल-कदमी करना चाहिए, कि हर कदम नपा-तुला पत्थर के टुकड़े के अन्दर ही पड़े। चुनाऊँचे इन इन्तजाम से स्टेफॉर्म के किनारे-किनारे टहल कर उसके पत्थर दो दफा गिन लिया। उनके बाद सिगनलों को जाकर दबाना शुरू किया। एक कुली ने स्टेशन-मास्टराना शान से आकर रोका और बताया कि यह बात तो सख्त मना है। क्रिस्ता मुख्तसर क्या बताएँ, कि किस तरह हमने वक्त काटा है !

६

हमारी तरफ से श्रीमतीजी की तरफ गाड़ी पहिले जाती थी। और इसी का हमें इन्तजार था। गाड़ी आई और हम जगैर टिकट लिए बैठ कर रवाना हुए; क्योंकि हमारे पास टिकट मौजूद ही थे। रवाना हुए तो आखिर क्यों न पहुँचते? पहुँचे, और यह सोच कर, कि श्रीमतीजी वेटिंग रूम में बैठी होंगी, उसमें दनदनाते घुसे चले गए। वहाँ बजाय श्रीमतीजी के, एक मोटा-सा अंगरेज धरा था। उसने सोचा होगा कि यह बटलर किधर से घुस आया। वह बोला—“हूज...डैट.....?”

उल्टे पाँव लौटे वहाँ से। हमें भला कहाँ, फुर्त कि अंगरेज से उलटें या उसे जवाब दें। इधर देखा, उधर देखा, तरह-तरह के शक और शुबाहात आ रहे थे। एक बाबू साहब मिले। उनसे हमने पूछा :

“क्यों जनाव ?”

“फरमाइए”

मैंने कहा—“यहाँ पर एक मुसलमान लेडी.....
मुसलमान औरत ?”

“हाँ, हाँ, वह बोले, वही न जिनके मियाँ छोड़ कर उन्हें आगे चल दिए। अजीब अहमक हैं वह भी... (एक दम से कुछ शुबहा करके)...मगर आप ?...वह तो गईं शायद।”

“कहाँ गईं ? मैंने गुस्से को ज्वत् करते हुए कहा। और फिर वैसे भी परेशानी गुस्से पर गालिब थी !

“अगले स्टेशन पर.....शायद जसवन्तनगर।”

“कब ? कैसे ? हैं ! कब ?” मैंने हवास-वाखता होकर पूछा।

“मालगाड़ी पर गईं.....असबाब तो उनका जाते मैंने भी देखा था...जरूर गई होंगी। गई मगर... . मगर आप ?” (उन्होंने मुझे सर से पैर तक देखा) मैंने कहा—“वह मेरी बीबी हैं।” यह कह कर मैंने दूसरी तरफ़ कसदन नज़र की।

“आप की ?” यह कह कर शक करके वह चलते-चलते रुक गया ! “आपकी ?” उसने फिर कहा।

“जी हाँ।” मैंने “हाँ” करके कहा—“तहकीकात करके देख लीजिए।”

“ओ हो माफ़ कीजिएगा” उसने कहा—“आइए।” और यह कह कर वह आगे चला। हम दोनों बुकिंग ऑफिस पहुँचे। वहाँ तहकीकात को तो मालूम हुआ कि वह गई मालगाड़ी से। और फिर मालगाड़ी भी कौन-सी? वह जो रास्ते में छोटे स्टेशन पर हमारी गाड़ी को मिली थी!

अब ज़रा गौर कीजिए, कि एक तो वैसे ही माशाअल्ला खूबसूरत! फिर जोरू गड़बड़ में पड़ जाने की वजह से और भी बदहवासी। लाख यक़ीन दिलाता हूँ इन नामाकूल वाबुओं को कि जनाब ग़लती उस बेवकूफ़ बीबी की है, न कि मेरी; मगर वह मूँजी कहते हैं कि “जनाब वह तो बड़ी होशियार मालूम होती हैं। ग़लती खुद आप ही की है कि आप क्यों चले आए, जब आपका रास्ता उधर ही था?”

अब बताइए कि मैं इन अहमकों से क्या यह कह देता कि हमें उसकी कशिश खींच लाई, जुदाई का दुःख खींच लाया। इतनी अक्ल ही नहीं जो समझें। लगे कठहुज्जतियाँ और बहसें करने। मैंने बहुत कुछ कहा कि इस वजह से चला आया कि गाड़ी अव्वल इधर आती है। मगर यह मूँजी रेलवे वाले अजी एक बकवास करने वाले और नालायक होते हैं। न मानना था, न मानें। क़ायल न होना था, न हुए। खैर मैंने दिल में कहा कि इनके दिमाग़ रेल की सीटियों और इञ्जिनों की “ज़क-ज़क,

भक-भक" ने उड़ा दिए हैं, और फिर श्रीमतीजी एक चलता पुर्जा, उसने भी कुछ लगाई होगी; लिहाजा ये सब काबिले-रहम हैं । चुनाञ्चे उन लोगों को तो मैंने उनके हाल पर छोड़ा । और कहा उसने कि खौर, खता और गलती मेरी सही, अब आप ही इतनी अक्लमन्दी करें कि एक तार दे दें उसको अगले स्टेशन पर कि मैं यहाँ हूँ, मगर खबरदार अब तुम वहीं रहना !

७

इसके बाद अब मैंने सोचा कि क्या करना चाहिए, गाड़ी में बहुत वक्त था । भूक अलग लग रही थी । सोचा कि ज़रा शहर में चल कर इस्लामिया स्कूल के पुराने साथियों में से किसी को ढूँढ़ें ? चुनाञ्चे पहुँचे एक साहब के यहाँ जिन्हें हमने आठवीं जमात में अर्सा हुआ छोड़ा था और यकीन था कि अब आ गए होंगे नवीं जमात में । खुशकिस्मती कि वह मिल गए और खूब मिले । जो बातें होती हैं, वही हुई । उनका यहाँ जिक्र फिज़ूल । अब यहाँ एक गलती हम से हो गई । वह यह कि ठीक टाइम गाड़ी का मालूम करना भूल गए । गाड़ी का इस किस्म का नाम याद रह गया, जैसे साढ़े दस बजे वाली; पौने पाँच बजे वाली वगैरह । यह गलती हमने उस वक्त महसूस की जब वक्त करीब आया और हमने अपने दोस्त से चलने को कहा । उन्होंने हस्व कायदा यकीन दिलाते हुए रोकने की कोशिश की यह कह कर, कि गाड़ी में अभी

देर है। लिहाजा कुछ देर रुकने के बाद अन्दाज़न चल दिए। स्टेशन पहुँचे; जब तक एक्का पर से उतरें-उतरें, गाड़ी प्लेटफॉर्म छोड़ चुकी थी।

या मेरे अल्लाह ! अब मैं क्या करूँ । दोस्त से दाम लेकर तार दिया, श्रीमती जी को। गाड़ी इत्तिफाक से छूट गई और हम दूसरी गाड़ी से शर्तिया आते हैं।

तार देने को तो दे दिया हमने; मगर यह सोच रहे थे कि क्या होगा ! शामत आ जायगी। वह लड़ाई होगी कि बयान से बाहर। मगर अब मजबूरी थी। इन दोस्त को यह सज़ा दी कि कहा कि बैठो अब हमारे साथ, और रुखसत करके जाना !



गाड़ी आई और हम रुखसत हुए। जसवन्तनगर का स्टेशन आया। हम समझे थे, कि स्टेशन पर असबाब लिये तैयार खड़ी मिलेगी, मगर वहाँ कोई भी नहीं। जल्दी से उतरे और एक कुली-नुमा आदमी से जो पूछा तो उसने जवाब दिया कि “सो रही होंगी वेटिंग रूम में”। मुझे क्या मालूम कि कम्बख्त ने “माजी तमन्नाई” के नए सेरा में जवाब दिया है। चुनावचे यह सुनते ही मैं वेटिंग रूम की तरफ दौड़ा, और जोर से, साथ ही कुली को भी आवाज़ दी। क्या देखता हूँ कि दर्वाज़ा बन्द, वह भी अन्दर से। राज़ब हो गया। मैंने दिल में कहा—सो रही है, घोड़े बेच कर, और यहाँ गाड़ी

निकली जाती है। भाँक कर देखा तो अँधेरा। जानता ही था कि बग़ैर बत्ती कम किए नींद ही उसे नहीं आती। अब मैंने बदहवास होकर किबाड़ घड़घड़ाना शुरू किए, मगर वहाँ जवाब नदारद। इतने में रेल ने सीटी दी। मैं और भी घबड़ा गया। समझ में न आया क्या करूँ। नाउम्मीद होकर अपने डिब्बे की तरफ़ लपकने को हुआ कि टोपी तो ले लूँ कि एक कुली ने रोका। रेल ने एक और सीटी दी। कुली से मैंने कहा—ठहरो, और लपका अपने डिब्बे की तरफ़ टोपी लेने। घबड़ाहट में न मालूम किस डिब्बे में घुसा। वहाँ से निकला और अब इधर दूँढ़ता हूँ और उधर, मगर जल्दी में अपना डिब्बा नहीं मिलता। रेल ने एक और सीटी दी, और अब मुझे खयाल आया कि वह है अपना डिब्बा। रेल चली और मैं लपका। मालूम हुआ गलती हुई और डिब्बा पीछे है। मगर अब गाड़ी ने रफ़्तार पकड़ी। खड़े का खड़ा रह गया। अपना डिब्बा सामने से गुज़रा। मैंने देखा कि वह सामने मेरी टोपी रक्खी है। एक आलमे बे-अख़्तियारी में जैसे टोपी उठाने की कोशिश की। मगर 'घड़-घड़-घड़' गाड़ी गई।

८

खैर मैंने दिल में कहा—टोपी गई तो क्या हुआ ! अच्छा ही हुआ जो श्रीमतीजी ने नई टोपी नहीं दी थी। अब इतमीनान से आठ घण्टे वेटिंग रूम में लड़ेंगे और फिर सोएँगे। सुबह

की गाड़ी से जाना होगा । चुनाञ्चे वेटिंग रूम के पास आया । दर्वाजे को जोरों से पीटा । वही कुली आया और कहने लगा “अन्दर से बन्द है और वेटिंग रूम का चपरासी पुश्त पर से ताला डालता है । आपको खुलवाना हो तो स्टेशन मास्टर से कहिए । ”

मैंने ताज्जुब से कहा—तो इसके अन्दर कोई नहीं है ? कोई औरत.....”

“एक बेगम साहिबा आई थीं मगर वह नो गईं । ”

“अरे ! ” मैंने उछल कर कहा—“किधर ? ”

“इधर” कह कर कुली ने एक अन्दाज-बेनयाजी से रेल की पटरी की तरफ उंगली उठा दी ! मैंने इन्तहाई दर्जा परेशान होकर एक गहरी साँस ली । जी में आया कि इन रेलवे वालों से ख्वाह-मख्वाह लड़ पड़ूँ । अब मुझे पता चला कि पुराने ज़माने की बैलगाड़ियों के सफ़र में क्या-क्या फ़ायदे थे । लाख तकलीफ़ें थीं मगर बख़ुदा इस दर्जा परत कर देने वाली कोई तकलीफ़ न होगी । श्रीमतीजी की यह हरकत कनई नाकाराबले माफ़ी है । उसको हर्गिज़-हर्गिज़ नहीं जाना चाहिए था । आखिर क्यों चल दी ? कैसे चल दी ? उसे हक़ क्या था चल देने का ? खैर, देखा जायगा । इसी तरह मैं देर तक बल खाता रहा मगर बहुत जल्द फ़ायल होना पड़ा कि रात का वक़्त है और मौसम सर्दी का है और दुनिया में कोई चीज़ अलावा हैरानी और परेशानी के और भी है और इसका नाम शायद नौद

है—मगर बहुत जल्द जाड़े ने कहा—क़िवला दो आलम, न तो रात ही कोई चीज़ है और न नींद, अगर है भी तो बस खाकसार ! और यही मुझे तसलीम करना पड़ा । लेकिन चूँकि क़िलहाल मुझे जाड़े पर कोई मज़मून नहीं लिखना है, लिहाज़ा मौसमी सख़्तियों का तो ज़िक्र छोड़िए, सिर्फ़ यह सोचिए कि आग तापते क़ुलियों के हल्का में बैठकर अगर वदन को गर्मी पहुँचाना नामुमकिन था, तो यह भी नामुमकिन था कि बग़ैर ओढ़े-बिछाए सो रहूँ या एक और आदमी की एक मैली-सी रज़ाई खीन लूँ जो मुझे दिखा-दिखा कर ओढ़ रहा और ललचा रहा था । बस, यों समझिये कि मालूम होता था कि अब सुबह नहीं होगी और यों ही सुकड़ कर मर जायँगे । पैसा पास नहीं । हाँ, टिकट एक छोड़ दो अदद थे ।

ज्यों-त्यों करके सुबह हुई, गाड़ो भी आई । बैठ भी गए । और मञ्जिले-मक़सूद पर यह हुलिया लिए पहुँच भी गए कि रात के जागे हुए, और सुकड़े-सुकड़ाए मैला सूट पहिने और नंगे सर ! मगर वहाँ पहुँचे तो जनाब जोरू नदारद !

या मेरे अल्लाह । अब मैं क्या करूँ ? वह किधर गई । आख़िर कहाँ खो गई ? एक जगह और तलाश कर आया । मगर वहाँ भी पता नहीं । आख़िर तार दिया सुसराल और वहाँ से जवाब आया कि ब-ख़ैरियत पहुँच गई, जैसे वहीं जा रही थीं । अब सिवा इसके क्या चारा था कि यहाँ से रुपया कर्ज़ लेकर सुसराल पहुँचें ! चुनाञ्चे पहुँचे ।

६

शाम के कोई पाँच बजे होंगे जब मैं सुसराल पहुँचा। दाखिल हुआ हूँ तो क्या देखता हूँ कि सुसर साहब नमाज पढ़ चुकने के बाद हुआ माँग रहे हैं। दो-तीन छोटे-छोटे साले-नुमा लड़के एक चारपाई पर बैठे हुए थे। उछल पड़ा उनमें से एक और मैंने भी उसे पहचान लिया। किस तरह इस नालायक ने गोया खुशी के लहजे में भराई हुई आवाज़ में चुपके से कहा है कि मैं जल-भुन कर कवाव हो गया। सारा चेहरा खुशी से चमक उठा और तेज़ी से चारपाई से वह कहता हुआ उतरा—“भाई मियाँ ...खो....खो गए...मिल...आ...।” यह कहता हुआ वह अन्दर दौड़ा ! बकीया दोनों उसके पीछे। अन्दर पहुँच कर उसने शायद हलक़ फाड़ कर नारा मारा ।...“तुम तो कहती थी भाई मियाँ खो गए...मिल...। (सुनाई नहीं दिया) मैंने सुसर साहब को सलाम किया ! इशारे से उन्होंने रोका और जल्दी हुआ खतम करके कहा—“वालेकुमअस्सलाम—ज़िन्दाबाद अरे मियाँ कहाँ खो गए थे ?” (मुस्कुराते हुए)

मैं भला क्या कहता। जी मैं तो यही आया कि लुग़त कहीं मिलती तो बताता कि क़बला खो जाना और चीज़ है और रह जाना और चीज़ है। फिर यह खाकसार तो इस मर्तबा रह भी नहीं गया बल्कि आपकी साहबज़ादी साहिबा की बदौलत यह सब कुछ ज़हूर में आया है। मैं क्या जवाब देता। इख़ित-सार के साथ इस तरह समझाया कि तमामतर इल्ज़ाम श्रीमती

जी पर आए। मगर वह जो किसी ने कहा है कि अपने और बेगाने में फर्क है, सच कहा है। लगे हज़रत वही क्रिस्ता बयान करने, यानी गिनाने, चीजें जो सफ़र में मुझसे खो गई थीं और फिर बाद में टीप का बन्द—“तुम्हारे साथ तो ममनूरात का सफ़र करना ख़तरे से खाली नहीं।”

इनसे निपट कर घर में पहुँचा तो श्रीमतीजी की एक परदादी क्रिस्म की बहरी औरत को सास साहिबा चीख-चीख कर उखड़े-उखड़े जुमलों में मेरे मिल जाने की खुशखबरी सुना रही थीं।
“...आ गया.....हाँ आगया.....अभी...”

“मिल गया ?” बड़ी बी बोलीं।

“हाँ मिल गया.....”

सास साहिबा बोलीं—“मिल गया.....वह क्या खड़ा है... सलाम करता है।”

“जीता रहे। हज़ार उम्र हों.....उनके दुश्मन खो जाएँ वग़ैरह-वग़ैरह।

बड़ी बी दुआएँ दे रही थीं कि घर की हड़बोंग सुन कर पड़ौसिन ने आवाज़ दी। बोल-चाल के लिए दीवार में एक सुराख कर लिया गया था। वहाँ एक और बुढ़िया खड़ी पड़ौसिन को कुछ बताने लगी। पूरी बात मैंने नहीं सुनी, मगर हाँ इतना ज़रूर सुना :

“.....उसके दुश्मन.....थे मिल.....हाँ.....अभी...”
अब मेरे ज़ब्त की इन्तिहा हो गई थी। जी चाहा कि फट पड़ूँ

और एक मिरे से सब की खबर ले डालूँ। आखिर मैंने दबी ज़बान से कहा :

“कौन खो गया था ? कोई वच्चा हूँ जो मैं खो जाता। ख़ाम-ख़वाह आप लोग...।”

मैं एक दम से चुप हो गया। सामने अपने कमरे से श्रीमती जी उँगली से खामोशी का इशारा कर रही थीं। मैं उधर देख ही रहा था, कि एक और दादी ने पीछे से अपनी दिलचस्प आवाज़ में कहा—

“मेरी चमेली की कली ! कहाँ खो गई थी ?”

उन्हें देख कर मुझे वैसे ही हँसी आती है। हँस कर मैंने कहा—“दादी सलाम”। उसके जवाब में इन्होंने दुआ देकर मेरी बलाएँ लीं यह कहते हुए—“क्या बताएँ वेटे, जब से मैंने सुना कि तू खो गया दिल उल्टा आता था। सद्का के मैंने माश माने हैं।”

“आप भी कैसी बातें करती हैं !” मैंने कुछ बुरा मानते हुए कहा—“कोई वच्चा हूँ जो मैं खो जाता। आखिर कोई बात भी है, जो सब कह रहे हैं कि मैं खो गया था।”

“फिर और कैसे खो जाते हैं ?” दादी तेज़ होकर बोलीं—“आखिर तेरी घरवाली कह रही है कि तू खो गया था। जिसका अता-पता न मिले कि किधर गया और कहाँ रह गया तो उसे तो यही कहेंगे कि खो गया.....। और फिर मियाँ अल्लाह रक्खे तुम हो भी बिलकुल भोले-

अहमक ! दुनिया-जहाँ की चीजों खोते-फिरते हो । आए दिन सुनने में आता है कि यह खो गया, वह खो गया । फिर कल सुना कि लो तुम खुद कहीं खो गए !”

मैंने कुछ हँस-हँस कर और कुछ बिगड़ बिगड़ कर बताया कि न तो मैं खो सकता हूँ और न खो गया था और आयन्दा इस शरारत-भरे लफ्ज का इस्तेमाल मुझ पर न किया जाय । मगर यहाँ का तो बाबा आदम ही निराला है । जब मैंने कहा कि खोया नहीं, बल्कि रह गया था तो वह बोली कि “बेटा रह तो हमारी बच्ची गई थी, तुम तो आगे जाके न मालूम कहाँ खो गए ।”

क्रिस्ता मुख्तसिर, थोड़ी देर इनसे और वहस की और जैसे बना इन से जान छुड़ाई । इसके बाद श्रीमतीजी से हुज्जत और वहस हुई ! उसने मुझे इल्जाम दिया और मैंने उसे । वह इटावा पर उतरी और सेकिण्ड क्लास में बैठी और जब देखा कि मैं गायब हूँ और रेल चल देगी तो उतर पड़ी और उधर मैं दूसरी तरफ से दौड़ कर बैठ गया । मैंने इरादा तो लड़ने का बहुत कुछ किया था मगर आयन्दा पर उठा रक्खा । मैंने उस से कहा कि तू खो गई थी और उसने कहा, तुम खो गए थे । अब फ़ैसला पाठकों के हाथ में है कि कौन अहमक है; बल्कि नहीं, अहमक तो दोनों हैं । सवाल यह कि ज्यादा अहमक कौन है और खो कौन गया था, मैं या वह ??



सर्गाई का साथी

ॐ स रोज का जिक्र है। भाभी जान मायके से आई, तो उनके मुख पर विचित्र खुशी के चिह्न दिखाई दिए। यूँ तो हमारे यहाँ आने पर उनका तोबड़ा चढ़ा ही रहता था, क्योंकि यहाँ सुसराल में उनको काम करना पड़ता था और मायके में भोज उड़ाती थीं ! परन्तु इस बार उनके स्वभाव के प्रतिकूल दर्प की लहरें उनके मुख पर देख कर मैंने कहा— “ओह ! भाभी जी, आप आ गईं ! मैके जाना सुवारक हो ! यकीन मानिए, भाभी जान ! जब कभी आप मायके चली जाती हैं, तो घर सूना-ही सूना लगता है !”

मेरा यह कहना जो हुआ, तो भाभी जान सुनी-अनसुनी करके बोलीं—“ हाँ क्या कहा, छोटे बाबू ?”

“जी कुछ नहीं !” मैं लड़खड़ाते स्वर में बोला—“मैं तो कह रहा था, कि मैके से जल्दी पधार जाया करें। माता जी को तकलीफ होती है।”

भाभी जान ने एक अजीब अन्दाज़ से मेरी ओर देखा और बोलीं—“तुम्हें मेरा मैके जाना...!”

मैंने बात काटते हुए कहा—“नहीं, भाभी जान, मेरा मतलब...!”

“अच्छा, अच्छा, मैं समझ गई। तुम्हारे घर के सूतेपन को, और खासकर तुम्हारे कमरे के सूतेपन को मिटाने के लिए एक ‘चाँद का टुकड़ा’ ढूँढ़ आई हूँ।”

मैं दबी आवाज़ में बोला—“बहुत-बहुत शुक्रिया !”

भाभी जान ने चुटकी ली—“ये बातें !”

और तब तक मैं घर के बाहर हो रहा !



लड़की सुन्दर है, और मुझे भी सुन्दर और सुशील लड़की को अपनी जीवन-सहचरी बनाना पसन्द है; चाहे स्वयम् अपना पाँव लम्बा, आँखें कमजोर और शरीर बेढंगा ही क्यों न हो। खैर, इससे मुझे क्या मतलब ? हाँ, तो कुछ समय बाद मैं खाना खाने को रसोई-घर में जा पहुँचा। और खाना खा चुकने के बाद भी थाली पर इस गरज से बैठा रहा, कि मेरी मँगनी पर बात छिड़े ! एक मिनट, दो मिनट, तीन मिनट और इस प्रकार जब पूरे पाँच मिनट बीत गए, तो मैंने हैरान हो कर सङ्केतपूर्ण नेत्रों से भाभी जान की तरफ देखा। वे मेरा मतलब समझ चुकी थीं, फिर भी शान्त, निश्चल, मौन ! मैंने फिर उनकी ओर देखा ! फिर देखा !! पर या मेरे अल्लाह, वे तो मुस्कुरा रही थीं ! इस पर आँखों ही आँखों में प्यार का रूठना बताते हुए मैं रसोई-घर से बाहर निकल आया !

निराशा में भी कुछ आशा हुआ करती है। चुनाञ्चे, शाम को भाई साहब, भाभी जान और वहिन की पार्लामेण्ट जो लगी, तो मैं भी वहाँ जा पहुँचा। थोड़ी ही देर में भाई साहब कमरे में बाहर हुए। भाभी जान ने घूँघट खोला और मेरी ओर सङ्केत करके बोलीं—“इनकी सगाई के लिए मेरी सहेली ने अपनी छोटी वहिन के लिए कहा है। इनकी सम्मति हो, तो कर देनी चाहिए। लड़की सुन्दर है—चाँद का टुकड़ा ही समझ लीजिए, पढ़ी-लिखी है और गाना भी जानती है।”

वहिन जी ने बीच ही में बात काट कर कहा—“आँख-नाक, रंग-रूप कैसा है ? चाल-ढाल कैसी है ? गृह-कार्य कैसा जानती है ?”—इस प्रकार वहिन जी ने पुलिस-इन्स्पेक्टर की तरह कई प्रश्न कर डाले।

इस पर भाभी जान ने दूकानदार की भाँति लड़की की सुन्दरता का बखान कर दिया और अन्त में बतलाया, कि “कम से कम अपने घर में तो वैसी सुन्दर लड़की है नहीं।”

जनाब, अब आप ज़रा मेरी दशा पर भी गौर कर लीजिए। आँखें तो बराबर हाथ वाले ‘कर्मयोगी’ पर लगी हुई थीं, पर कान कम्बख्त उन बातों में। वहिन जी ने मेरी इस दोहरी चाल को पकड़ते हुए कहा—“क्यों साहब ! जब कभी हम लोग बात कहती हैं, तो कान में तेल पड़ जाता है और अपनी बातों पर यह मुस्कुराना !” इस पर मैं अपने मुस्कुराहट भरे होठों को दाँतों से दबाता हुआ कमरे के बाहर

हुआ । हृदय बासों उछल रहा था कलतः कमरे से आ कर मैं अपनी भावी पत्नी के विषय में सोचने लगा । सड़कों पर चप्पल चटचटाती, इठलाती, थिरकती, सभ्य-महिताएँ जा रही थीं, पर हमेशा की भाँति मैंने उनकी ओर टकटकी बाँध कर देखा नहीं ! मेहतर का लड़का आया । वह कोट माँग रहा था । मैंने दे दिया । यह थी सगाई की खुशी ! दिन-भर मित्रों में हुल्लड़ होता रहा । मिठाई मँगाई गई । सभी ने हँसी-खुशी के साथ खाई । पर किसी भी मित्र ने सदा की भाँति मेरो कुरूपता की बात नहीं की ।

संक्षेप में हुआ यह, कि रात को अम्मा जी और पिता जी की उपस्थिति में हाउस ऑफ कॉमन्स की हमारी मँगनी पर फिर बैठक हुई । मैं अपने छोटे-छोटे, पर चतुर खुफिया-पुलिस वालों से पल-पल पर हाल मालूम कर रहा था; क्योंकि बैठक में मेरा जाना नियम के विरुद्ध था । लड़की की वकील, याने भाभी जान ने अपने घूँघट के भीतर से हाँ वह-वह दलीलें पेश कीं, कि बयान के बाहर हैं । सगाई का निर्णय हो गया । रातों-रात मँगनो का पैगाम भेजा गया और दूसरे रोज़ के लिए स्वीकृत भी हुआ ।

मैं रात-भर करवटें बदलता रहा । नींद भी काहे को आती ? मेरे हृदय में असीम खुशी थी । पर दूसरी ओर रात क्या, बैरिन थी बैरिन ! आखिर लिहाफ में पड़ा-पड़ा मैं तिलमिला कर उठ-बैठा, बत्ती जलाई और हारमोनियम

ले कर बजाने लगा। पर फिर भी जी नहीं लगा। बिस्तर पर लेटा, फिर उठा, फिर लेटा! और इस प्रकार मेरा किसी तरह जी नहीं लगा, तो मैं कमरे की चहारदीवारी के भीतर ही भीतर टहलता हुआ गुनगुनाने लगा—‘न लगी आँख जब से...!’ पर फिर भी लाख कौशिश करने पर तबीयत न लगी, और न नींद ही आई। अब मैं कुर्सी पर जा बैठा। मेरा सब से प्रिय उपन्यास ‘सेवा-सदन’ पड़ा हुआ था। उसे पढ़ना शुरू किया; पर दो पेज से अधिक पढ़ ही नहीं सका। आनन्द की असीम मात्रा भी हमारे कार्य-कलापों पर प्रतिबन्ध लगा देती है! मैं सोचने लगा—कल किस तरह के कपड़े पहने जायँ? किन-किन यार-दोस्तों को साथ लें?

इसके बाद बक्स सँभाला, तो सिर ठोक कर रह गया। पैण्ट तो है ही नहीं!! क्योंकि पैण्ट बनवाने का कभी मौक़ा भी तो नहीं आया था। इस स्थल पर अपने आप पर क्रोध आया, कि चाहता तो हूँ सुन्दर और सजीली लड़की और अपने पास पैण्ट भी नदारद है! इसी सोच में आखिर राम-राम करते रात ख़त्म हुई।

सुबह हुआ। मेरे आगे नाश्ता जो आया, तो मैं आश्चर्य-चकित रह गया। उसमें बुरी तरह से घी डाला गया था। यों तो अम्मा घी का एक क़तरा तक माँगने पर झिड़क देती थीं; पर आज तो शायद हलवे में घी डालने का उन्होंने रेकॉर्ड ही तोड़ दिया था। मेरे स्थान पर कोई चटोरा होता,

तो अम्मा जी के इस असाधारण लाड़ पर फूला न समाता । हाँ, तो नाश्ता करने के बाद मैं दीवारों को फाँदता, मुँडेर पर चढ़ता, छत-पर जा पहुँचा । कारण यह था, कि घर के आँगन में मुझे ससुराल भेजने का समय निश्चित किया जा रहा था । इसलिए अपनी सगाई की बातें चुपके से सुनने की कोई जगह थी, तो यही ! छत पर पहुँच कर सन्तोष की साँस भी नहीं ली थी, कि अम्मा जी ने मुझे पुकारा ; और मैं बेतहाशा भगा—बन्दर की तरह उछलता-कूदता अपने कमरे में जा पहुँचा । खुदा की खैर समझिए, कि किसी ने मुझे देखा नहीं !

अम्मा जी ने आँगन में बुला कर कहा—“कपड़े-लत्ते पहिन लो, बेटा !”

पाठकों को मेरे रात वाले पैण्ट के अभाव का स्मरण ही होगा ! मैंने सिर झुकाए, दबे स्वर में कहा—“पैण्ट तो है ही नहीं ।”

वे बोलीं—“भाई साहब की पहिन लो ! पैण्ट में क्या छाप लगी होती है ?”

इस पर भाभी जान लपकीं, और बड़े भाई साहब की पैण्ट ले आईं । पैण्ट के पैरों में जो टाँगे डालीं और ऊपर को खींची, तो वह मेरे गले तक आ गई ! सिर पर बिना बनाए हुए बाल तो थे ही; और काले रंग की पैण्ट होने की वजह से मैं रीछ की शकल का हो गया ! इस पर सभी

लोगों ने जोर का कहकड़ा लगाया, तो अम्मा जी ने बिगड़ कर उन लोगों को डाँटा—“यह क्या हा-हा, ही-ही ? क्या थिएटर-हॉल बना रक्खा है ? बदतमीज़ कहीं के, निक यहाँ से !!” और अम्मा जी ने सभी बच्चों को निकाल दि घर के बाहर ।

सच पूछिए, तो मेरा दिल लोगों की इस असभ्यता (पर जल-भुन कर भरता हो गया । और ईमान की बात यह है, कि इसी तरह चार-पाँच पैण्ट पहन-पहन कर मु उतारनी पड़ीं—कोई छोटी थी, तो कोई बड़ी ! अन्त अपने एक मित्र की ढीली-सी पैण्ट कुछ ठीक बैठी । संक्षेप यह, कि मैं अपने मित्र के साथ जाने ही वाला था, भाभी जान ने रोक कर कहा—“अरे ज़रा मूँछों के बाल ठोक कर लो, बड़े बेतरनीब हैं !”

इस पर सभी लोगों का ध्यान मेरी बड़ी हुई मूँछों की आ गया । भाई साहब ने कहा, कि वे कर्जन-फ़ैशन की बना दे पर मैंने इस प्रस्ताव को रद्द कर दिया ! इस पर पिता ने कहा—“अच्छा, तो लो, मैं तितली-नुमाँ बना दूँ । कर्ज फ़ैशन तो आजकल ठीक नहीं लगता । पर हाँ, तितली-नु से तुम्हारे मुँह पर चमक ज़रूर आ जायगी—मुँह क्या का चाँद बन जायगा ।”

पिता जी का प्रस्ताव था । विरोध मैं कैसे करता बहरहाल तितली-नुमा बनी. तो दर्शकों ने नाक-भौं सिकोड़

मुँह फेरा और परिणाम-स्वरूप यह निर्णय हुआ, कि सारी की सारी मुँछ ही उड़ा दी जाए ! जिस चीज़ को मैंने अपने शौक से पाल रक्खा था उसे सदा के लिए त्याग देना ठीक नहीं जँचा, पर फिर भी लाचार था ।

भाई साहब आधी आँख मीच, घुटनों में बल डाल, बड़ी अदा से अपने सेफ्टी रेज़र द्वारा थोड़ी देर तक मेरे होठों पर चर्च-चर्च करते रहे; और इधर मुझे बड़े जोरों की खुजली हो रही थी । मैंने मुँछों की जगह, याने अपने प्यारे होठों पर हाथ फेरा, तो मैदान साफ़ था । आइने में अपना मुँह जो देखा, तो मैं जल उठा—बिल्कुल बदसूरत ! जैसे किसी ज़ालिम ज़मोदार ने किसी गरीब किसान का खेत काट लिया हो ! इस पर सभी लोगों ने मेरे अभाग्य पर खेद प्रगट किया और मोचा गया, कि रात का अंधेरा होने पर मुझे ससुराल भेजा जाए । दूसरी ओर अम्मा जी के क्रोध का कोई ठिकाना नहीं था । तैश में आ कर उन्होंने मुन्ना को पीट दिया, कि वह मेरी खानगी पर नंगे सिर रास्ते में क्यों खड़ा है ?



रात हुई । मैं अपने एक मित्र सहित अपनी ससुराल जा पहुँचा । एक मोटे से गद्दे पर ममनद का सहारा लेकर हम बैठ गए । बाएँ हाथ की ओर एक कमरा था । दरवाजे पर चिक पड़ी हुई थी । कमरे से औरतों, और खास कर पढ़ी-लिखी

लड़कियों द्वारा (उनकी आवाज़ ही ऐसी थी) दूल्हे का रंग-रूप देखा जा रहा था । कमरे के समीप होने के कारण औरतों और लड़कियों की फुसफुसाहट साफ़-साफ़ सुनाई दे रही थी । मेरे कान उनकी बातें सुनने को गधे के कानों की तरह खड़े हो गए, कि सुनूँ तो कि वे मेरे बारे में क्या कहती हैं ? किसी कोयल-कण्ठा ने कहा—“अरी, दूल्हा कौन-सा है ?”

दूसरी ने चटक कर उत्तर दिया—“कौन-सा क्या ? वह शेरवानी वाला ही होगा ?”

“नहीं जी !” तीसरी ने कहा—“दूल्हा तो यह कोट वाला है ।”

“अरे !” फिर उसी दूसरे स्वर वाली ने कहा—“यह दूल्हा ! शक्ल-सूरत तो ठीक है ही नहीं !! देखना तलवार मार्का नाक, मोटे-मोटे लटकते हुए होंठ और उस पर बाहर निकले हुए दो टूटे हुए दाँत ! जैसे किसी ने जूतों से मुँह पीट दिया हो !”

मेरा दिल धक से बैठ गया; और मैं होंठ को मुँह में दबाता हुआ, ज़रा सँभल कर बैठा; पर चौथी ने तो मेरे घाव पर नमक ही छिड़क दिया—“अरे, इनके कपड़े भी तो देखो, ढीली-सी पैण्ट, बन्दर के से हाथ-पाँव, भारी साफ़ा, जैसे कपड़े किसी से माँग लाए हों ! वाह ! वाह !! इनकी उँगलियों को तो पहिचानो, कुत्तों की तरह नाखून बढ़ रहे हैं । अरी, मुझे तो

अँधेरे में ऐसा बेढंगा आदमी मिल जाए, तो दहल कर मर जाऊँ ! पर हाँ, दृढ़े का साथी वाकई सुन्दर है !”

पहला स्वर फिर सुनाई दिया—“ सुन्दर क्या है; देखा न, कामदेव का पुत्र-सा लग रहा है । जैसे कौवे के पास हंस बैठा हो ! पतले होंठों पर बारीक-सी लाली, पतली-सी नाक, छोटे-छोटे हाथ-पाँव और कलाई पर घड़ी कैसी शोभा बढ़ा रही है ! पोशाक का तो जिक्र ही छोड़ो ! जँच रही है, जँच !!”

कोई बीच ही में प्रस्ताव रखती हुई बोली—“मेरी तो राय है, बहिन ! यह सगाई किसी तरह से रोक देनी चाहिए । इस भूँ-भूँजे के साथ तो लड़की का जीवन नष्ट करना है ।”

इस प्रकार की बातें सन कर मेरे मुँह का रंग उड़ गया, मैं तिलमिला उठा; क्योंकि मेरा मित्र मुझ से बहुत सुन्दर था; और मेरी तुलना उसके साथ की जा रही थी । मेरे वश की बात होती, तो उन सब औरतों की अच्छी तरह खबर लेता; पर मुझे ध्यान ही नहीं रहा, कि औरतें और लड़कियाँ कब कमरे से अन्तर्ध्यान हो गईं ।

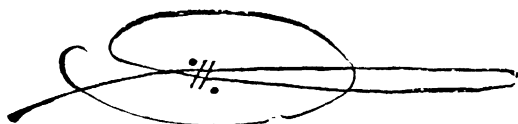
मैं अपने अभाग्य पर विचार कर रहा था, कि नौकर ने आकर कहा, कि लड़की के मामा की मृत्यु का तार आया है, इसलिए सगाई अभी नहीं होगी । फिर क्या था ? हम उलटे पाँव घर लौट आए । और घर पर आ कर सारा क्रिस्सा बहिन जी को, इस शर्त पर सुना दिया, कि वे किसी से कहेंगी नहीं । अम्मा जी तो क्रोध से लाल हो रही थीं ! वह लड़की वालों

के यहाँ भगड़ने जाना चाहती थीं, पर पिता जी ने उनको रोक दिया; और घर ही में बात दब गई। सभी लोग भाभी जान को कोस रहे थे, कि ऐसे घर में सगाई का प्रस्ताव क्यों रक्खा ? और भाभी जान मेरे सगाई के साथी को !



दो महीने के बाद मैंने सुना, कि मेरे 'सगाई के साथी' की मँगनी उसी लड़की से हो गई है। मैंने सिर ठोक लिया ! सड़क पर रंग-बिरंगी तितलियाँ फुदुकती जा रही थीं। उनको सुना-सुना कर गाने लगा— 'पहले जो मोहब्बत से इनकार किया होता...।'

दूसरी तरफ सड़क के उस पार एक गधा भी अन्य गधों को देख कर चीख रहा था। कौन जाने, उसकी मेरे साथ क्या सहानुभूति थी ?



बेगम साहेबा का कुत्ता !

हजार मर्तवा कह चुका, कि अपनी इस अमानत को सँभाल कर रखो; पर सुनवाई ही नहीं होती ! जहाँ देखो कमबख्त नाचता फिरता है। जहाँ देखो, वहीं चहल-कदमी हो रही है। पाला भी क्या है कुत्ता ! नाम रक्खा है 'मोती' ! उसको बुलाती भी किस अन्दाज़ से है—बेटा, प्यारे, अज़ीज़, और न जाने किस-किस नाम से इस कमबख्त को पुकारा जाता है; पर मुझको भूल से भी कभी प्यार से न बुलाया, यह मेरी शायद बदकिस्मती है। इतना बड़बड़ाते हुए मौलाना क़ादिर हुसेन ने अपनी बैठक में पैर रक्खा। पैर रखते ही, पहिले आप की नज़र मोती पर पड़ी, जो आप की कुर्सी पर रक्खी हुई अचकन में लिपटा हुआ क़लाबाज़ियाँ खा रहा था। मोती की यह हरकत देखते ही मौलाना साहब पाजामे के बाहर हो गए, और एक छड़ी उठा कर मोती पर झपटे। मोती उनको देखते ही क्रोध कर अन्दर की तरफ भागा। मोती के पीछे मौलाना साहब भी दौड़ते हुए अन्दर दाखिल हुए।

जैसे ही आप अन्दर पहुँचे, आप का पैर लटकती हुई रस्मी में फँस गया और आप चारों खाने चित्त ज़मीन नापने लगे ! इधर मोती उनको क़लावाज़ियाँ खाते देख आँगन में खड़ा हो कर पूँछ हिलाने लगा । मौलाना मोती को देख फिर उठ कर उसके पीछे भागे । बेगम साहेबा रसोई से निकल कर बोलीं—“खबरदार, अगर आपने मेरे मोती पर हाथ उठाया ! जब देखो, इसको मारने ही दौड़ते हैं ।”

बेगम साहेबा की बात सुन कर मौलाना गुस्से से बोले—
 “मैंने तुमको हज़ार दफ़ा कहा, कि इस हरामज़ादे को बाँधकर रक्खो, पर तुम बाँधती ही नहीं । आज इसने मेरी नई अचकन को नाश कर दिया ! बेईमान उस पर उछल-कूद मचा रहा था । आज मैं इसको नहीं छोड़ूँगा ।”—इतना कह कर मौलाना साहब फिर मोती पर भपटे । मोती जो कुछ दूर खड़ा उनकी तरफ़ देख रहा था, मौलाना को अपनी तरफ़ आता देख बाहर की तरफ़ भागा । मौलाना भी पीछे भागे । आँगन में केले का छिलका पड़ा हुआ था । मौलाना साहब का उस पर पैर पड़ गया । पैर पड़ते ही बेचारे बड़े जोर से फिसलते हुए दिवाल से जा टकराए और पेट के बल क़लावाज़ी खा गए ! इस क़लावाज़ी में बेचारे मौलाना साहब के हाथ में ज़रा-सी चोट लग गई । बेगम साहेबा गुस्से में भरी हुई खड़ी थीं, बेचारे मौलाना को गिरते हुए देख सनकी तक नहीं ! मौलाना किसी तरह उठ

कर बेगम साहब के पास आए और बोले—“देख ली अपने प्यारे की करतूत, मेरा हाथ तोड़ दिया ।”—इतना कहते हुए मौलाना साहब कमरे में जा कर पलंग पर लेट गए और कराहना शुरू किया ।

हालाँकि चोट बहुत मामूली लगी थी, पर बेगम साहेबा को सुनाने के लिए आपने जोर-जोर से कराहना शुरू कर दिया । कराहना सुन कर बेगम साहेबा का दिल पसीज गया और कमरे में पहुँच कर मौलाना साहब से बोलीं—“क्या सचमच ज्यादा चोट लग गई हाथ में ? अच्छा मैं अभी दवा बाँधती हूँ ।”—इतना कह कर जल्दी से बावर्चीखाने में गई और आटे का हलवा बना कर ले आई । हलवा मौलाना साहब के हाथ पर गाढ़ा गाढ़ा लगा कर महीन कपड़े-की पट्टी बाँध दी । मौलाना साहब आँख बन्द किए पड़े रहे ।

बेगम साहेबा मौलाना साहब को सोता जान धीरे से फिर बावर्चीखाने की तरफ चली गई । इधर जब मोती मकान में दाखिल हुआ, तो उसकी नाक में हलवे की खुशबू पहुँची और वह सूँघते-सूँघते मौलाना साहब की चारपाई के पास जा पहुँचा । बेगम साहेबा ने जल्दी में हलवे में घी ज्यादा डाल दिया था, वह पट्टी बँधने से बह रहा था । मोती ने उस घी को चाटना शुरू किया । मौलाना आँख बन्द किए हुए थे । वह समझे, कि शायद बहते हुए घी को बेगम साहेबा पोंछ रही हैं । बोले—“रहने दो, मत पोंछो ।”

इधर सब घी चाटने के बाद मोती ने पट्टी पर दाँत मारा और पट्टी फाड़ कर हलवा निकाल लिया। मौलाना साहब ने आँख खोल कर देखा, कि मोती बड़े इतमीनान से हलवा खा रहा है। यह देखते ही आप बड़े जोर से चीख उठे। इस चीख ने गजब कर दिया। बेगम साहेबा बावर्चीखाने में कुछ बना रही थीं। चीख की आवाज़ जो कान में पड़ी, तो जो वे जल्दी से उठ कर जाने लगीं तो उनका दुपट्टा उनके पैर के नीचे आ गया और वह उसमें उलझ कर लुढ़क पड़ीं। किसी तरह उठ कर जल्दी से मौलाना साहब के पास पहुँचीं और चीखने का सबब पूछा। हाथ की पट्टी खुली देख कर बोलीं—“यह क्या ? पट्टी क्यों खोल डाली ?”

मौलाना साहब बोले—“मैंने क्यों खोल डाली ? यह करतूत तुम्हारे बेटे मोती की है, जो पट्टी फाड़ कर हलवा ले कर भाग गया।”

इतना सुन कर बेगम साहेबा बोलीं—“ले जाने दो, मैं और बाँधे देती हूँ।” वे भट बावर्चीखाने में गईं, थोड़ा और हलवा ला कर फिर हाथ पर बाँध दिया। शाम को फिर इसी तरह गरम-गरम हलवा बाँधा।

हालाँकि मौलाना साहब को चोट ज्यादा नहीं लगी थी, पर बेगम साहेबा को परेशान करने के लिए उन्हें एक अच्छा बहाना मिल गया था। खैर, शाम का खाना भी पलंग पर लाया गया, और बेगम साहेबा ने भी पलंग पर खाना

मनासिव समझा । खाना दूँ में लगा कर पलंग पर रखवा गया, और एक तरफ वेगम साहेबा और दूसरी तरफ मौलाना साहब बैठे । जैसे ही मौलाना साहब ने नवाला उठाया, वैसे ही किसी ने पलंग के नीचे से धक्का दिया । धक्का लगना था, कि दूँ उलट गई । बेचारे मौलाना का सब मुँह और कपड़े शोरवे से खराब हो गए । दाढ़ी सन गई । मौलाना साहब ने दूँ उलटने का सबब जानने के लिए नीचे झाँका । देखते क्या हैं, आप का नया पम्प शू मियाँ मोती फाड़ कर उससे खेल रहे हैं । यह देखते ही मौलाना साहब एक दम से आग-बबूला हो गए । क्रोध कर पलंग के नीचे आए और वगल से एक डण्डा उठा कर मोती पर लपके । मोती मौलाना साहब के पलंग से उतरते ही हवा हो गया । मौलाना साहब भी बाहर की तरफ भागे, पर वेगम साहेबा ने दरवाजे पर रोक लिया और बोलीं—“जाने दो, और जूता ले आना, मोती को मत मारो ।”

मौलाना बेतहाशा गुस्से में भरे थे । बोले—“आज मैं मोती को ज़िन्दा नहीं छोड़ सकता ।”—इतना कह कर वेगम को धक्का दे कर बाहर आए । वेगम को भी गुस्सा चढ़ आया और मोती को बुला कर गोद में ले कर बोलीं—“देखूँ, तुम इसको कैसे मारते हो ! बड़े तीसमार खाँ हो, तो अब मार कर दिखाओ !”

मौलाना साहब ने कहा—“मजबूर हूँ, अगर यह तुम्हारी गोदी में न होता, तो आप ने हाथ दिखाता । खैर, कभी तो

गोदी से उतारोगी ।”---इतना कह कर मौलाना साहब कमरे में जा कर पलंग पर लेट गए और बेगम साहेबा के आने का इन्तज़ार करने लगे । लेटे-लेटे मौलाना को नींद आ गई । ख़्वाब में फिर उन्हें दिखाई दिया, कि मोती जूता फाड़ रहा है । वे घबड़ा कर उठ बैठे । आँख खुलने पर उन्होंने देखा, कि बेगम साहेबा सो रही हैं । उनको सोता देख वे चुपचाप उठे और मोती की चारपाई की तरफ़ गए, जिस पर वह रात को सोता था । चारपाई के पास पहुँच कर मौलाना साहब ने जोर से एक डण्डा मोती को मारा । पर उस चारपाई पर सो रही थी बुढ़िया नौकरानी ! डण्डा पड़ते ही बुढ़िया चिल्लाती-कराहती हुई भागी, कि “मार डाला, मार डाला ।”

शोर-गुल सुन कर बेगम साहेबा उठ बैठीं और दौड़ी बुढ़िया की मदद को । यह देख कर मौलाना सहम और चुपके-से चारपाई पर जा लेटे । इसके बाद मौलाना साहब को मोती से कुछ कहने की हिम्मत न हुई !!



तीन सौ वर्ष पहिले

॥० ए० की परीक्षा देने के पश्चात् मैंने सोचा कि छुट्टियाँ व्यतीत करने के लिए कहाँ जाऊँ? सौभाग्य से या दुर्भाग्य से—जैसा भी आप समझें, मैं अभी तक अविवाहित ही था। यदि विवाहित होता, तो श्रीमती जी घर पर प्रतीक्षा करती होतीं, इसलिए घर जाना ही पड़ता। परन्तु इस माने में मैं स्वतन्त्र था और इसलिए मैंने निश्चय किया, कि मसूरी जाऊँ और दो महीने वहीं व्यतीत करूँ। पिता जी से मैंने इसके लिए आज्ञा ले ली और उनसे आवश्यक खर्च भी मँगा लिया।

कॉलेज के दिनों में तो समय का निर्धारित कार्यक्रम था, इस कारण दिन आसानी से कट जाते थे, परन्तु छुट्टियों के पूरे साठ दिन कैसे व्यतीत होंगे, यह मेरे सामने एक समस्या थी। गर्मियों के लम्बे दिन काटे नहीं कटते। यही सोच कर इन दो महीनों में मैंने कुछ विशेष पुस्तकों के अध्ययन का निश्चय किया। अपने प्रोफ़सर साहब से मैंने कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों की एक

सूची बनवा ली और दूसरे ही दिन मैं उन पुस्तकों को खरीद कर ले आया।

आवश्यक सामान तथा पुस्तकों को ले कर मैं नियत समय पर मसूरी के लिए रवाना हो गया। सिर्फ दो महीने तो रहना ही था, इसलिए रहने का प्रबन्ध एक होटल में ही किया। हेमालय के प्रांगण में शीतल और सुन्दर समीर के झोंकों के साथ ग्रीष्म ऋतु के दिन आनन्द से कटने लगे। सुबह-शाम घूमना, रात को सिनेमा देखना और दिन को सोना—यही मेरा नित्य का कार्यक्रम था! एक चीज की कमी अवश्य महसूस होती थी, और वह मुझे बुरी तरह खटकती थी। मसूरी की नीची-ऊँची घुमावदार सड़कों पर टहलते हुए, सिनेमा तथा नाच-घरों में बैठे हुए और रिक्शाओं में हवा खाते हुए जब लोगों का अपनी-अपनी प्रियतमाओं के साथ देखना, तो मैं विकल हो उठता। उस समय मुझे मालूम पड़ता, कि अकेला जीवन कितना नीरस और सूना होना है। खैर, लोगों को ही देख कर मैं ठण्डी साँस लेता हुआ अपना समय किसी प्रकार ढूँढती कर ही लेता। साथ में लाई हुई किताबें ज्यों की त्यों सन्दूक में बन्द पड़ी थीं। पहले, तो मैं सोच रहा था, कि गर्मी के यह लम्बे दिन कैसे कटेंगे, परन्तु यहाँ आने पर अनुभव हुआ, कि यदि दिन सौ घण्टे के भी होते, तो भी मजे से गुज़र जाते।

एक दिन खाना खा कर मैंने निश्चय किया, कि आज कोई पुस्तक अवश्य प्रारम्भ करना चाहिए। यही सोच कर सन्दूक

खोला और पुस्तकों पर पड़ी धूल झाड़नी शुरू की। कई-एक पुस्तकें उलटने-पलटने के बाद मेरी दृष्टि गाँधी जी की 'आत्म-कथा' पर पड़ी। लोगों से सुन रक्खा था, कि गाँधी जी ने अपनी 'आत्म-कथा' में अपने व्यक्तिगत जीवन की सभी बातें साफ़ और स्पष्ट लिख डाली हैं। मैंने सब से पहले इसी पुस्तक को प्रारम्भ करना ठीक समझा।

पान मुँह में दबा कर तथा आराम-कुर्सी पर लेट कर, मैंने इस ग्रन्थ-रत्न को पढ़ना प्रारम्भ किया। आज इस शैल-शिखर पर पहली ही बार मैंने पुस्तक हाथ में ली थी। परन्तु दुर्भाग्यवश नित्य की तरह नींद ने मुझे आ घेरा। मैंने अपने पलकों को सँभालने की बहुत कोशिश की, परन्तु सफलता नहीं मिली। चार-पाँच पेज भी न पढ़ पाया था कि आँख लग गई। किताब वक्षस्थल पर पड़ी की पड़ी रह गई, और मैं खर्राटे लेने लगा !



मैं अपने एक मित्र के आग्रह से घूमने के लिये मोहनपुर गया। सैर के लिये इतनी दूर जाना कोई साधारण बात न थी। पहले ज़माने में, जब कि रेलें, मोटरें, ताँगे अदि चला करते थे, यात्रा करना आसान था। आदमी एक दिन में कहीं का कहीं जा सकता था, परन्तु इस 'अहिंसा-राज' में सिर्फ़ दो पैरों की सवारी की आज्ञा है। इसी कारण पूरे छः दिन में मोहनपुर का रास्ता तय कर सका।

मोहनपुर पहुँच कर कड़े आदमियों के साथ मैं राजधानी की सैर को निकला। सबसे पहले हम लोग अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा का विशाल भवन देखने गए। ऐसी अजीब इमारत देख कर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। इमारत के ऊपर राष्ट्रीय झण्डा फहरा रहा था। भवन के गुम्बजों की बनावट सुन्दर, किन्तु अद्भुत थी—कोई मन्दिर, कोई मस्जिद, कोई गिरजा और कोई गुम्बद्वारे की तरह बने हुए थे। कहने का मतलब यह, कि इस इमारत में भारत की सभी जाति और धर्म वालों की कला का मिश्रण था। एक बड़े फाटक से हमने अन्दर प्रवेश किया।

सामने ही चर्खा हाथ में लिए महात्मा मोहनदास की विशाल संगमरमर की मूर्ति पर दृष्टि पड़ी। हमने बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ उसे नमस्कार किया। उनके पास हमारा राष्ट्रीय वेद—‘आत्म-कथा’—भी एक चौकी पर रक्खा था! मैंने इस वेद-भगवान को माथा नवाया। यद्यपि महात्मा मोहनदास जी ने इसे गुजराती में रचा था, फिर हिन्दी रूपान्तर हुआ, किन्तु बाद को गाँधी भक्तों ने इसे हिन्दुस्तानी में लिख डाला। मैंने देखा, कि सभी जाति और धर्म वाले इस पवित्र पुस्तक का बड़े प्रेम से परायण कर रहे थे।

कुछ कदम आगे बकरी-माता की एक विशाल मूर्ति मिली। इसी का दूध पी कर महात्मा जी को ज्ञान प्राप्त हुआ था। इस कारण प्रत्येक भारतवासी उसे पूज्य समझता था। यहाँ तक, कि मुसलमान भाईयों ने भी उसकी कुर्बानी बन्द कर दी थी। यह

कतवा भी मुनते हैं, उल्माओं ने मोहनपुर से ही निकाला था। परन्तु उस समय की बान है, जब मोहनपुर का नाम दिल्ली था। महात्मा गाँधी के नाम पर गाँधी-सन २० में दिल्ली नगर का नाम मोहनपुर रक्खा गया। उस समय मुसलमानों ने चाहा था, कि इसका नाम 'मोहम्मदाबाद' रक्खा जाय, परन्तु उस समय के युवक-सम्राट और स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान-मंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की राय मान कर उसका नाम मोहनपुर ही रक्खा गया।

मोहनपुर में मैंने देखा, कि घर-घर बकरी बँधी हुई है और सर्वत्र उसकी पूजा होती है। अमर कवि 'असहयोगी'-रचित बकरी विरुदावली सर्वत्र पढ़ा जाती है। पश्चात् मैंने नगर के एक विशाल हॉल में प्रवेश किया, उसकी दीवारों पर जगह-जगह गाँधी जी के उपदेश और आज्ञाएँ टँगी हुई थीं।

हॉल-देख कर मैं चाँदनी-चौक की ओर मुड़ पड़ा। देखता क्या हूँ, कि चाँदनी-चौक चर्मकारों का चबूतरा बना हुआ है। यहाँ चर्मकार भाई चप्पले तैयार करने में व्यस्त हैं। बड़ी-बड़ी दूकानों का नाम तक भी नहीं। सर्वत्र ग्राम-उद्योग का बाजार गर्म है—कहीं धान कूटा जा रहा है, तो कहीं चक्की चल रही है, हलवाईयों की दूकानों पर हलुए के स्थान पर गुड़ बन रहा है। डॉक्टरों की दूकानें, तो दूँढ़े भी नहीं मिलतीं। सर्वत्र मिट्टी का उपचार हो रहा है।

इस नगर में मशीनें तो मुझे देखने-तक को नहीं मिलीं। क्लॉथ मिल्स की जगह कर्घे की करामात ही नज़र आई। महात्मा जी मशीनों को मनहूसियत की निशानी मानते थे, इसलिए गाँधी सन् ८० से ही मिलों को मिटा दिया गया और यह कानून बना दिया गया, कि खदर के सिवा कोई दूसरा कपड़ा न पहने, जो पहनेगा, वह भारत की नागरिकता के अधिकारों से वञ्चित कर दिया जायगा। इसीलिए मुझे वहाँ सब खदरधारी ही खदरधारी नज़र आए।

अजबत्ता जिन्नावाद और वल्लभपुरी में कुछ पुराने कारखानों के भग्नावशेष ज़रूर विद्यमान थे, जिन को देख कर पूर्वजों की पार्थिव पूजा का पूरा परिचय मिलता था।

हम लोग आगे बढ़े, 'चौराहे आसफ़ अली' पर पहुँचे। यह चौराहा पुराने ज़माने के किसी नेता के नाम से था। चौराहे पर खड़ा होकर एक जन-सेवक सबको हाथ जोड़ कर आज्ञा दे रहा था। इतिहास देखने से मालूम पड़ता है, कि पहले इन 'जन-सेवकों' के स्थान पर पुलिस वाले थे, जो बड़ी डाँट-डपट के साथ जनता पर अपना आतङ्क जमाए रखते थे। परन्तु अब तो जन-सेवकों को क़ायद के बजाय, हाथ जोड़ कर जनता को आज्ञा देना सिखाया जाना है।

चौराहे से कुछ दूर पर व्यावहारिक विश्वविद्यालय की शानदार इमारत मिली। इसकी सब से बड़ी परीक्षा थी 'अहिंसाचार्य'। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाला विद्यार्थी

अहिंसा के सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञाता और 'अहिंसावाद' का पक्का मानने वाला समझा जाता है। 'अहिंसाचार्य' की उपाधि पाने के लिए सबसे कठिन परीक्षा यह है, एक परीक्षार्थी को लगातार तीन दिन, तीन रात खटमलों से भरी हुई चारपाई पर लटका रहना पड़ना है। यदि बीच ही में परीक्षार्थी उठ जाता या उसके द्वारा एक भी खटमल की हत्या हो जाती, तो वह अनुत्तीर्ण समझा जाता है। और इन असंख्य भूखे खटमलों के हमलों को शान्तिपूर्वक सहना सच्चे अहिंसक का चिह्न समझा जाता है। इसके पश्चात् एक साल व्यावहारिक विश्व-विद्यालय में इन विषयों का अध्ययन करना पड़ता था—हजामत बनाना, कपड़े धोना, जूते सीना, मल-मूत्र साफ करना इत्यादि। इसमें प्रथम आने वाला सच्चा गाँधीवादी समझा जाता था। विश्वविद्यालय को देखने के बाद हमने नगर के अन्य स्थानों को देखा—अन्सारी चौक, कटरा अजमल खाँ, अरुणा मन्दिर, देशबन्धु उपवन और शौकतअली स्ट्रीट। वास्तव में राजधानी के ये दर्शनीय स्थान थे।

इतिहास देखने से मालूम पड़ता है, कि पहले के लोग स्त्रियों को मनुष्य नहीं समझते थे। वे बिलकुल गुलाम समझी जाती थीं। लेकिन मैंने देखा, कि लोगों ने अब स्त्रियों को पुरुषों से भी अधिक अधिकार दे रखे हैं। सभा सोसाइटियों में उन्हें ही अधिक चहचहाते हुए देखा जाता है। पेट से बाहर आने के बाद बच्चों की सारी जिम्मेदारी पुरुषों ही के ऊपर पड़ जाती

है। पहले-पहल तो लोगों ने छोटे बच्चों की देख-भाल में काफ़ी कष्ट अनुभव किए, लेकिन अब तो वे इस काम को अपना कर्त्तव्य समझते हैं, इसलिए कष्ट का अनुभव नहीं करते। देश के कुछ नामी वैज्ञानिकों का मत है, कि अगली चन्द शताब्दियों में पुरुष इतनी उन्नति के शिखर पर पहुँच जायगा, कि वह स्वतः ही बच्चा पैदा करने लगेगा और स्त्रियों का सार्वजनिक क्षेत्र में कूकने के सिवाय दूसरा काम ही न रह जायगा। खैर, ये तो आगे की बात है, अभी तो हम लोग इस योग्य नहीं हैं।

आगे जो बड़े, तो गाँधी-युग का न्यायालय नज़र आया। मैंने देखा, कि उसमें अपराधियों को दण्ड देने के पहले-जैसे तरीक़े भी अब नहीं रहें हैं। न्यायाधीश अपराधियों को सज़ा नहीं देता, उनके प्रायश्चित्त-स्वरूप स्वयं उपवास करता है। इस प्रकार दूसरों को सुधारने के लिए 'आत्म-शुद्धि' करते-करते वह स्वयं मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। इस अमोघ अस्त्र का आविष्कार स्वयं गाँधीजी ने किया था, और आज तक धर्म और न्याय की वही परम्परा जारी है।

मैंने देखा, कि सारा देश अहिंसा का पक्का पुजारी बन गया है। 'अहिंसावाद' के कारण घर चूहों और खटमलों से तथा सड़के कुत्तों और मुर्गों से भरी पड़ी थीं। सारी रात खटमल काट-काट कर और कुत्ते भौंक-भौंक कर सोना हाराम कर रहे थे, परन्तु फिर भी लोगों को आराम से सिद्धान्त अधिक प्यारे थे।

न्यायालय देख कर मैं मोहनपुर के पुस्तकालय में जा बैठा। वहाँ मैंने इतिहास पढ़ना आरम्भ किया। मैंने इतिहास में पढ़ा, कि पिछले तीन सौ वर्षों में देश ने काफी उन्नति की है, परन्तु कुछ असभ्य प्रान्तों में अभी सुधार की आवश्यकता है। वहाँ कभी-कभी अशान्ति हो जाती है, परन्तु 'जन-सेवक' वहाँ आसानी से शान्ति स्थापित कर देते हैं। ऐसे स्थानों में महात्मा जी द्वारा आविष्कृत केवल 'सत्याग्रह' अस्त्र का ही प्रयोग किया जाता है। जन-सेवकों की एक टोली एक पैर से धूप में खड़ी होती है और इस प्रकार शान्ति स्थापित हो जाती है। लोगों को आशा है, कि अगले चन्द वर्षों में इन 'जन-सेवकों' की भी आवश्यकता नहीं रह जाएगी और भारत का प्रत्येक निवासी 'स्वयं-सेवक' बन जाएगा।

पिछले तीन सौ वर्षों का इतिहास देखने से मालूम हुआ, कि इन वर्षों में भारत पर सिर्फ एक बार विदेशी आक्रमण हुआ था और उसमें शत्रु की बड़ी जबरदस्त पराजय हुई। पश्चिमी सीमा पर राफ़फ़ाराबाद से कुछ दूर खान साहब की घाटी पर शत्रु-सेना से सत्याग्रहियों का मुकाबला हुआ। सत्याग्रही फौज दस लाख से ऊपर थी। लड़ाई प्रारम्भ होने के पहले ही हमारी सेना ने 'अहिंसा' और 'सत्याग्रह' के शस्त्रों को सँभाल लिया। सारी सेना ज़मीन पर पट्ट लेट गई। यह देख कर शत्रु-सेना शर्मिन्दा हो कर वापस चली गई। इसके बाद किसी ने हमारे देश पर हमला करने का साहस ही नहीं

किया। यह हमारी महान् विजय थी, जिसका हमें अभिमान है और होना भी चाहिए।

दिन-भर नगर की सैर करने के बाद मैं थका-माँदा शाम को एक मित्र के घर पहुँचा। उस समय वे खाना पका रहे थे, और 'बहिन जी' पुस्तक पढ़ रही थीं। मैं भी चुप-चाप बिना कुछ कहे ऊपर के कमरे में जा कर आराम-कुर्सी पर लेट गया। थका तो था ही, नींद भी आने लगी। मेरी आँखें बन्द होने ही वाली थीं, कि एक चूहा ऊपर से मेरी छाती पर कूदा। अर्ध-निद्रित अवस्था में मैंने उसको दोनों हाथ से पकड़ लिया। तब तक मेरी आँखें खुल गईं। मैं देखता हूँ, कि मैं 'मोहनपुर' नहीं मसूरी में हूँ और दोनों हाथों से गाँधीजी की 'आत्म-कथा' पकड़े हुए हूँ। अभी बीसवीं सदी और अंगरेजी राज्य है। स्वप्न में मैं तीन सौ वर्ष आगे पहुँच गया था।

पेशवन्दी

रेल के इण्टर क्लास के डिब्बे में हम तीन ही आदमी थे । मेरे दाएँ एक खुश-पोश लाला जी थे और सामने एक हैट-बूट वाले साहब बहादुर-किस्म के बाबू । ट्रेन मुल्तान स्टेशन से रवाना हुई, तो बाबू फौरन ही बे-तकल्लुफ हो गए— मुझसे नहीं, बल्कि लालाजी से । और मैं हैरान था कि मेरे बिल्कुल सामने की सीट पर बैठे होने पर भी इन्होंने बातचीत के लिए लालाजी को क्यों चुना !

दो उँगलियों से अपनी ऐनक को नाक पर दुरुस्त करते हुए बाबू बोले—“कहिए, लालाजी, कहाँ जा रहे हैं आप ?”

लालाजी—“लाहौर जा रहा हूँ ।”

बाबू—“दौलतखाना आपका ?”

लालाजी—“मैं लाहौर में रहता हूँ ।”

बाबू—“कारबार क्या करते हैं आप ?”

लालाजी—“मैं फ्रूट-मर्चेण्ट हूँ ।”

बाबू—“आपके कारबार पर जंग का बहुत असर पड़ा होगा ?”

लालाजी—“जी नहीं, इसलिए कि फ्रूट जर्मनी से नहीं आते ।”

बाबू—“हाँ, हाँ, यह तो मैं जानता हूँ । मेरा मतलब यह है, कि कागज़ बहुत महँगा हो गया है, और जिन लिफ़ाफ़ों में आप फल डाल कर गाहक को देते हैं, उनकी कीमत पर ज़रूर असर पड़ा होगा ।”

लालाजी—“जी नहीं, हमारे यहाँ देशी कागज़ के लिफ़ाफ़े इस्तेमाल होते हैं ।”

बाबू—“हाँ, हाँ, यह तो मैं जानता हूँ ।” मेरा मतलब यह है कि अक्सर लोगों के कारबार पर जंग का असर पड़ा है ।”

लालाजी—“हाँ, पड़ा है । लेकिन अच्छा असर पड़ा है । कई आदमियों ने चन्द ही रोज़ में हाथ मार लिए हैं ।”

बाबू—“हाँ, हाँ, यह तो मैं जानता हूँ । मेरा मतलब यह है कि अबकी जंग बहुत ख़तरनाक है । इस दफ़ा हिन्दुस्तान को भी ख़तरा है ।”

लालाजी—“ख़तरा तो है, अगर कांग्रेस ने सत्याग्रह कर दिया, तो मुसीबत आ जायगी ।”

बाबू—“यह तो मैं जानता हूँ । लेकिन मेरा मतलब कांग्रेस से नहीं, रूस से है ।”

लालाजी—“रूस से क्या ख़तरा है ?”

बाबू—“अजी वाह ! मालूम होता है कि आप अखबार नहीं पढ़ते । बन्दानेवाज़ ! रूस तो एक महत् से हिन्दुस्तान पर आँखें लगाए हुए है । और अब उसका खयाल है कि जंग की गड़बड़ में चुपके से हिन्दुस्तान पर हमला कर दें !”

लालाजी—“अजी, हमला होगा, तो बम्बई पर । हम लाहौर वालों को रूस के हमले का क्या डर !”

बाबू—“वाह जी, वाह ! मालूम हुआ कि आपको भूगोल भी नहीं आता । बन्दानेवाज़ ! रूस हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिम में है, और रूसी हवाई जहाज़ बम फेंकते हुए सीधे लाहौर पहुँचेंगे ।”

लालाजी—“क्यों ? लाहौर क्यों ?”

बाबू—“हाँ, मैंने नहीं कहा था कि आप अखबार नहीं पढ़ते ! अजी बन्दानेवाज़ ! रूस का डिक्टेटर स्टेलिन मुसलमान हो गया है, और उसने ऐलान किया है कि मैं बकरीद का नमाज़ लाहौर की शाही मस्जिद में पढ़ूँगा ।”

लालाजी—“शाही मस्जिद में ! वह तो हमारे घर के करीब ही है ।”

बाबू—“आप कहाँ रहते हैं ?”

लालाजी—“चूनेमण्डी ।”

बाबू—“गज़ब हो गया ! तो आप से ज्यादा रूसी हमले का खतरा किसी को नहीं हो सकता !”

लालाजी—“वह क्यों ?”

बाबू—“इसलिए कि रूस का इरादा पहिले चूने के जखीरे को नष्ट करने का है, ताकि चूना फौजी इमारत में काम न आ सके।”

लालाजी (कड़कड़ा लगा कर)—“वाह जी, बड़े अखबार पढ़ने वाले और भूगोल जानने वाले ! अजी बाबू साहब ! चूनेमण्डी में चूने का कोई जखीरा तो नहीं । वह पुराने ज़माने से सिर्फ एक नाम चला आ रहा है !”

बाबू—“हाँ, हाँ, यह तो मैं जानता हूँ । मेरा मतलब यह है कि रूसी हवाई जहाज़ छावनी पर तो ज़रूर बम बरसाएँगे।”

लालाजी—“फिर शाहर वालों को क्या डर ?”

बाबू—“डर क्यों नहीं ? हवाई जहाज़ से बम फेंकने वाले न मील से निशाना लेते हैं । और एक सेकिएड की कमी-वेशी से बम अपने असल निशाने से इधर-उधर जा गिरता है । इसलिए बम का क्या एतबार ? कौन कह सकता है कि ज़रा-सी कमी-वेशी के कारण बम आपके मोहल्ले पर न आ गिरे !”

लालाजी—“और उस मोहल्ले पर क्यों न गिरे, जहाँ आप रहते हैं ? मगर हाँ, यह तो बताइए कि आप रहते कहाँ हैं ?”

बाबू—“मैं भी लाहौर ही में रहता हूँ, बसन्त रोड पर । और मेरा मतलब यह कि सारे लाहौर वालों को खतरा है ।”

लालाजी—“लेकिन हुकूमत इस खतरे को रोकने का कोई बन्दोबस्त नहीं करेगी ?”

बाबू—“हुकूमत तो सब कुछ कर रही है । लेकिन मेरा मतलब यह है कि इन्सान को खुद भी अपना कोई इन्तज़ाम

करना चाहिए न । फ़र्ज कीजिए कि अगर आप बम से मार डाले गए हैं—और आपके बाल-बच्चे बच रहे, तो उन बेचारों का क्या हाल होगा ? और अगर मकान नष्ट हो जाय, तो सर छिपाने की जगह कहाँ रहेगी ?”

लालाजी—“फिर इसका इलाज ?”

बाबू—“यह कि वक्त से पहिले ही पेशवन्दी कर लीजिए।”

लालजी—“वह कैसे हो सकती है ?”

बाबू—“विलकुल आसान ! (जेब से एक पैम्फ्लेट निकाल कर) यह है हमारी कम्पनी का प्रोस्पेक्टस । अपनी जिन्दगी का बीमा करा लीजिए और मकान का भी ।”

लालाजी—“अच्छा, तो आप बीमा-कम्पनी के एजेण्ट हैं ! लेकिन अफ़सोस है कि न मकान मेरा अपना है, और न मेरे कोई बाल-बच्चे हैं !”



चचा छक्कन ने भगड़ा चुकाया !

पिछली गर्मियों में एतवार का दिन था। हमारे यहाँ चिराम जलते ही खाना खा लिया जाता है। बच्चे खाना खा कर सो गए थे, चची ने खाना खिला कर इशा की नमाज की नीयत बाँधी थी, और नौकर रसोई-घर में बैठे भोजन कर रहे थे। चाचा छक्कन बनियाइन पहने, तहमद बाँधे, टाँग पर टाँग रखे चारपाई पर लेटे मज्जे-मज्जे से हुक्के के कश लगा रहे थे, कि एकाएक गली में से शोर-गुल की आवाज आई।

बुन्दू, इमामी और मूदा खाना छोड़ कर दरवाजे की तरफ लपके। चचा भी चौंक कर उठ-बैठे और जब कोई न दिखाई दिया, तो चची की ओर देखा। चची ने सलाम फेरते हुए मुह उधर मोड़ा, आँखें चार हुईं, तो चाचा ने पूछा—“यह शोर कैसा है ?” चची साथे पर त्योरी डाल बज्जीका पढ़ने लगीं।

चचा छक्कन कुछ देर इन्तजार करते रहे, कि शायद कोई नौकर या लड़का पलट कर आए और कुछ खबर लाए, वैसे चची से बराबर पूछते रहे—“कोई आता नहीं, ...कहाँ बैठे

रहे सब के सब ?...देखती हो, इन की हरकतें ? पता नहीं, क्या वारदात हो गई है ?” लेकिन जब न चची ने कोई उत्तर दिया, और न कोई लड़का ही वापस आया, विवश हो, जूता पहिन कर खुद बाहर निकलने की तैयारी की ।

चची बोलीं—“चले तो हो, मगर किसी के भगड़े में न पड़ना ।”

चचा बोले— मेरा सिर फिरा है, बाजारू लोगों के भगड़ों से हमें क्या मतलब ?”

जनाने से निकल कर चचा मर्दाने में आए, ड्योढ़ी में कदम रक्खा, तो देखा, कि घर के सामने भीड़ जमा है । चचा को आशा नहीं थी, कि इतनी जल्दी मौके पर जा पहुँचेंगे । कुछ घबराए, आगे बढ़ने के लिए अभी तैयार नहीं थे, मगर वापस हटने का भी मन न होता था ; अतः आपने जल्दी से दीया गुल कर ड्योढ़ी का द्वार बन्द कर दिया और देर तक दरार से आँख लगाए स्थिति का निरीक्षण करते रहे ।

मालूम हुआ, कि भगड़ा दो पड़ोसियों के बीच है, जो सामने के मकान में रहते हैं—एक ऊपर का मञ्जिल में, दूसरा नीचे की मञ्जिल में । हाथा-पाई तक की नौबत पहुँच चुकी थी, लेकिन लोगों ने अब दोनों को अलग-अलग करके सँभाल रक्खा है, और मीर बाकर अली समझा-बुझा कर उन्हें करीब-करीब ठण्डा कर चुके हैं ।

चचा से न रहा गया। यह बात उन्हें कैसे सह्य हो सकती थी, कि उनके रहते मोहल्ले का कोई और आदमी इस प्रकार के झगड़ों में पड़च बन बैठे। अतः आप तहमद कस, बनियाइन नीचे खींच, दरवाजा खोल बाहर निकल खड़े हुए और बड़े बुजुर्गाना ढंग से बोले—“अरे भई, क्या बात हो गई?”

मीर बाकर अली ने कहा—“अजी, कुछ नहीं, यों ही ज़रा-सी बात पर इन खाँ साहब और मौलवी साहब में झगड़ा हो गया था। मैंने समझा दिया है दोनों को।”

वे तो समझ गए, मगर चचा भला कहाँ समझते हैं! मौक़े पर जा पहुँचे और बोले—“मगर बात क्या हुई, यह तो कुछ ऐसा नज़्हा नज़र आता है, जैसे खुदा ना-ख़वास्ता, कौजदारी तक नौबत पहुँच गई थी।”

मीर बाकर अली ने टालना चाहा—“अजी, अब खाक डालिए इस किस्मे पर, जो होता था, हो गया, पड़ौसियों में दिन-रात का साथ, कभी-कभी शिकायत पैदा हो ही जाती है।”

अब भी चचा को सन्तोष न हुआ। वे बोले—“पर ज्यादाती आखिर किस तरफ़ से हुई?”

खाँ साहब बोले—“पूछिए, इन मौलवी साहब से, जो बड़े मुत्तक़ी (साधु) बने फिरते हैं। दाढ़ी तो बालिशत-भर बढ़ा रक्खी है, लेकिन जब हरकतें कमीनों की-सी हों, तो दाढ़ी से क्या फ़ायदा?”

चचा चौंक कर बोले—“ओहो ! यह किस्सा तो टेढ़ा मालूम होता है ।”

अब मौलवी साहब कैसे चुप रह सकते थे, बोले—“साहब, इनको चुप कराइए, मैं बड़ी देर से तरह दिए जा रहा हूँ, और यह जो मुँह में आए वक्ते चले जाते हैं, इसका नतीजा इनके हक में अच्छा न होगा ।”

खाँ साहब कड़क कर बोले—“अबे जा, चार भले आदमी बीच में पड़ गए, जो मैं रुक गया, नहीं तो आज नतीजा तो ऐसा बताता, कि छटो का दूध याद आ जाता ।”

मौलवी साहब ने तन कर कहा—‘ ताकत के घमण्ड में न रहना खाँ साहब, अंग्रेजों का राज है ! जी हाँ, और यहाँ भी कोई ऐसे-वैसे नहीं हैं । हम भी ऐसे हथियारों पर उतर आए, तो याद रखिए, वरना जी हाँ...।”

खाँ साहब बेकाबू हो गए । मुक्ता तान कर बड़ा ही चाहते थे, कि लोगों ने बीच-बचाव करके रोक लिया । मौलवी साहब आसतीनें चढ़ाते-चढ़ाते रह गए । बाकर अली साहब ने परेशान हो कर चचा छक्कन से कहा—“दोनों के दोनों अच्छे खासे समझ गए थे ; आप ने फिर दोनों को भड़का दिया ।”

चचा बोले—“लाहौल-विला-कुवत । कहने लगे, कि आपने भड़का दिया । अजी हज़रत, मैं तो सिर्फ़ इतना पूछ रहा था, कि कसूर किस का है । आप जो बड़े पंच बन कर घर से

निकल खड़े हुए, तो इतना तो मालूम कर लिया होता, कि ज्यादाती किसकी है और असल क्रिस्ता क्या है।”

बाक़र अली ने फिर बात टालनी चाही—“अजी, कौँ अब सड़क पर क्रिस्ता सुनिएगा ; जाने दीजिए, जो हुआ सो हुआ, मैं तो इन दोनों की शराफ़ की दाद देता हूँ, कि जो हमने कहा, इन्होंने मान लिया। बान आई-गई हो गई, अब आप क्या गड़े मुर्दे उखाड़ने लगे !”

चचा ने देखा, कि मीर बाक़र अली छाप चले जा रहे हैं ; आग ही तो लग गई, लेकिन संभल कर बोले—“साहब, आप को इस मोहल्ले में आए अरसा ही कितना हुआ, और हमारी तो नाल ही इस मोहल्ले में गड़ी हुई है। अब आप जाने दीजिए न इस बात को,.....और सड़क पर की क्या बात है। यह झगड़ा हम तक आज न पहुँचता, तो कल पहुँच जाता, सो अब भी क्या हर्ज है सामने ती गरीबखाना है, अन्दर चल कर बैठें। दो मिनट में क्रिस्ता तय हुआ जाता है। मुझे तो यह कभी गवारा नहीं, कि जिस मोहल्ले में सभी रहते हों, वहाँ पड़ोसियों में यों बाज़ार में जूते चला करें।”

यह कह कर चचा ने मजमे पर एक दृष्टि डाली और बोले—“क्यों साहब, खुदा लगती कहिए, यह भला कोई शराफ़त है ?”

मजमे में से ससर्थन की भिनभिनाहट-सी सुनाई दी। मीर साहब चुप रह गए। चचा बोले—“तो आप दोनों साहब अन्दर तशरीफ़ ले आए न, और मीर साहब, अगर चाहें, तो

मीर साहब भी आ सकते हैं।” अन्य लोगों को सम्बोधित कर बोले—“आप लोग जा सकते हैं, यहाँ कोई भाँड़ तो नाचेंगे नहीं, जो आपको भी बुलाऊँ। आपस के भगड़े तय कराना बड़े दिमाग का काम है, आप लोग अपने-अपने घर जा कर आराम कीजिए।”

लीजिए साहब, चचा क्राजी बन गए ! वे मुद्दे, मुद्दालेह और मीर साहब को लिए घर में आए, घर पहुँच कर पहिले मर्दाने ही से आज्ञाओं की बौछाड़ लगा दी, कि बुन्दू लैम्प लाए, मूदा बर्फ का पानी लाए और इमामी हुक्का ताज्जा करके पहुँचाए ; और बुन्दू लैम्प ला चुकने के बाद पानदान ले कर आए, मूदा पानी बना चुकने के बाद उगालदान ला कर रखे और इमामी हुक्के से फरागत पाने के बाद पंखा भले।

चचा ने सबको दीवानखाने में बिठाया और स्वयं यह कह कर अन्दर गए, कि मैं अभी आया। अन्दर जा कर बनियाइन पर चिकन का कुर्ता पहना। कुर्ता पहन ही रहे थे, कि चची ने जल्दी-जल्दी नमाज खत्म कर सलाम फेर कर पूछा—“क्या बात है ?”

चचा बेपरवाही के साथ बोले—“अजब हालत है लोगों की। न दिन को चैन लेने देते हैं अर न रात का। इन सामने वाले खाँ साहब और मौलवी साहब में भगड़ा हो गया ; मुसीबत में मेरी जान पड़ गई, सब कह रहे हैं, कि आप श्रम में पड़ कर कैसला करा दीजिए। बात टाली भी नहीं जा

सकती ; मोहल्ले का मामला ठहरा । खेर, तुम नमाज से छुट्टी पाकर पान के कुछ बीड़े लगा कर भेज देना ।”

चची जल कर बोली—“यह शौक भी पूरा कर लीजिए ।”

चचा कुर्ते के बटन लगाते हुए बाहर निकले । दीवानखाने में पहुँच कर आराम-कुर्सी पर लेट गए, टाँगें समेट कर उपर रख लीं और बोले—“मैं हाज़िर हूँ ; कहिए क्या बात हुई ? पूरा हाल बयान कीजिए, लेकिन थोड़े में ।”

मौलवी साहब और खाँ साहब दोनों को तयारी चढ़ी हुई थी । मुँह फुलाए लाल-लाल आँखों से एक इस ओर और दूसरा उस ओर ताक रहा था । चचा का तकाजा सुन कर दोनों के दोनों कुछ कुसमुसाए, मगर चुप बैठे रहे । मीर साहब ने मौन भंग किया—“हज़रत, बात तो असल में बड़ी मामूली थी ?”

चचा ने कहा—“आप भूमिका न बाँधिए, मतलब की बात कहिए ।”

मीर साहब ने गुस्से को पी कर कहा—“तो और क्या कहूँ । बात हकीकत में निहायत मामूली है, लेकिन.....।”

खाँ साहब से न रहा गया, वे बोले—“कोई आप की बहू-बेटी को यों देखता, और आप इसे मामूली बात कहते, तो जानता ।”

चचा कुर्सी पर उकड़ूँ बैठ गए और बोले—“औरतों का वाक्या है, तो सचमुच हज़रत इसे मामूली बात कहना, तो

बड़ी ज्यादाती है आप की। खाँ साहब, आप खुद ही न किस्सा कह जाइए।”

बाक़र अली साहब चुप हो गए। खाँ साहब को प्रोत्साहन मिला। वे बोले—“आप-सा मुन्सिफ़-मिज़ाज़ (न्यायप्रिय) बुजुर्ग पूछेगा, तो कहूँगा ही। आप से क्या पर्दा है?”

चचा फूल गए। कुछ कहना आवश्यक प्रतीत हुआ। “नहीं, नहीं, कोई बात नहीं, आप बिला तकल्लुफ़ कहिए।”

खाँ साहब ने यों कहना आरम्भ किया—“आप जानते ही हैं, कि इस सामने के मकान की निचली मञ्जिल में हम रहते हैं और ऊपर की मञ्जिल में एक खिड़की है, जिससे हमारे मकान के सहन में नज़र पड़ती है।”

चचा ने बात काट कर कहा—“जी हाँ, जी हाँ, मेरी देखी हुई क्या, मेरे सामने बनी है, और एक इस खिड़की का क्या ज़िक्र, पूरे मकान के बनवाने मेरा बहुत-कुछ हिस्सा रहा है। मालिक मकान फज़लुर्रहमान खाँ का मुझसे मेल-जोल था। हैदराबाद जाने से पहिले हर रोज़ शाम को वे मुझसे मिलने आते थे; और सच पूछिए, तो उन्हें यह राय भी मैंने ही दी थी, कि खाली ज़मीन पड़ी है और कौड़ियों के मोल बिक रही है, तो कुछ ऐसी सूरत करनी चाहिए, कि किराए का एक सिलसिला निकल आए, तो उन्होंने यह मकान बनवाया। और, वो बह बात जाने दीजिए, आप अपनी बात कहिए।”

खाँ साहब ने सोचा, कि बात कहाँ तक की थी। वे बोले—
 “जी, तो ऊपर की मञ्जिल में एक खिड़की है, जिससे हमारे
 यहाँ का सहन दिखाई देता है। हम इस मकान में पहिले से
 रहते हैं। यह हज़रत बाद में आए, आते ही हमने इनसे कह
 दिया, कि मौलवी साहब, इस खिड़की में अगर आप ताला
 डलवा दें, तो मुनासिब है; नहीं तो औरतों का सामना हुआ
 करेगा, और मुफ्त में कोई न कोई भगड़ा खड़ा हो जायगा !”

चचा ने दाद दी—“बहुत मुनासिब कार्रवाई की आपने।
 क़ानून के लेहाज़ से गोया आपने एक ऐसी पेशबन्दा कर ली
 कि बाद में अगर किसी तरह की भी शिकायत पैदा हो, तो
 आपको गिरफ्त का जायज़ मोका मिले। बहुत ठीक, जी, तो
 फिर ?”

खाँ साहब तारीफ़ से बहुत खुश हुए—“खुदा हुज़ूर का
 भला करे ! मैंने सोचा, नए आदमी हैं, क्यों न पहिले से ही
 खबरदार कर दूँ। सो साहब, इन्होंने भी मुझे यक़ीन दिलाया
 कि खिड़की में ताला डाल दिया गया है, और मैं बेफ़िक हो गया।
 अब जनाव, आज सुबह को क्या हुआ, कि.....।”

“यह लीजिए, ठण्डा पानी पीलिए; आप भी लीजिए
 मौलवी साहब.....पानी दे बे, मीर साहब को;.....जी तो
 आज सुबह.....अबे, रख दे मेज़ पर पानदान, सिर पर
 क्यों सवार हो गया है ? और वह इमामी कहाँ मर रहा है,
 अभी तक हुक्का नहीं भरा गया ? जी साहब, आप कहे जाइए,

मैं सुन रहा हूँ.....हाँ ; और वह उगालदान ? कह भी दिया था, फिर भी याद नहीं रहा, बड़े नालायक हो तुम लोग ।
.....अप कहिए न, खाँ साहब !”

खाँ साहब ने कुछ देर शान्ति की प्रतीक्षा की, फिर बोले—“ जी, तो आज सुबह, इधर मैं दुकान पर चला, उधर ऊपर की मञ्जिल में एक बच्चे ने खिड़की खोल दी । औरतें सहन में बैठी थीं । उन्होंने खिड़की बन्द करने को कहा, तो यह हज़रत खिड़की में स्वयं आ मौजूद हुए और औरतों को घूरने लगे । अब आप ही कहिए, कि यह शरीकों और मौलवियों की-सी बातें हैं, या लुच्चा और शोहदों की-सी हरकतें !”

चचा ने आश्चर्य के साथ आँखें खोली, गर्दन झुका ली और फिर एक हाकिमाना ढंग से सिर फेर कर मौलवी साहब की ओर देखा ! वे बोले—“मौलवी साहब, यह तो आपने ऐसी नामुनासिब और शरह (धर्म) के खिलाफ बात की, जिसके लिए आपको जितना भी दोष दिया जाय, थोड़ा है ।”

मौलवी साहब देर से बैठे चुप-चाप देख रहे थे, कि चचा सहानुभूति के साथ खाँ साहब की बात सुन रहे हैं । अब चचा ने उन्हें सम्बोधित किया, तो वे भड़क उठे—
पुबहानल्लाह ! आप भी अजब सीधे-सादे आदमी हैं । जो कुछ किसी ने कह दिया भट उसे सच समझ लिया । वाह साहब, वाह !! बन्द करने को लपका और किवाड़ बन्द करके उसी वक्त ताला लगा दिया ।”

चचा ने फिर टोका—“क्यों हज़रत, यह आप के घर में नाला खोलना, तो बच्चों को भी आता है, मगर बन्द करना आपके सिवा किसी को नहीं आता ? खूब !”

मीर बाकर अली साहब बोले—“हज़रत, यह एक घब-राइट की बात थी । इससे जाहिर होता है, कि इन्हें इस खिड़की के बन्द रखने का हर वक़्त खयाल रहता था । खुली देखी, तो एक-दम बन्द करने के लिए लपके !”

मौलवी साहब ने और भी सफ़ाई के खयाल से कहा—“खुदा गवाह है, जो मुझे यह ध्यान भी रहा हो, कि सहन में औरतें मौजूद होंगी, या मैंने उस तरफ़ नज़र भी डाली हो । सरासर भूठ है, कि मैं खड़ा रहा, बल्कि मैंने तो नीचे कहला भी भेजा था, कि मुझे बड़ा अफ़सोस है, कि बच्चे ने खिड़की खोल दी थी।”

मीर साहब ने मौलवी साहब के चाल-चलन के विषय में गवाही दी—“मौलवी साहब जब से यहाँ आए हैं, मैं इन्हें जानता हूँ । मेरे बच्चों को पढ़ाते हैं, रोज़ का आना-जाना है, और मैं दावे से कहता हूँ, कि यह इस तरह के आदमी नहीं हैं । चुनाञ्चे मैंने ख़ाँ साहब से भी यही कहा था, कि औरतों को ग़लतफ़हमी हो गई होगी, नहीं तो मौलवी साहब से किसी बुरे खयाल की उम्मीद नहीं हो सकती।”

लेकिन चचा भला दूसरे की राय को कब खातिर में लाते हैं । वे बोले—“दिला का हाल खुदा जानता है, और इसके बारे में

कुछ कहना मेरे लिए कु.फ्र है। बहरहाल अभी सब कुछ खुला जाता है। तो जनाव-मौलवी साहब, आप रेलवे के दफ्तर में क्लर्क हैं न? खूब, और आपको एतवार के दिन छुट्टी भी होती है? बहुत खूब!! और जनावमन, आज एतवार का दिन था? नहीं, नहीं, बतलाइए, था या नहीं? खुदा आपका भला करे! और जनाव, एतवार के दिन आप घर ही में रहते हैं, ठीक? तो सवाल यह है, कि अगर खिड़की खुलनी थी, तो एतवार ही के दिन क्यों खुली, जब आप घर में मौजूद थे? किसी और दिन क्यों नहीं खुली?" —यह कह कर चचा ने नथुने फुला कर विजय के गर्व के साथ बारी-बारी सब पर इस तरह नज़र डाली, मानो कोई बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रश्न करके मौलवी साहब को निरुत्तर कर दिया हो।

मौलवी साहब इस तर्क से परेशान-से हो गए। वे बोले—
“हज़रत, इस बात का महत्त्व मेरी समझ में तो आया नहीं, बाक़ी किस्सा यह है, कि खिड़की की चाबी गुच्छे में है, गुच्छा मेरे पास रहता है, जब मैं घर पर रहूँगा, तभी गुच्छा घर पर होगा और उसी वक़्त खिड़की खुलने की सम्भावना भी है।”

चचा को इस जवाब की आशा न थी। सिर पीछे को ढाल कर कुर्सी पर लेट गए और बोले— अब यह आपका हठ है, नहीं तो यह हक़ीक़त है, कि इस बात का जवाब आपके पास कुछ नहीं है।”

मौलवी साहब ने, न जाने जान-बूझ कर या अनजाने में ही, चचा पर थोड़ा रोगान चढ़ाया। वे बोले—“साहब, जो असल वाक्या था, वह तो मैंने अर्ज कर दिया। अब आप अपनी क्रावलीयत से जो नुक़ता चाहें निकाल सकते हैं, और मुझ से जाहिल की क्या हसी, कि वहस में आपसे आगे जा सकूँ।”

चचा प्रसन्न हो गए। मौलवी साहब के विरुद्ध, जो भाव अन्दर ही अन्दर काम कर रहा था, ठण्ढा पड़ गया। ऐसे ढंग से हँस पड़े, मानो अभी तक सिर्फ़ मन-बहलाव के लिए ये तर्क कर रहे थे। मुस्कुरा कर बोले—“मालूम होता है, आपको भी मन्तिक (तकशास्त्र) से दिलचस्पी है……”

ले आया वे हुक्का ? रख दे इधर, अच्छा उधर ही रख दे। लीजिए मौलवी साहब, लीजिए न। ज़रा तम्बाकू देखिए, सीधे मुरादाबाद से मँगवाता हूँ, नहीं तो यहाँ का तम्बाकू तो आप जानिए, निरा गोबर होता है। मुरादाबाद में अपने एक रिश्तेदार हैं, कलकटरी में पेशकार हैं; मगर साहब, उनकी पहुँच का क्या कहना, वही कभी-कभी याद कर लिया करते हैं।”

मौलवी साहब ने हुक्के के कश लगाने शुरू किए। ख़ाँ साहब ने देखा, कि चचा तो मौलवी साहब की ओर भुके जा रहे हैं, गुस्से से लाल-पीले हो गए और बोले—“जिस बात के लिए आपने बुलाया था, वह तो……।”

चचा ने बात काट कर कहा—“जो हाँ, देखिए, मैं अर्ज करता हूँ, तो जनावमन, बाक्री रहा उस भगड़े का किस्सा। तो ख़ाँ साहब, मेरी निजी राय पूछिए, तो ताली एक हाथ से नहीं बजा करती। दुनिया में आज तक जितने भी भगड़े हुए, हमेशा उनमें दोनों तरफ़ से हिस्सा लिया गया।”

ख़ाँ साहब ने तुरन्त पूछा—“इस भगड़े में भला मेरा क्या कुसूर था?”

चचा ने जवाब दिया—“अरे भाई, कुछ न कुछ होता ही है न, तुम्हारा न सही, तुम्हारे घर वालों का सही; अब भला उन्हें इस वक़्त सहन में बैठने की क्या जरूरत थी, कोई वहाँ बाग़ तो लगा हुआ नहीं है। आप कहेंगे, कि आपके घर का सहन था। ज़रा देर के लिए मान लिया, कि था; मगर फिर उपर खिड़की की तरफ़ देखना क्या जरूरी था? वैसे मेरा कोई बुरा मक़सद नहीं, फिर भी देखिए न, कि बात को बढ़ाया जाय, तो कुछ बी कुछ हो जाती है। मतलब मेरा यह है, कि ऐसे मामलों में तो जितना छानो उतना ही करकट निकलता है।”

मीर साहब इस कार्रवाई में तंग आ चुके थे। वे बोले—“अजी, अब कसूर एक का था या दोनों का, इस बहस से आखिर क्या फ़ायदा? आप इस किस्से को किसी ऐसी तरह निबटाइए, कि आइन्दा के लिए इन दोनों साहबों का इतमीनान हो जाय। मैंने तो यह तजवीज़ किया था, कि आइन्दा के

इतमीनान की गरज से मौलवी साहब की खिड़की में खाँ साहब अपना ताल डाल दें।”

चचा छक्कन ने कनखियों से मीर साहब की तरफ देख कर पूछा—“क्या मतलब ?”

मीर साहब ने कहा—“मतलब यह, कि मौलवी साहब के मकान की इस खिड़की में ताला बन्द रहे और उसकी चाबी इतमीनान के लिए खाँ साहब अपने पास रखें।

यह प्रस्ताव चचा को उचित जान पड़ा, लेकिन चूँकि यह मीर साहब की ओर से पेश हुआ था, इसलिए मानने को उन का जी न चाहा। वे बोले—“नहीं, नहीं यह तो कुछ.....ऊँहूँ कुछ नहीं.....इस तरह तो.....ख्वाहमख्वाह खाँ साहब अपना एक ताला बेकार कर डालें; और अपने घर में किसी दूसरे का ऐसा दखल किसी हयादार को कब गवारा हो सकता है ? यह ताला-वाला कुछ नहीं, कोई और तजवीज होनी चाहिए; मुनासिब तजवीज, जो दोनों फ़रीकों के लिए फ़ायदे-मन्द भी हो और इतमीनान का वायस भी। क्यों साहब, अगर खिड़की चुनवा दी जाय, तो कैसा है ?”

खाँ साहब बोले—“अब्वल तो मालिक मकान अब यहाँ है नहीं, और अगर उसे लिखा भी जाय, तो वह इसे मंजूर न करेगा। मैंने एक बार यह तजवीज पेश की, तो वे कहने लगे, कि इस खिड़की के बन्द होने से कमरे में अँधेरा हो जायगा।”

चचा ने कहा—“यह दूसरी बात है, बरना तजवीज खूब थी। सदा के लिए यह किस्सा खत्म हो जाता। मसलन आप दोनों के चले जाने के बाद कोई दो और किराएदार आ कर बसते, तो उनमें भी किसी किस्म का भगड़ा होने की सम्भावना न रहती। आया न खयाल-शरीफ में? मगर यह कमरे में अंधेरा हो जाने का सवाल बेशक टेढ़ा है। खैर, न सही यों, किसी और तरकीब से काम लीजिए। तरकीबें बहुत—वेशुमार हैं। मुझे तो सिर्फ आप लोगों की सहूलियत का खयाल है, नहीं तो मैं तो तजवीजों के ढेर लगा दूँ, परेशान कर दूँ आपको; बड़े-बड़े किस्से चुकाए हैं, इस एक खिड़की बेचारी की क्या हकीकत है। तो यों क्यों न कीजिए, कि मसलन आप दोनों में से एक साहब मकान खाली कर दें और किसी दूसरी जगह जा रहें। क्यों साहब, क्या राय है?”

खाँ साहब और मौलवी साहब पड़ले कुछ मुँह ही मुँह में बोले, फिर खाँ साहब ने कहा—“साहब, मैं तो मकान छोड़ नहीं सकता। कहाँ नया मकान ढूँढ़ता फिरूँ?”

मौलवी साहब ने भी मजबूरी प्रगट की—“हज़रत, मेरे लिए तो यह फिलहाल नामुमकिन है। इतने किराए में इतनी गुञ्जायश भला और कहाँ मिलेगी।”

चचा की असंख्य तजवीजों का भण्डार इस पहली ही तजवीज के बाद समाप्त हो चुका था। वे बोले—“अब यों आप हर तजवीज में मीन-मेख निकालने लगे, तो तय हो चुका आपका

झगड़ा; यानी मकान बदलने में आखिर बुराई ही क्या है। सीधी-सी बात है, कि भाई नहीं निभती तो अलग हो जाओ—न रहे बाँस, न बजे बाँसुरी। क्या आपके ख्याल में इस मकान के सिवा शहर-भर में और माकूल मकान ही नहीं? या और मकान बाल-बच्चेदार लोगों के रहने के लिए नहीं बनवाए गए? इनकार की कोई वजह भी तो होनी चाहिए। इससे तो जाहिर होता है, कि आप लोग सुलह-सफाई नहीं चाहते और चाहते हैं, कि रोज इसी तरह के झगड़े उठा करें। ऐसी हालत में मेरे लिए और कोई तजवीज पेश करना मुश्किल है। आप खुद आपस में निपट लीजिए।”

मीर साहब बेचारे परेशानी की हालत में यह बातें सुन रहे थे और कुस पर बार-बार पहलू बदलते थे। आखिर उन से न रहा गया: हिम्मत करके वे बोले—“मैंने तो अर्ज किया न, कि दोनों के लिये सबसे अच्छी तरकीब वही है, कि खिड़की में ताला लगा रहे और उसकी चाबी.....।”

चचा जन्म कर बोले—“अजी, आप क्या एक वाहियात-सी बात के पीछे पड़ गए हैं ओर बार-बार कहे जा रहे हैं—चाबी-ताला, चाबी-ताला! यानी आप ने तो ऐसा कुछ समझ रक्खा है, जैसे एक बाले की दूसरी कुंजी बनवाई ही नहीं जा सकती।”

मीर साहब ने भी जल कर जवाब दिया—“फिर यों तो दीवार की ईंटें भी निकाल कर भाँका जा सकता है।”

बात चचा के समझ में न आई। वे बोले—“तभी तो कहा था, कि एक साहब मकान बदल दें। न मानें, तो इसका क्या इलाज ? अच्छी बात है, वह इनकी औरतों को देखा करें, यह उनकी औरतों को ताका करें।”

खाँ साहब ताव खा गए। बिगड़ कर बोले—“देखिए साहब, मुँह सँभाल कर बात कीजिए। औरतों का नाम यों ही नहीं लिया जाता। यह इज्जत का मामला है। हम गरीब सही, मगर नकटे नहीं हैं !”

चचा कुछ कुसमुसाए, मीर साहब घबराए, मौलवी साहब उठ खड़े हुए और बोले—“तो साहब, अब मैं इजाजत चाहता हूँ। घर पर बाल-बच्चे परेशान हो रहे होंगे। जब कोई बात तय हो चुके, तो मुझे कहलवा दीजिएगा।”

खाँ साहब ने उठ कर उनका हाथ पकड़ लिया। वे बोले—“तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, हमारे बाल-बच्चे नहीं है ? पहले फ़ैसला हो जाए फिर जाने दूँगा।”

मौलवी साहब ने हाथ छुड़ाना चाहा, मगर खाँ साहब की गिरफ्त मजबूत थी। वे बोले—“तो अपना ताला लाओ और खिड़की में डाल दो।”

खाँ साहब बोले—“ताला तुम दो, चाबी मेरे पास रहेगी।”

चचा को यह तजवीज शुरू ही से नापसन्द थी। वे बोले—“ताला यह क्यों दें, बेपर्दगी तुम्हारी औरतों की होती है, या इनकी ?”

चचा के समर्थन से मौलवी साहब को भी हौसला हुआ ।
वे बोले—“देखिए, तो सही !”

खाँ साहब के आग लग गई । बढ़ कर मौलवी साहब की गर्दन पर हाथ डाला । मौलवी साहब के गले से एक इस तरह का स्वर निकला, जैसे ज़िबह होते हुए बकरे का निकलता है । मीर साहब ‘हैं-हैं’ करते लपक कर उठे । चचा बोले—“यह हाथा-पाई ठीक नहीं ।” खाँ साहब ने मीर साहब को ढकेला, तो वे लड़खड़ाते हुए दीवार से जा लगे । चचा ने हाथ पकड़ना चाहा, तो एक जोरदार थप्पड़ उन्हें भी रसीद किया । मीर साहब तो चुपके खड़े रह गए, चचा दो कदम पीछे हट कर बोले—“हाइ थू .. !” लेकिन खाँ साहब किसकी सुनते हैं । मौलवी साहब को गर्दन से पकड़ कर ढकेलते हुए बाहर निकल गए । मीर साहब आवाजें सुनते ही फिर बाहर को निकले । चचा चुप-चाप जहाँ थे वहीं खड़े-खड़े गाल सहलाते रहे !

खड़े ही थे, कि पर्दा उठा । चची अन्दर आ गई । गुस्से के मारे उनका चेहरा तमामा रहा था । वे बोलीं—“मैं कहती न थी, कि पराए क्रिस्से में दखल न देना; मगर मेरी बात इस कान सुन उस कान उड़ा दी । अब आया होगा मगड़ा चुकाने का मज़ा । दो कौड़ी का आदमी वे आवरू कर गया ।”

चचा इसके लिए तैयार न थे । वे बेक्राबू हो गए—“खो, इस वक़्त मुझसे बात न करो, वरना खुदा जाने, मैं क्या कर बैठूँगा ।”

चची जल कर बोलीं—“अब और क्या करोगे ? घर की इज्जत खाक में मिला दी । मोहल्ले में किसी को मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहें । अभी कुछ और करने के अरमान बाक़ी हैं !”

चचा से जवाब बन न पड़ा । वे बोले—“इज्जत थी तो हमारी थी, तुम्हारी नहीं थी । तुम्हें क्या ?”

चची बोलीं—“यह उम्र होने को आई, बच्चों के बाप बन गए और बेइज्जत होते शर्म नहीं आती !”

इस के जवाब में चचा ने घर और बच्चों के सम्बन्ध में कुछ ऐसे अनुचित शब्दों का प्रयोग किया, जिन्हें यहाँ नहीं लिखा जा सकता ।

गरज़ यह, कि मोहल्ले के भगड़े की आवाज़ घर में आ रही थी, और घर के भगड़े की आवाज़ मोहल्ले में पहुँच रही थी !



शैतान की खाला

3 इसका नाम चाहे जो भी रहा हो, लेकिन लोग तो उसे शैतान की खाला ही कहते थे। कई वर्ष पूर्व जो लड़के थे, अब सयाने हो कर किसी काम में लग गए। उनकी जगह दूसरे लड़कों ने ले ली। इस चार्ज के बदलने में ज़रा भी विलम्ब न हुआ, और न किसी को उसका पता ही लगा! पानी की जगह पानी ने ले ली। शैतान की खाला, शैतान की खाला ही रही।

वह सचमुच शैतान की खाला ही थी! उसे देख कर ऐसा जान पड़ता था, कि मानो अभी कब्र तोड़ कर भागी आ रही है। खुली हुई प्रकाशहीन आँखें, धँसे हुए गाल, उलभी हुई लटें, ये सभी बातें दिल दहलाने के लिए काफ़ी थीं। उसके शरीर पर सिवा एक फटे पाजामा के, जिससे आधे टखने खुले रहते थे, और अधिक से अधिक एक डेढ़ हाथ की ओढ़नी के, जो तार-तार हो रही थी, और कुछ न था। कदाचिन् ईश्वर ने अपने बन्दों की परीक्षा के लिए उसकी ऐसी सूरत बनाई थी कि देखें कौन-कौन इस रचना पर मुग्ध होता है!

वह जिस राह से निकल जाती, भूकम्प-सा आ जाता । लड़के आसमान सिर पर उठा लेते । ‘शैतान की खाला !’, ‘ओ शैतान की खाला !’, ‘अरे शैतान की खाला !’, ‘कहाँ जाती हो ?’ की आकाश-भेदी आवाजें आने लगतीं । लड़कों का तो यह काम ही था, बड़े-बूढ़े, जवान—सभी इस तरह उसे पुकारने में ऐसे खुश होते थे, मानों उन्हें कुवेर की सम्पद् मिल गई हो । इक्के वाले, ताँगे वाले, कुएँ पर पानी भरने वाली औरतें, कोई भी इस अवसर को हाथ से न जाने देता था । आगे-आगे शैतान की खाला होती, पीछे लड़कों का झुण्ड ! कोई तालियाँ बजाता, कोई उस पर कङ्कड़ियाँ फेंकता, “शैतान की खाला जाती है ! पकड़ो, जाने न पावे !”—अपनी इस आव-भगत से उसके मँह से ऐसे-ऐसे फूल मड़ते, जो दुनिया में कहीं मुश्किल से सुनने को मिलेंगे ।

हिन्दू अपने पूर्वजों को तृप्त करने के लिए जल-दान देते हैं, मुसलमान फ़ातिहा पढ़ते हैं । शैतान की खाला हिन्दू भी थी, और मुसलमान भी । दोनों के दादों-परदादों, नगड़दादों की आत्माओं को मुक्ति दिलाने की कोशिश में जान निकाल कर रख देती । जिन्दा और मुर्दा उसकी नज़रों में बराबर थे । कभी-कभी वह रास्ते में खड़ी हो कर खूब नाचती । कभी-कभी तो इतना मस्त हो जाती कि उसे किसी बात का ध्यान ही न रहता । देखने वाले चकित रह जाते । न कोई साज, न पाँव में पौजेब, फिर भी उसके नाच से एक समाँ बँध जाता । कभी

उस फटी ओढ़नी से मुँह छिपा लेती और नई-नवेज़ी बहू वन जाती। कभी अञ्चल को छिपा कर सङ्कोच से नीचे ताकती और थिरकती और कभी ललकार कर गाती :

चकिया सब रागन की रानी ।

जावी चकिया बन्द पड़ी है,

ताकी अकिल भुलानी ।

चकिया सब रागन की रानी ।

थोड़ी देर के लिए वह अपने को भूल जाती, और किमी युवती की तरह उसका दिल उमंगों से लहरा उठता। पिचके गालों पर लाली दौड़ जाती।

२

उसी महुल्ले में हाजी वज़ीर खाँ नामक एक वृद्ध रहते थे। रोज़ा-नमाज़ के बड़े पाबन्द, तसवीह हर समय हाथ में रहती। शरई कुर्ता और पाजामा पहिनते थे। माथे पर सिजदे का स्याह निशान था। धनवान थे, और रईस भी। मुन्सिफ़ी की चपरासगिरी कोई ऐसा-वैसा ओहदा न था। इसी की बदौलत तामील से लौटते समय सञ्जी का एक बड़ा बोझ लाठी में लटका कर लाते थे। कभी कंधे पर ईख का बोझ होता था। कभी रस या राब की हँडिया साथ होती। सदरी का जेब अलग फूला न समाता। हाजी जी के लिए यह ओहदा किसी कामधेनु से कम न था। इस पेड़ में सदा फल

लगते थे। मौसम के मुहताज नहीं थे। उनकी आमदनी पर जलवायु का कोई असर नहीं था। दरवाजे पर चार बकरियाँ और एक गाय हर समय बँधी रहती थीं। एक खानदानी रईस के लिए चाहिए ही क्या !

३

हाजीजी शुरू से निकाह की अपेक्षा मुताह के कायल थे। लड़कपन में माँ-बाप से छिप कर बंगाल भाग गए थे। कई साल तक पता न चला। बाद में मालूम हुआ कि किसी लड़की को भगाए हुए इधर-उधर फिर रहे हैं, लाज के मारे घर नहीं आते। बाप ने पता लगा कर पत्र द्वारा समझाया—“बेटा, ऐसी भूलें सभी से होती हैं। एक बार मैं भी इसी जुर्म में ६ मास की कैद भुगत आया हूँ। यह कोई भूल नहीं है। उम्र का तकाजा है। बेटा, गरीब बाप को अब और न तड़पाओ, घर आ जाओ।”

पर वह सपूत थे, कपूतों की तरह घर बैठे-बैठे बाप की कमाई कैसे उड़ाते? एक महीना भी न होने पाया था कि फिर गायब हो गए।



पाँच साल बीत गए। वज़ीर खाँ ने इस बीच दुनिया का नीचा-ऊँचा सब देख डाला। शराब भी पी। उसके खुमार की वेदना भी सही।

जाड़ों की रात थी। आठ-नौ बजे होंगे, खुरशेद जान का कमरा बिजली के प्रकाश से जगमगा रहा था। वजीर खाँ मसनद के सहारे आराम से बैठे थे। खुरशेद उनके पहलू में थी। वजीर ख ने उसके गालों पर धीरे से दो-तीन चपत लगाए। खुरशेद भी उन्हें ऐसी चितवनों से ताक रही थी, मानो प्यासी हिरनी चश्मे के पानी की ओर देख रही हो।

“आज की रात कितनी सुहावनी है, खुरशेद !”

खुरशेद उनकी आँखों में आँख डाल कर बोली, मानो कुछ समझती ही न हो—“क्या ?”

वजीर खाँ ने एक हलकी चपत और लगाई—“आज तुम कितनी प्यारी लगती हो, खुरशेद !”

खुरशेद मानो चौंक पड़ी—“यही मैं भी सोच रही थी, तुमने मुझे इतना कभी नहीं प्यार किया।”

“सच कहती हो, न जाने आज यह दिल तुम्हारी तरफ आप ही आप क्यों इतना खिंचा जा रहा है !”

खुरशेद ने अपनी बाहें वजीर खाँ के गले में डाल दीं। “मुझे तो यही रज्ज है कि तुम अब भी मुझे बाज़ारू मिठाई समझते हो। इस जीवन से तो अब जी ऊब गया है। यह अब मेरे लिए भार हो रहा है। यही जी चाहता है कि कहीं जा डूब मरूँ !” यह कह कर उसने मुँह दूसरी ओर कर लिया। गालों पर गरम-गरम आँसुओं के कतरे बह आए।

वज्जीर खाँ—“हैं ! यह क्या ? बड़ी नासमझ हो, खुरशेद !”

खुरशेद सिसकियाँ भर रही थी। बोली—“इतने दिन बीत गए, एक-दो नहीं, हजार बार, कह चुकी कि अब मैं आप का खिलौना बनने को तैयार नहीं हूँ। मेरे लिए तो यही अच्छा है, कि कुएँ-तालाब में जा गिरूँ !”

“खुरशेद.....”

खुरशेद ने बात काटी, “अब मैं कुछ नहीं सुन सकती। आज ही फैसला कर दीजिए, या तो आज़ा दीजिए कि बाक़ी ज़िन्दगी आपके क़दमों में बसर करूँ, या जवाब ही दे दीजिए ! मैं अपना रास्ता सोच चुकी हूँ।” यह कह कर वह फिर मिसकने लगी।

“वज्जीर खाँ को अब अधिक लज्जित न करो, खुरशेद ! वह रूपए वाला नहीं है, मगर दिल रखता है, उसकी क़द्र करना जानता है, उसका मूल्य समझता है। दुनिया की कोई ताक़त मुझे तुमसे जुदा नहीं कर सकती।

यह कह उन्होंने उसका मुँह अपनी ओर कर लिया। वह भी कुछ न बोली। गालों के आँसू सूख गए। आँखें नम थीं, पर मुस्कुरा रही थीं। उनमें आशा के आँसू थे। वज्जीर खाँ ने कहा, मौक़ा देख कर दो-चार रोज़ में हम यहाँ से चल देंगे।

“कहाँ ?” खुरशेद ने पूछा।

“जहाँ हमारे-तुम्हारे बीच कोई रोक-टोक न हो।”

खुरशेद मुस्कुरा दी। इस ज़रा सी-मुस्कुराहट में आशा और निराशा आँखमिचौनी खेल रही थी। न जाने ऐसे कितने वादे वह प्रतिदिन सुना करती थी। भय था कि कहीं यह भी धोका न हो। उसने सोचा कि वह उस बेचारे के साथ कितना अन्याय कर रही है। वज़ीर खाँ उसका आशिक नहीं, पुजारी है। उसने सन्तोष की साँस ली।

वज़ीर खाँ ने कहा—“साथ कुछ ले चलना होगा, मेरा हाथ तो आजकल बिलकुल खाली है।”

आशा ने पाँव निकाले। बोली—“इसकी कौन चिन्ता है। मेरे गहने ही इतने काफ़ी हैं कि वरसों गुज़र-वसर हो सकता है।”

वज़ीर खाँ इस मैदान के अच्छे खिलाड़ी थे। घात देख कर बार किया, “क्या कहती हो, खुरशेद! खुदा वह दिन न दिखावे, जब ऐसी नीयत हो।

खुरशेद ज़रा तेज़ पड़ी—“जभी तो कहती हूँ, तुम मुझसे दुई रखते हो। अफ़सोस, तुम मुझे अब तक न पहचान सके।”

वज़ीर खाँ ताड़ गए, चिड़िया बुरी तरह दाने पर गिर चुकी है—जाल में फँस चुकी है। मुस्कुरा कर बोले—“तुम्हें जो वरों के जाने का ज़रा भी ग़म न होगा, खुरशेद, ईमान से कहती हो?”

खुरशेद ने जोश से उत्तर दिया, “अपने सर की कसम, खुदा गवाह है।”

“मेरे सर की कसम खाओ।”

खुरशेद उदास हो गई।

वजीर खाँ ने उसकी हथेली दबा कर कहा, “अच्छा देखूँ, तुम्हारे पास क्या-क्या है, जिस पर तुमको इतना भरोसा है!” यह कह कर वह फिर मुस्कराए।

खुरशेद उठी और आन की आन में एक मखमली डिब्बा ला कर वजीर खाँ के सामने रख दिया। सन्दूक खोलते ही वजीर खाँ की आँखों में चकाचौंध पैदा हो गई। एक-से-एक कीमती जेवर थे। मन ही मन समझ लिया कि एक लाख से कम के होंगे। दिल खुशी से बल्लियों उछलने लगा। “इन्हें पहिन कर तुम रानी मालूम होगी, खुरशेद! क्यों अपने साथ इतना जुल्म करती हो?”

चिड़िया पर वाली थी, पर उसमें उड़ने की शक्ति अब न रही। उसकी जान अब शिकारी की मुट्ठी में थी। खुरशेद ने भोली भिड़की दी—“तुमको इससे क्या गरज? अपनी चीज चाहे जिस तरह फूँकू।” उसकी आँखों में आनन्द का सागर लहरा रहा था।

वजीर खाँ—“आज से मैं अपने को एक रानी का राजा समझता हूँ।”

“इसमें भी कोई शक है ! मैं भी अपने राजा की रानी हूँ ”
—खुरशेद ने उल्लास-भरे स्वर से जवाब दिया और वजीर खाँ की छाती में अपना मुँह छिपा लिया ।

“इस तख्त-नशीनी की खुशी में क्या अपने प्यारे हाथों से एक जाम न पिलाओगी ?”

खुरशेद निहाल हो गई ! जाम पर जाम चलने लगे !!

यह वही खुरशेद है, जिस के पैरों पर बड़े-बड़े रईस और धनवान माथा रगड़ते थे । जान तक देने को तैयार रहते, मगर वह सीधे मुँह बात तक न करती । समझती, यह मेरे खिलौने हैं । नादान आज इस मक्कार वजीर खाँ के पीछे बे-अख्तियार दौड़ पड़ी, जैसे मुद्दतों का प्यासा पथिक रेत को पानी समझ कर दौड़ता है !



दो बजे थे । रात किसी बदनसीब के दिल की तरह काली थी । चारों ओर सन्नाटा था । हाथ को हाथ न सूझता था । उसी वक़्त वजीर खाँ जेवरों की पोटली छिपाए खुरशेद के जीने से उतरे और स्टेशन की ओर चल दिए ।

४

इसको भी एक ज़माना गुज़र गया । वजीर खाँ अब हर साल हज करने जाते हैं ! बाप-दादों का भोपड़ा अब एक पक्के मकान में परिवर्तित हो गया है । क्रुदरत ने जवानी की काली

दादी को उजले रंग में रँग दिया है। चपरासी हैं, तो क्या हुआ; शहर के मुसलमानों में उनका काफी मान है। उनके बारे में हर आदमी की एक नई राय है। कुछ कहते हैं कि उनके हाथ कोई गड़ा हुआ खजाना आ गया है, नहीं तो चपरासगिरी में यह बरकत कहाँ? उनके भक्त यह सुन कर नाराज होते हैं। उनका विचार है कि यह कोई बली हैं। फरिश्ते हर साल इनको हज के लिए मार्ग-व्यय दे जाते हैं। इसी तरह की और कितनी ही बातें हैं। एक जमात की यह भी राय है कि इनके हाथ अलाउद्दीन का चिराग लग गया है। खैर, जो कुछ भी हो, इस भेद को पूछने की किसी में हिम्मत न थी।

एक दिन शाम को हाजीजी अपने दरवाजे चौकी पर बैठे क़त्ता पी रहे थे। दो-तीन आदमी बच्चों को लिए ज़मीन पर बैठे थे, जो भाड़-फूँक के लिए आए थे। एक लड़का बकरी दुह रहा था, दूसरा गाय के लिए करबी काट रहा था। अचानक एक स्त्री आकर खड़ी हो गई। उसका रूप अत्यन्त भयानक था। बदन पर चिथड़ों के सिवा कुछ न था। वह खिलखिला कर जोर से हँसी। तनकर खड़ी हो गई, और अपनी आभाहीन आँखें मटका कर बोली, “राजा, मैंने तुमको खोज ही लिया ! बहुत छिपे-छिपे फिरते थे।” यह कह वह अट्टहास करके हँसी। हाजी का खून सूख गया। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। किन्तु हिम्मत करके बोले “भई तू कौन है ? अपना रास्ता ले। यहाँ क्या करने आई है ?”

उसने फिर एक गगनभेदी क़हक़हा लगाया । “अब क्यों पहचानोगे राजा ! अच्छा, लो बतलाती हूँ । मैं तुम्हारी वही.....हाँ, याद करो । इतनी जल्दी भूल गए । मैं तुम्हारी वही रानी खुरशेद हूँ । अपने राजा की राजधानी देखने आई हूँ ।” यह कह कर उसने फिर जोर का क़हक़हा लगाया ।

हाजीजी पर मानो आसमान टूट पड़ा । चेहरे पर एक रंग आने और एक जाने लगा । बुढ़िया बोली, “अच्छा जाती हूँ राजा, फिर मिलूँगी ।” उस ने फिर एक क़हक़हा लगा कर वातावरण में कँपकँपी पैदा कर दी और चल दी । हाजीजी की जान में जान आई । एक सर्द आह भर कर वहीं लेट रहे । एक आदमी ने पूछा—“हाजी जी, यह कौन है ?” उन्होंने बेपरवाही से जवाब दिया—“कोई पगली होगी ।”

दूसरा बोला—“दिल पर कोई गहरा सदमा पड़ा है ।”

पहिला—“शायद लड़का मर गया है ।”

तीसरा—“लड़के तो सभी के मरते हैं, कोई और बात होगी ।”

“घर वालों ने निकाल दिया होगा ।”

हाजीजी ने बात को टालने के लिए कहा, “अल्लाह की मर्जी, यह सब उसी के करश्में हैं । इस जिन्दगी में फ़कीर को अमीर और अमीर को फ़कीर बनते देखा है ।” यह कह कर उन्होंने फिर एक ठण्डी साँस ली ।

पगली का अब यही नियम हो गया । वह प्रति दिन वज्जीर खाँ के दरवाजे जाती । दरवाजे पर एक कड़कड़ा लगाती, और चल देती । दिन-भर मारी-मारी फिरा करती । कोई कुछ दे देता, तो खा लेती, नहीं तो सड़क के किनारे या किसी पेड़ के नीचे पड़ कर सो रहती । हाजी ने भी समझ लिया कि यह मुहब्बत की मारी उनका सब कुछ बिगाड़ सकने पर भी कुछ न बिगाड़ेगी । वह उससे कुछ न बोलते । परन्तु उनकी नव-विवाहिता पत्नी, हसीना, जिसको आए अभी एक साल ही हुआ था, उसकी आवाज सुनते ही रोने लगती । उसने हाजीजी को उससे पीछा छुड़ाने की अनेकों तरकीबें सुभाईं, मगर वह टालते ही आए ।

एक दिन दोपहर के समय हसीना दरवाजे की आड़ से एक बिसाती से मिस्सी-सुरमा ले रही थी । घर पर कोई न था । हाजी तामील पर गए थे । लड़के जंगल में थे । चारों ओर सन्नाटा था । दोनों खूब हँस-हँस कर मोल-भाव कर रहे थे । कौन किसका गाहक था, यह बतलाना कठिन था । हसीना कुछ कहने ही जा रही थी, कि पगली का कड़कड़ा सुनाई दिया । उसने दरवाजे पर खड़े हो कर दो-तीन कड़कड़े लगाए, फिर अपनी राह ली । प्रेमालाप में विघ्न पड़ने से हसीना जल-भुन गई ।

दूसरे दिन पगली फिर उसी समय आई । हसीना भरी बैठी थी । ज्यों ही वह जाने के लिए मुड़ी कि हसीना ने एक

जलता हुआ चैला फेंक कर मारा। बेचारी बिलबिला उठी। मगर थोड़ी देर में फिर एक कड़कड़ा लगा कर चल दी।

संसार इतना मूर्ख नहीं है, जितना हम समझते हैं। वह जबान से चाहे कुछ न कहे, पर अपने व्यवहारों से यह दिखला देना चाहता है, कि मैं तुम्हारी नस-नस पहिचानता हूँ। हाजीजी को देख कर अब लोग मुँह फेर लेते थे।

५

एक वर्ष और बीत गया। शैतान की खाला अब नहीं दिखलाई पड़ती। लड़कों में भी अब वह पहिले वाली स्फूर्ति नहीं रह गई। हाजीजी भी अब निश्चिन्त देख पड़ते हैं। इतने पर भी प्रायः एक भेद-भरे भय से उनका मुखमण्डल पीला पड़ा जाता है।

❀

❀

❀

पगली एक दिन सड़क पर चली जा रही थी, बस्ती से कई मील दूर। पीछे लड़कों की भीड़ थी। वे चिल्ला रहे थे, “शैतान की खाला जाती है, अरे शैतान की खाला जाती है ! अरे शैतान की खाला कहाँ जाती हो ?” इनसे पीछा छुड़ाने के लिए वह दौड़ी। लड़कों ने पीछा किया। सामने से एक मोटर आ रही थी। चाल तेज थी। ड्राइवर ने बहुतेरा ब्रेक लगाया। मगर रुकने के पहिले ही पगली उससे टकरा गई। सर फट गया। कई दिन अस्पताल में रहने के बाद शैतान की खाला और लड़कों की खिलौना सदा के लिए शान्त हो

गई। मरते दम भी उसकी प्रकाशहीन आँखें खुली थीं, और उसके मुख से यह शब्द निकले थे, “हाय मेरे राजा, तुम्हें एक नज़र देख भी न सकी।”

६

रमजानशरीफ़ शुरू होने वाला था। लोग हज की यात्रा के लिए जाने लगे। वज़ीर खाँ भी दूर साल इसी महीने में हज के लिए जाते थे। परन्तु इस वर्ष उन्होंने कोई तैयारी नहीं की। लोगों ने फिर उनको सन्देह की दृष्टि से देखा—

“अब क्या खाकर जायँगे। उस पगली की रकम कब तक काम देगी! बेचारी दाने-दाने को तरस कर मर गई, और इस क़साई को उस पर दया न आई। अयोग्य शरीफ़ थी। मरते दम तक उसका नाम लेती रही।”

एक दिन रात के समय वह अन्दर कमरे में सो रहे थे। पास ही दूसरी चारपाई पर हसीना लेटी थी। लड़के बाहर थे। वज़ीर खाँ ने देखा, पगली मुस्कुरा कर कह रही है, “वाह, मेरे राजा, कल से रमजानशरीफ़ शुरू होने वाला है, और तुम अभी हज के लिए नहीं गए। मुझे देखो। तुम से पहिले यहाँ पहुँच गई। सफ़र-खर्च तो अभी तुम्हारे पास है ही, उसे किस दिन के लिए रख छोड़ा है!”

वज़ीर खाँ ने रो कर कहा—“प्यारी ख़ुरशेद, मुझे तो वहाँ जाते भय लगता है। रास्ते में जंगली जानवर मुझे मार डालेंगे।”

.खुरशेद ने मुस्कुरा कर जवाब दिया—“घबराओ मत, मेरे राजा, वह तुम्हें तकलीफ न देंगे । साहस से काम लो । मैंने तुम्हारे लिए फूलों का रास्ता तैयार किया है ! तुमको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा !”

“नहीं .खुरशेद, तुम झूठ बोलती हो । मुझे भुलवा देती हो । मुझे निगलने के लिए चारों ओर अजदहे मुँह फैलाए बैठे हैं । यह देखो, उनके मुँह से कैसे शोले निकल रहे हैं ! अरे बचाओ ! खुदा के लिए बचाओ !! अपने वजीर पर तरस खाओ !” यह कहते-कहते वह चीख उठे । .खुरशेद मुस्कुराई और उसने अपने हाथ सहायता के लिए बढ़ा दिए !

चीख सुन कर हसीना घबरा कर उठ बैठी । वजीर खाँ को जगाया; पर वह बेहोश थे । बदन तबे की तरह जल रहा था । साँस जोर-जोर से चल रही थी । लड़के दौड़ कर ओम्हा-सयानों को बुला लाए । फाड़-फूँक होने लगी । मुहल्ले वाले जमा हो गए । पास ही एक हकीम जो रहते थे । उन्होंने भी कई चूर्ण खिलाए । मगर नतीजा कुछ न निकला । सुबह होते-होते हाजीजी की आत्मा इस पिञ्जर-रूपी शरीर से सदा के लिए विदा हो गई ।



जितने मुँह उतनी ही बातें । किसी ने कहा, “बुड्ढा पाप के परिणामों से न बच सका । नरक में भी जगह न पायगा ।” ऐसे भी लोग थे, जो कहते थे कि बली थे, सीधे स्वर्ग पहुँच गए !

हसीना बहुत दिनों तक इस मकान में शोक न मना सकी । उसकी दीवारें अब उसे काटने दौड़तीं । एक सप्ताह भी न होने पाया था कि एक रोज़ रात में गायब हो गई । सुबह लड़कों ने देखा, तो ज़मीन पर चन्द गड्ढों के सिवा कुछ न पाया । हाथ मार कर रह गए !



एक युग बीत गया । बज़ीर खाँ का मकान अब भी मौजूद है । मगर शाम होते ही लोग उधर से निकलना बन्द कर देते हैं । लड़कों का भी कुछ पता नहीं । लोगों का खयाल है कि फिरंगी उन्हें किसी उपनिवेश में ले गए ! मकान हाजीजी के एक दूर के सम्बन्धी के कब्ज़े में है, मगर कोई किराएदार उसमें एक दिन से ज्यादा नहीं ठहरता । मुहल्ले वाले कहते हैं कि उसमें “हाथ राजा ! हाथ राजा !!” की भयानक आवाज़ें आती हैं, और कभी-कभी क़द्क़द्दों से उस की दीवारें हिलने लगती हैं !



आ - क - छीं

६। रोगी साहब खाना खा कर उठे ही थे कि उन्हें जोरों की छींक आ गई। रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सफलता प्राप्त न हुई। अन्त में लाचार हो कर आपने मुँह फैला कर, आँखें सिकोड़ कर और नथुनों को फड़का कर छींक ही दिया—आक्—छीं !

इसके बाद वह बड़ी देर तक पटरे पर खड़े रहे, पेट पर बायाँ हाथ फेरते रहे और कुछ सोचते रहे। सोचते-सोचते वह यह भूल गए कि वह क्या सोच कर उठे थे। बड़ी देर तक कोशिश की कि वह याद आ जाय, किन्तु नहीं याद आई। उनके चेहरे पर परेशानी के भाव प्रगट होने लगे; कुछ क्रोध भी आने लगा। आपने फिर पेट पर हाथ फेरना आरम्भ कर दिया। इस बार दाहिना हाथ था, धुला नहीं था। पेट पर जब ठण्ठक-सी मालूम हुई, तो सिर झुका कर देखा। पेट पर खासी दाल चुपड़ी हुई थी ! पारा और चढ़ गया।

याद आ गई—आपके ज्ञान-चक्षु खुले, और आपको याद आ गई कि आप पटरे पर से हाथ-मुँह धोने के लिए उठे थे। आपके चेहरे पर की हवाइयाँ विलीन हो गईं, और उनके स्थान पर कुछ सन्तोष की आभा-सी झलकने लगी।

लेकिन हाथ-मुँह धोते कैसे? आप कहेंगे, पानी से। सो तो ठीक है! पानी से तो हाथ-मुँह धोया ही जाता है, भला कोई दूध-दही से भी हाथ मुँह धोता है! यहाँ पर तो इसका कोई प्रश्न ही नहीं था। यहाँ तो यह समस्या थी की हाथ-मुँह धुले कैसे? पहिले ही से तो गुत्थी पड़ गई थी—अपशकुन जो हो गया था!

आपकी भौहों पर फिर बल पड़ने लगे। माथे पर कर्क और मकरवत् रेखाएँ पड़ गईं। विकट प्रश्न था—अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से भी गूढ़ और गृह-युद्ध (सामाजिक और राजनैतिक) से भी विकराल!

आपने सोचा और खूब सोचा। खड़े-खड़े पैरों में दर्द-सा होने लगा और सोचते-सोचते मतिष्क में ऐंठन पैदा हो गई—रुलाई-सी आने लगी।

बीबी मायके गई थी। उन्हें अपने ही हाथों बनाना-खाना पड़ता था। जाते समय बीबी ने इनसे कह दिया था—“महाराज लगा लेना”; किन्तु उन्होंने अपनी खोपड़ी इधर से उधर को घुमा दी थी। सोचा था—काहे को इतना पैसा बरबाद करें। कौन जीभ टपकती है। अपने ही हाथ से बना खा लेंगे।

कष्ट तो जरूर होगा, लेकिन क्या, पन्द्रह रोज़ की तो बात ही है—सब निभ जायगा।

कहने का अर्थ यह है, कि आपने महाराज नहीं लगाया। एक बार पड़ोस के शर्मा जी ने पूछा भी था—“कहिए तो महाराज लगवा दूँ।” आप कुछ हड़बड़ा कर जल्दी से कह उठे थे—“नहीं-नहीं, हमको महाराज नहीं लगवाना है।” और शर्माजी मुस्करा दिए थे।

दारोगा जी सनातनधर्मी थे—अन्धविश्वासी और कञ्जूस भी थे।

आपने धीरे-से एक पैर ज़मीन पर रक्खा और मन में कुछ निश्चय-सा किया। क्या हुआ, जो छींक आ गई? देखा जाएगा, जो कुछ होगा। आखिर हम इतने चोर पकड़ते हैं, अफसरों से जूझते हैं, और हम—भला हम—एक सड़ी-सी छींक से डर जायँ! कभी नहीं, ऐसा होना कठिन है। एक बहादुर पुलिस के इन्स्पेक्टर, और भयभीत हो जायँ एक साली छींक से!

परन्तु, प्राचीन संस्कारों में पला हुआ आपका मन काँप रहा था। हिम्मत बाँध रहे थे और ‘डर न मन!’ कह रहे थे। अब अपने दूसरे पैर को भी पटरे से सिंहासनच्युत किया और सँभाल कर कदम रखते हुए नल की ओर बढ़े।

परन्तु बारह बज जाने के कारण नल बन्द हो चुका था। एक बर्तन में थोड़ा पानी था, उससे हाथ धोए और रूमाल से हाथ पोंछते हुए सोचते-सोचते खाट पर चित लेट गए।

२

मुश्किल से दस मिनट भी खाट पर न लेट पाए होंगे कि किसी कम्बख्त ने दरवाजा खटखटाना शुरू किया। “दारोगा जी ! दारोगा जी !!” की आवाज़ ने दारोगा जी के मधुर स्वप्नों को भंग कर दिया। आँखें खोले कुछ देर तक अचकचाए-से खाट पर पड़े रहे। फिर धीरे-धीरे उनकी संज्ञा जाग्रत हुई और उन्होंने यह महसूस किया कि वह पुकार उन्हीं के लिए है। दरवाजा खटखटाने का तुमुल रव और भी भीषण रूप धारण करता गया। “दारोगा जी !!” का सम्बोधन और भी अधिक तीव्र होता गया। साथ ही दो-चार मनुष्यों की फुसफुसाहट और दबी हुई बातचीत भी कर्णगोचर होने लगी।

लाचार, दारोगा साहब उठे और उन्होंने काँखते हुए लँगड़ाते-से जा कर द्वार खोल दिया। वह अपने सामने का दृश्य देख कर कुछ सहम-से गए और दो कदम पीछे हट गए।

सामने एक कटी-फटी-सी लाश थी। लाश के साथ दो आदमी भी खड़े थे। एक जवान था। उसके हाथ में लाठी थी और छाती पर रीछ-जैसे घने बाल थे। दूसरा बूढ़ा था। उसकी बारह इन्ची डाढ़ी बिल्कुल सफ़ेद थी। उसकी सूरत भीष्म पितामह से मिलती-जुलती थी।

“मालिक, बीमार हैं क्या ?” भीष्म पितामह ने पूछा।

“नहीं तो ! क्यों ? बात क्या है ?”—दारोगा जो ने कुछ

सहम कर पूछा। किसी अज्ञात आशंका से उनके वक्षस्थल में कुछ प्रेरणा-सी होने लगी। भूकम्प आ गया !

“तो माँ-बाप, यह लेप काहे को लगाए हैं ?”—पितामह ने माँ-बाप के पेट को छू कर कहा। (माँ-बाप के पेट पर खासी दाल चुपड़ी थी !)

“अरे, कुछ नहीं, यूँ ही.....” दारोगा जी ने दोनों हाथों से पेट को छिपाने का प्रयत्न करते हुए कहा।

“अरे, बाबू जी कुछ तो बता दें...क्या हुआ है ?”

दारोगा जी जानते थे कि देहाती बड़े बातूनी होते हैं और बिना जाने पिण्ड छोड़ने के नहीं। उन्होंने यूँ ही कह दिया—
“कुछ नहीं—ज़रा पेट में स्क्वायर रूट (Square root) हो गया था। अब बिलकुल आराम है।”

“हाँ !”—बूढ़े ने गरदन हिलाते हुए कहा। पर हुज़ूर सँभले रहें। वदपरहेज़ी से बढ़ जाता है—क्या नाम बताया मालिक इसका ?”

“स्कूयर रूट।” कुछ मेंपते हुए दारोगा जी बोले।

“बड़ी ख़राब बीमारी है, हमारी मेहरारू भी इसीसे मरी—ठण्ड से बढ़ जाती है।”

जवान बोला—“अच्छा, हुज़ूर यह देख लें।” उसने उस लाश की ओर सङ्केत किया। “हुज़ूर, यहाँ से तीन मील पर तीन बाघ आए हैं !”

“तीन शेर !” दारोगा जी का ढोल-नुमा शरीर काँप उठा और उनका रोम-रोम रोमाञ्चित हो उठा ।

“हाँ हुजूर ! एक मादा और दो बच्चे ।”

दारोगा जी ने सन्तोष की साँस ली । तीन शेरों का नाम सुन कर उनके हृदय में हड़कम्प पैदा हो गया था । थे तो बहादुर, फिर भी तीन शेर, एक दो नहीं—पूरे तीन—हँसी-मजाक़ नहीं ! दुनली की जगह ति-नली वन्दूक़ की ज़रूरत पड़ती !

“और यह है भगेलू ।”—बूढ़े ने लाश की ओर सङ्केत करते हुए कहा ।

“यह तो लाश है ।”—दारोगा जी ने सहम कर कहा ।

“हाँ, तो भगेलू की लाश है । एक ही तमाचे में उसके प्राण निकल गए । यह देखिए !”

जवान बोला—“कल शाम को केहू अहीर की एक भैंस खा गई थी और नरसों न जाने किसकी घोड़ी खा गई थी ।”

“भैंस ! घोड़ी !”—दारोगा जी ने आतङ्क में आकर पूछा ।

हाँ, एक हड्डी भी नहीं छोड़ी, सब खा गई ।”

दारोगा जी थोड़ी देर तक शेरनी के ज़बरदस्त हाज़मे की बाबत सोचते रहे । मन में कहा—“यहाँ तो चार रोटी हज़म नहीं होती, चूर्ण खाने पर भी—और एक पूरी भैंस, १०० प्रतिशत घोड़ी ! ग़ज़ब हो गया—कमबख्त का पेट क्या है, मानो अस्तबल है !!”

“अच्छा तो, इसको ले जाओ डॉक्टर के पास और थोड़ी देर में हमारे पास आओ, हम उसे मारने चलेंगे।”—दारोगा जी ने कुछ देर सोच कर कहा।

और जब तक कि वे दोनों बुद्धू अपने अस्तित्व की गुत्थी सुलझाने में मशगूल थे, दारोगा जी अन्दर चले गए और जल्दी-जल्दी पेट वगैरह धोने लगे। दाल सूख कर सख्त हो गई थी, इसलिए उन्हें इस क्रिया में काफी समय लग गया।

३

“अजी डॉक्टर साहब, क्या पूछते हो !”—दारोगा जी ने उत्साह के साथ कहा, “जब मैं पिछली बार उस दहिवाड़े के शेर को मारने गया था तो.....।”

सामने से एक मोटर कार आ रही थी, और जब वह हमारे शिकारियों की कार के पास से गुजर गई, तो पीछे एक धूल का गुबार छोड़ती गई। इसके कारण दारोगा जी के उत्साह में खलल पड़ गया, और उन्हें पाँच मिनट तक कठोर प्राणायाम-साधन करना पड़ा।

“तो ?”—डॉक्टर ने पूछा।

“क्या पूछना था। हम तो सीधे चले हाथ में बन्दूक लिए, न मचान बाँधा और न हाँका कराया। चुपचाप पहुँच गए और सामने देखा, कोई बीस गज पर वह प्रसिद्ध आदमखोर—दहिवाड़े का शेर !

“क्या ? काहे का शेर ? दही-बड़े का ?”

“नहीं भाई ! दहिबाड़े का । उसने पहिला आदमी इसी नाम के गाँव में खाया था, इससे उसका नाम यही पड़ गया ।”
—कुछ झंझला कर दारोगा जी बोले ।

“अच्छा हाँ, बड़े चलिए”—डॉक्टर ने प्रोत्साहन दिया ।

“तो बीस गज की दूरी पर वह खूँखवार आदमखोर खड़ा था । मैंने क्या किया, जानते हो ? सीधे मजबूत हाथों से बन्दूक उठाई और पुष्ट पुष्टों पर रक्खी.....”

“जाँघ पर ?”—डॉक्टर के मुँह से निकल पड़ा । उसने तुरन्त ही क्षमा-याचना की और दारोगा जी आगे बढ़े—“कन्धों पर, समझे, उलूल-जुलूल प्रसाद !—जाँघ पर रख कर बन्दूक नहीं दागो जाती । फिर मैंने आँखों में निशाना लगाया और...”

“शेर मर कर गिर पड़ा ! बड़ी कटीली आँखें हैं आपकी—ओह, Excuse me !”

“चुप रहो ! हाँ तो, मैंने निशाना लगाया और.....”
दारोगा जी चुप हो रहे ।

सामने से एक बिल्ली रास्ता काट कर निकल गई ! डॉक्टर ने बिल्ली को नहीं देखा ।

“कहिए, चुप क्यों हो गए । तो आपने निशाना साध कर लगाया और फिर क्या हुआ ?”

दारोगा जी ने सहम कर धीरे से कहा—“बिल्ली रास्ता काट गई ।”

“जंगल में बिल्ली !! और रास्ता काट गई, जब आप निशाना लगा रहे थे ! वाह साहब, वाह ! खूब कहते हैं !! आप जैसा झूठा तो मैंने अभी तक देखा क्या सुना तक नहीं ! खूब, भला बिल्ली को क्या पड़ी थी कि रास्ता काट जाती ?”

दारोगा जी बिलकुल चुप थे । उनके मुँह से शब्द निकल नहीं रहे थे । ओंठ सूखे जा रहे थे और जबान तालू से चिपक गई थी । फिर भी उन्होंने प्रयत्न करके कहा, “अभी, अभी, एक बिल्ली...गुजर गई.....रास्ते से ।” सवेरे की धीक को याद कर उनकी रही-सही हिम्मत पस्त हो गई । मुँह सूख कर छुहारा हो गया ।

“बड़े अन्धविश्वासी हो ! मुझे ऐसा नहीं मालूम था, जो मैं जानता कि इतने चोचले खेले जाएँगे, तो मैं अकेला ही न चला आता ! या यह सब अपना बोदापन छिपाने के बहाने हैं, क्यों यार ? बोलते क्यों नहीं ? मैं तो बहादुर समझता था; लेकिन दोस्त, तुम तो बड़े बोदे निकले !

भीष्म पितामह को जोरों की हँसी आ गई । वे भी मोटर में पीछे बैठे थे, शेरनी का स्थान बताने के लिए ।

डॉक्टर साहब बिलकुल चुप हो गये । उन्हें, बोलने की सनक में, पीछे बैठे हुए दो भूतों का कुछ खयाल ही नहीं रहा था और नतीजा यह हुआ कि वे अनाप-सनाप बक गए । बाद में उन्हें बड़ी शरम लगी और पीछे घूम कर देखने की उनकी हिम्मत ही न पड़ी ।

दारोगा जी का बुरा हाल था। सुबह की छींक के तो दुष्परिणामों को वह भूल ही नहीं सके थे। और अब यह कमबख्त बिल्ली.....डॉक्टर के चुभते हुए शब्द और एक बाल-बच्चेदार शेरनी का शिकार !

इसके आगे कुछ वार्तालाप नहीं हुआ। मोटर की आवाज़, कभी-कभी डॉक्टर की खाँसी और दोनों देशानियों की कुसकुसा-हट को छोड़ कर और कोई भी शब्द उत्पन्न नहीं हुआ; क्योंकि वानावरण क्षुब्ध था और सभी कुछ न कुछ सोचने में मग्न थे।

“बस”—देहाती जयान ने कहा—“यहीं आस-पास कहीं वह मिल जाएगी, उसकी खोज में हमें ज्यादा दूर न जाना पड़ेगा।”

डॉक्टर ने मोटर का दरवाजा खोल दिया और नीचे उतर पड़े। दारोगा जी की हृदय-गति बन्द होने पर थी। लड़खड़ाती हुई टाँगों के बल वह उलटे और रुँधे कण्ठ से प्रयत्न कर किसी तरह बोले, “म...म...मचान तो बाँधा ही नहीं गया !”

सब के सब चौंक पड़े। इसका तो किसी को खयाल ही नहीं था। अब ? कैसे क्या हो ? यकायक सबके मन में लौट चलने का विचार आ गया, किन्तु किसी ने मुँह से कहा नहीं, क्योंकि सभी जानते थे कि उनकी हँसी होगी।

पास ही एक पेड़ की डालें हिलीं। सब ने चौंक कर देखा। दारोगा साहब के घुटने काँप उठे और मौक़ा पा कर उनके पैरों तले की ज़मीन और खोपड़ी पर का आसमान खिसक गया।

“अच्छा हुजूर,”—बूढ़े ने कुछ सोच कर कहा, “एक तरकीब बताऊँ, हुकुम हो तो।”

“कहो।”

“शेरनी की बास बीस गज से आती है। जब बास आए, तो हम लोग जल्दी से पेड़ पर चढ़ जाएँ और जब पास आए तो, दे धड़ाम !!”—उसने समझाते हुए कहा।

“लेकिन”—डॉक्टर ने एक आपत्ति की, “शेरनी अगर यहाँ न आए, तो ?”

“अगर होगी, तो जरूर आएगी। आदमी की बास उसको बड़ी दूर तक सालूम हो जाती है, जरूर आएगी।”

“लेकिन, अगर आदमी बास न करे, तो ?”

“आदमी के करने न करने से क्या होता है ? शेरनी अपने आप जान लेती है कि बास आ रही है।”

सब के सब सनक हो कर खड़े हो गए। अपनी-अपनी नाक ऊपर कर बार-बार हवा सूँघते, जब एक थक जाता तो दूसरा नाक-भौं सिकोड़ कर ‘सूँ-सूँ’ करना आरम्भ कर देता। बड़ी देर तक यही तमाशा होता रहा। जब सब के सब थक गए, तो चुपचाप सब पेड़ पर चढ़ गए। लेकिन पेड़ पर चढ़ने के बाद भी दारोगा साहब ‘सूँ-सूँ’ करते रहे। इस पर डॉक्टर ने कहा—“आप नीचे चले जाइए और वहाँ से ऊपर मुँह कर ‘सूँ-सूँ’ कीजिए, जब बास आने लगे तो ऊपर आ जाइएगा।

दारोगा जी को कुछ क्रोध-सा आ गया, किन्तु उन्होंने कुछ नहीं कहा—फ़क़त ‘सूँ-सूँ’ करते रहे। इस पर उस देहाती ने, जो कि अपने वृक्षस्थल पर रोछ जैसे बाल धारण किए था, स्वयं जाने का विचार किया। वह नीचे उतर आया और ऊपर चढ़े हुए मानवों की ओर देख कर प्राणायाम करने लगा—“सूँ-सूँ.....।”

आध घण्टा बीत गया, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। जवान भी इतनी देर में अपनी विचित्र ड्यूटी से तंग आ गया और उसने उपर चढ़ कर एक डाली पर आसन ग्रहण किया। इतने में पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई दी और भाड़ी के बीच से एक छोटा-सा शेर का बच्चा प्रगट हुआ। वह एक बहुत मोटी बिल्ली के समान था। मोटा-मोटा, गुदला-सा बड़ा ही सुन्दर लगता था। वह बड़ी देर तक इन लोगों की ओर गौर से देखता रहा। बार-बार सर हिला कर, और फिर कुछ हिम्मत कर के दबता-सा पेड़ के पास आकर, अपना नन्हा-सा मुँह फाड़ कर एक-एक फुट उछलने लगा और खिलवाड़ में पेड़ के तने को बार-बार पञ्जों से कुरेदने लगा। दारोगा जी की सिट्ठी-पिट्ठी भूल गई !

इतने में उस बच्चे की माँ भी हँडिया-जैसा मुँह लिए आ गई। दारोगा जी काँपने लगे और उन्होंने सहारे के लिए एक डाल कस कर पकड़ ली। किन्तु वह डाल नहीं थी, बल्कि भीष्म पितामह की टाँग थी ! भीष्म ने गुर्रा कर कहा,—“अरे,

हमारी टाँग काहे पकड़ ली ?” दारोगा जी ने और जोरों से उस टाँग को थाम लिया ! उनका हाथ काँप रहा था, और इसके कारण वह टाँग भी काँपने लगी ।

“अरे बाबा, हमारी टाँग कौन हिला रहा है ?”—बूढ़े ने दरियाज़त किया । (बात यह थी कि उसका मुँह दूसरी तरफ़ था और वह शेरनी को देख नहीं पाया था ।) “हमारी टाँग छोड़ दो, नहीं तो हम नीचे ढकेल देंगे !”

धमकी सुन कर दारोगा जी अधमरे हो गए और उनका हाथ और भी वेग से काँपने लगा । इस पर भीष्म ने उन्हें ढकेल दिया, किन्तु वे टाँग पकड़ कर बड़ी देर तक लटके रहे । डाल पकड़ कर बूढ़ा भी झूल गया और दारोगा जी नीचे आ रहे । शेरनी उन पर झपटी और बनारसो कुश्ती होने लगी । इतने में न जाने कैसे बन्दूक छूट गई—“आ-क्-छीं ”..... दारोगा जी की नींद खुल गई ! उन्होंने देखा कि वे फर्श पर औंधे पड़े हैं और बार-बार लोट-लोट कर बेरहमी के साथ छींक रहे हैं । “आक्—छीं.....ठाँय !”.....वे ऊब बैठे । अपने पेट की ओर दृष्टिपात किया और सोचा, “अब बम्बट खुल गया होगा !”



कहानीकार मिस्टर वर्मा

५ न्दर का मुँह, वनमानुष की नाक, भालू की छाती, ऊँट की पीठ, गद की टाँगे और हाथी का धड़, यदि एक साथ ये सभी आदमी की शकल में जड़ दिए जाएँ, तो किसी न किसी प्रकार से मिस्टर वर्मा की सूरत से मेल खा जाएँगे !

मिस्टर वर्मा के सामने जो भी परीक्षाएँ आईं, उनका उन्होंने एक वीर की भाँति सामना किया और उनमें सफलता भी प्राप्त की। इस प्रकार आपने अपने तीस वर्ष हँसते-हँसते बिता दिए।

गत वर्ष जब केन डेवलपमेण्ट में भरती हो रही थी, तो उसमें आप को भी एक सुअवसर मिला और इस प्रकार आप उसमें सुपरवाइजर हो गए।

सागर को आज तक किसी ने तैर कर पार नहीं किया। किन्तु यदि शौक ही सागर हो, तो मिस्टर वर्मा ने उसे भी पार करने के लिए बीड़ा उठा लिया था।

सुनते हैं, बीड़ा उठा लेने पर वीर उदल जान की बाजी लगा देता था—प्राण हथेली पर ले कर मैदान में कूद पड़ता था। इसी प्रकार दुनिया के शौक को एक-एक करके पूरा करने के लिए आप भी किसी उदल से कम नहीं निकले।

किसी शौक में कोई पुरस्कार मिला और किसी में कोई। केवल आँख की लड़ाई में आप की पीठ ऐसी पीटी गई, जैसे सड़क।

इधर आपका शौक कहानी-लेखक बनने का है। यह एक ऐसा शौक है, जिसमें किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती—एक पैसे की पेन्सिल और एक पैसे का कागज बाजार से मँगा लिया और कहानी लिखना आरम्भ कर दिया।

मिस्टर वर्मा सोचा करते थे, कि यदि उनकी आप-बीती कोई लिख दे, तो वह संसार का सबसे बड़ा उपन्यासकार हो सकता है, और इसके साथ ही उनका ख्याल था, कि मिस्टर जी० पी० श्रीवास्तव ने उन्हीं की आप-बीती का एक अंश ले कर अपना 'लतखोरीलाल' नाम का उपन्यास लिखा होगा। फिर स्वयं मिस्टर वर्मा कैसे कहानी लेखक नहीं हो सकते थे ?

भीख भी भेस ही से मिलती है। कहानी लिखने के पहिले मिस्टर वर्मा ने सोचा—कहानी-लेखक की पोशाक होनी चाहिए। अस्तु, आपने इस दिशा में प्रेमचन्द जी का आदर्श रक्खा—कुर्ता, धोती और चप्पल में आप पूरे प्रेमचन्द बन गए। रहा प्रश्न मूछों का। उसे भी आपने बाजार से एक भबरी गूछ

खरीद कर हल किया। कहानी लिखने-मात्र का ध्यान होते ही आप उसे लगा लिया करते थे।

भेस तो बन गया, लेकिन यह भेस बना क्यों, इसे किसी ने नहीं जाना। अस्तु, इसका विज्ञापन करने के लिए मिस्टर वर्मा स्त्री-पुरुषों, बाल-बच्चों, जवान-वढ़ों—सबसे यह बात कहते, कि मुझे कहानी लिखनी है। इस तरह दूर-दूर तक के सभी लोग यह जान गए, कि मिस्टर वर्मा को कहानी लिखनी है। रास्ते चलते स्कूली छोकरे उन्हें छेड़ उठते—“वर्मा जी, कहानी लिखी गई?”

वर्मा जी पहले कृतज्ञता प्रगट करने के लिए हाथ जोड़ते, फिर कहते—“लिखने ही वाला हूँ। कुछ देर हो गई है।”—यही पेटेण्ट जवाब उनका सब के लिए था।

एक दिन ज्यों ही मैं घर से निकला, त्यों ही क्रम से तीन चीजें सामने आई—नाक कटा बन्दर, बड़वा साँड़ और मिस्टर वर्मा। इसके साथ ही मुझे छींक आई—एक-दो-तीन। इन सुन्दर शकुनों से मैं काँप गया, लेकिन कहानीकार मिस्टर वर्मा की चाल ऐसी थी, कि मैं हँस पड़ा, क्योंकि वे एक डग में लचकते-फैलते, हुमुकते और तनते चले जाते थे, जैसे ‘पन्त’ स्कूल के सुकवि।

मेरी इस हँसी को उन्होंने अपना स्वागत समझा। फिर क्या था, आप अपनी बतीसी दिखलाने लगे। इतना ही नहीं, अपने कर-कमलों से आपने मेरे हाथों को भी पकड़ लिया और बिना

रुके कहना प्रारम्भ किया—“भाई, कहानी शुरू कर दी है। आपका सुनना हागा और जरूर सुनना होगा !”

मैंने रुका—“मैं सुनूँगा, सुनूँगा, जरूर सुनूँगा !” मेरे त्रिवाच्य भरने पर वे किसी तरह मेरा गला छोड़ने के लिए तैयार हुए।

दूसरे दिन सुबह एक और घटना हो गई। मिस्टर वर्मा अपनी कोठरी में बैठे कहानो लिख रहे थे और उसी के बगल में सुकवि श्वानों ने अपना कवि-सम्मेलन प्रारम्भ किया। यह बात मिस्टर वर्मा के लिए असह्य हो उठी। वे एक लट्ट लेकर उनके पीछे पड़ गए और गली-गली घूम कर उन्हें मारते फिरे। लोगों के कारण पूछने के पहले ही आप कह उठते—“साले, मुझे कहानी नहीं लिखने देते !”

इस बीच उनके पिता के कई पत्र आए। उनमें लिखा था—“बेटा, मैं बीमार हूँ। आओ, देख जाओ या कोई दवा भेज दो तथा कुछ रुपया भी। पर मिस्टर वर्मा को कहाँ फुरसत ! हाँ, परेशान हो कर अन्तिम पत्र का जवाब आपने यों दिया—“जानते नहीं, मैं कितना परेशान हूँ। आप तो केवल बीमार हैं, और मैं, न पूछिए, सब काम छोड़ कर इस समय कहानी लिख रहा हूँ। कहानी लिखने के बाद ही दवा भेजने में समर्थ हो सकूँगा—इसके पहले नहीं।”

कहानी लिखी जा रही थी। प्रेमचन्द जी का रूप धारण कर आप कहानी लिख रहे थे। किसान आते और फेरी लगा

कर चले जाते। सरकारी ऑर्डर आते और बिना खोले हुए मेज के एक किनारे पड़े रहते। मिस्टर वर्मा मन में सोचते—जीवन-भर तो सरकारी काम करना ही है। जब कहानी शुरू कर दी, तो कम से कम इसे खत्म तो कर लें।

आखिर कहानी खत्म हुई। सोलड् पौण्ड बादामी कागज के कई दस्ते रंगे गए। बहुत प्रयत्न करने पर भी मिस्टर वर्मा स्वयं उसे पाँच घण्टे में सफलतापूर्वक समाप्त नहीं कर पाते, क्योंकि कहानी के साथ-साथ पाठकों के लाभार्थ आपने उसकी अगल-बगल टिप्पणी, अर्थ, भावार्थ, शब्दार्थ, सन्धि, समास और कथा-प्रसंग भी लिख डाला था। फिर इस भागवत महा-पुराण के लिए श्रोता कहाँ मिलता ?

एक दिन, मेरा सौभाग्य कदिए या दुर्भाग्य, मिस्टर वर्मा मुझे अपनी कहानी सुनाने के लिए मेरे घर आ पहुँचे। मैंने उनकी हजार आरजू की, मिन्नतें कीं ; किन्तु उनके सामने सब बेकार ! लाचार हो मैंने कहा—“मिस्टर वर्मा, घड़ी में सब नौ बज रहे हैं। मुझे ऑफिस जाना है, आफिस-टाइम दस है। इसी बीच में पाँच रुपए का इन्तजाम कर मुझे एक उधार वाले को देना है। इसलिए आज मुझे क्षमा करो भाई !” किन्तु मिस्टर वर्मा क्यों मानने लगे ? अन्त में यह तय हुआ, कि वे मुझे अपने घर चल कर पाँच रुपया उधार दे देंगे ; अब मैं मजबूर था और उनके साथ-साथ चल दिया।

रास्ते में मिस्टर वर्मा कहानी की तारीफ़ करते जा रहे थे और मैं पाँच रुपए का स्वप्न देखता जा रहा था। हम-दोनों उनके घर पहुँचे। वे मुझे कुर्सी पर बिठा पाँच रुपए का नोट हाथ में लिये कहानी का बण्डल खोलने लगे—कहानी पढ़ने के लिए। ठीक इसी समय घड़ी ने अद्धा बजाया। मैं यह सुनते ही चठ-बैठा। इसके साथ ही आप भी मुझे फ़ौरन पकड़ कर खड़े हो गए और कहने लगे—“कम से कम दो-चार पृष्ठ तो सुन कर जाइए।”

ऐसी हालत में मैं क्या करता ? फिर तो रस्सा-कसी शुरू हुई। मैं बाहर खींचने लगा, और वे भीतर। दो मिनट के बाद मैं तगड़ा पड़ा और हाथ छुड़ा कर भग चला। मैं भगा जा रहा था और उनकी गालियों के बम मेरे कानों में लगातार गोलाबारी करते जा रहे थे। खुदा हाफ़िज़ !



इस घटना के दो सप्ताह बाद मालूम हुआ, कि वह इधर कई दिन से पोस्टमैन से भिड़ने पर तुले हैं। मिलने पर उससे कहते—“कहो, मेरा कोई पत्र आया है ? तुम्हारे पास अवश्य होगा ? बताओ, तुम क्यों रोज़ देर करके आते हो ?”—ऐसे ही सैकड़ों सवाल उससे करते और बेचारा पोस्टमैन सुन कर हक्का-बक्का-सा रह जाता। वह सोचता—इनके सिर पर न जाने कैसा शैतान सवार हुआ है ?

बात यह थी, कि आपने अपनी कहानी कहीं प्रकाशनाथ भेजी थी। उसकी स्वीकृति-सूचना पाने के लिए आप व्यग्र थे।

बेचारे सम्पादक को क्या मालूम, कि यहाँ लेखक पर क्या बीत रही है ?

प्रतीक्षा करते-करते मिस्टर वर्मा से न रहा गया और एक दिन आप स्वयं पोस्ट ऑफिस गए । संयोगवश उस दिन उनके दो पत्र आए हुए थे—एक थी उनकी कहानी, जो सम्पादक ने छापने से अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए सधन्यवाद लौटा दी थी, और दूसरा एक लिफाफा था । मिस्टर वर्मा ने इसे खोल कर देखा, यह सरकारी ऑर्डर था, जिसमें जनता की शिकायतों के और काम न पूरा करने के अपराध में उन्हें चार माह के लिए मुवत्तली सूचना दी गई थी ।



पीछा

थ|| जकल एक शख्स निहायत मुस्तैदी से मेरा पीछा कर रहा है। कॉफी हाउस में, सड़क पर, किसी महफिल में जहाँ कहीं मेरी उससे मुठभेड़ होती है, वह छूटते ही मुझसे सवाल करता है—“महाशय, आपको प्रेमचन्द का कौन-सा उपन्यास पसन्द है ?”

देखने में सीधा-सादा सवाल है, जिसका जवाब देना कुछ मुश्किल नहीं। लेकिन जिस आदमी ने प्रेमचन्द के उपन्यास पढ़े ही न हों, उसके लिये कुछ इतना आसान भी नहीं। यह ठीक है कि पिछले दिनों प्रेमचन्द की बरसी के अवसर पर मैंने एक निबंध पढ़ा था जिसका शीर्षक था—“प्रेमचन्द—एक उपन्यासकार के रूप में” ! इस निबंध की बेहद तारीफ़ की गई। सभापति महोदय ने तो यहाँ तक कह दिया कि प्रेमचन्द पर ऐसा सर्वांग सुन्दर निबंध हिन्दी भाषा में आज तक न लिखा गया है और न लिखा जाएगा। और बड़ी हद तक, अनभिज्ञता के कारण ही सही, सभापति

महोदय अपनी जगह बिलकुल सही भी थे। क्योंकि वह निबंध मैंने सारे का सारा एक अंगरेजी पुस्तक से, जो कि आधुनिक आलोचक ने ओ० हेनरी पर लिखी थी, चुराया था। अवश्य ही उसमें थोड़ा-सा इधर-उधर से बदलना पड़ा था। यानी जहाँ-जहाँ ओ० हेनरी का नाम आया था, वहाँ-वहाँ प्रेमचन्द का नाम लिख दिया था। उस सभा के खत्म होने पर मुझे वह आदमी मिला और मुझे बधाई देने के बाद उसने कहा—“मैं पिछले पन्द्रह वर्ष से प्रेमचन्द्र पर एक पुस्तक लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ। मैं इस विषय पर आपसे विस्तार से विचार-विमर्श करना चाहता हूँ।

मैंने साधारण शिष्टाचार का प्रदर्शन करते हुए कहा—
“बड़े शौक से। आप कभी मेरी कुटी में पधारिये।”

लेकिन जब कुछ दिनों के बाद वह सचमुच मेरे मकान पर आ धमका तो मेरे होश उड़ गये। बात दर असल यह है कि मैंने प्रेमचन्द का कोई उपन्यास शुरू से आखीर तक नहीं पढ़ा। किसी की भूमिका देखी है, किसी का पहला अध्याय पढ़ा है और किसी का आखिरी। खैर उस दिन तो मैंने उसे यह कह कर टाल दिया, कि आज मुझे जुकाम है और जब जुकाम हो तो अच्छी चीज भी बुरी लगती है चाहे वह प्रेमचन्द्र की कहानी ही क्यों न हो लेकिन जब इतवार के दिन वह फिर आया तो मैंने उसे इधर-उधर की बातों में लगाने की कोशिश की। पूछा—
“आपको देशी शलगम पसन्द हैं या विलायती, आपको

पतंगबाजी से शौक्र है या बटेरबाजी से ? आपकी पतलून नई है या सेकिन्ड हैंड ?” लेकिन वह ज़ालिम हर तीसरे मिनट के बाद अपना सवाल दोहरा देता—“आपने यह नहीं बताया कि आपको प्रेमचन्द का कौन-सा उपन्यास पसन्द है ?”

आखिर एक दफ़ा मैंने हिम्मत करके कह दिया—“मुझे प्रेमचन्द के सारे उपन्यास पसन्द हैं ।

उसने आश्चर्य-चकित होकर कहा—“यह कैसे हो सकता है ? आखिर सारे उपन्यास तो सर्वश्रेष्ठ हो ही नहीं सकते ।”

“तो आप यह जानना चाहते हैं कि मेरे खयाल में प्रेमचन्द का कौन उपन्यास सर्वश्रेष्ठ है ?”

उसने स्वकारात्मक ढंग से सिर हिलाया ।

मैंने धीरे से कहा—“रंगभूमि ।”

अब वह पूछने लगा—“क्यों पसन्द है ?”

मैंने चेहरे पर गम्भीरता उत्पन्न करते हुए कहा—“देखिये, यह उपन्यास सब भले आदमियों को पसन्द है । मुमकिन है, आपको नापसन्द हो लेकिन इसके यह मानी तो नहीं कि मुझे भी अच्छा न लगे ।”

“छोड़िये इस बात को ।” उसने जल्दी से कहा—“यह बताइये कि इस उपन्यास में आपको कौन-सा चरित्र पसन्द है ?”

“नायक का ।”

“नायक के अलावा ?”

“नायिका का ।”

“नायिका के अलावा ?”

“नायिका के अतिरिक्त मुझे कोई चरित्र पसन्द नहीं ।”

“कारण ?”

“कारण यह है कि नायक और नायिका के अलावा जितने भी चरित्र हैं, मैं उन्हें चरित्र ही नहीं समझता ।”

“आप उन्हें क्या समझते हैं ?”

“घसियारे ।”

सौभाग्य से इस मौके पर एक मित्र आ गये और मैंने उससे माफ़ी माँग ली । कुछ दिन आराम से बीते । इसके बाद वह फिर आ गया और कहने लगा—“उस दिन आपके जवाब कुछ ऐसे उलझे हुये और अस्पष्ट थे कि मेरी तसल्ली नहीं हुई । आज मुझे विस्तार से बताइये कि आप ‘रंगभूमि’ को मुन्शी प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास क्यों मानते हैं ?”

मैंने ‘रंगभूमि’ की शान में कुछ शानदार शब्दों का प्रयोग किया—“देखिये उस उपन्यास में प्रेमचन्द ने जीवन का चित्र खींचा है । कुछ स्थानों पर तो वे शैक्सपियर से भी ऊँचे दिखाई पड़ते हैं । चरित्र-चित्रण में तो वे फ्रील्डिंग, स्कॉट, जेम्स जॉयस से भी बाजी ले गये हैं । वर्णन शैली में वे हमें टॉमस हार्डी, मेरीडेथ और वर्जीना वुल्फ़ की याद दिलाते हैं । दो-एक अध्यायों में प्रेमचन्द्र ने चार्ल्स डिकेन्स, थैकरे, मोपासाँ और मैक्सिम गोर्की से टक्कर ले ली है ।”

उसने सन्दिग्ध नेत्रों से मेरी ओर देखा और कहा—“जैसे-जैसे किसी अध्याय में।”

मैंने अपनी घबराहट को छिपाते हुए जवाब दिया—“मेरे विचार में अन्तिम अध्याय में या प्रथम अध्याय में।”

उसने ‘रंग-भूमि’ खोल कर मेरे सामने रख दी और कहा—“आप ठीक से सोच कर बताइए। पहले अध्याय में या अन्तिम अध्याय में?”

मैंने माथे से पसीना पोछा और जल्दी से घड़ी की तरफ देखते हुए कहा—“माफ़ कीजिएगा इस ससय मुझे स्टेशन पहुँचना है। मेरी मौसी का भाई फ्रान्टियर मेल से आ रहा है। आप फिर किसी समय आइए।”

एक हफ़्ते के बाद वह फिर मुझे मेरे घर पर मिला। उस दिन मैंने झूठ-मूठ फुरसत न होने का बहाना किया—“मुझे आज एक मिनट की भी फुरसत नहीं। भैंस बीमार है। उसे हस्पताल ले जाना है, ऑल इण्डिया रेडियो के लिए बहत्तर पृष्ठों का एक फ्रीचर लिखना है, वच्चों के लिए खरगोश खरीदना है।”

उसने गम्भीरता से कहा—“कोई हर्ज नहीं, मैं परसों आ जाऊँगा।”

“परसों न आइएगा, मैं रावलपिण्डी जा रहा हूँ।”

“बहुत अच्छा, एतवार को सही।”

“देखिए एतवार को मेरे भतीजे की शादी है। उस दिन न आइएगा।”

“सोमवार को आ जाऊँ ?”

“मेरे एक बहुत बड़े दोस्त बीमार हैं। शायद वह सोमवार को चल बसें इसलिए आप सोमवार को न आइएगा।”

“मंगलवार को आ सकता हूँ ?”

“हाँ-हाँ, मंगलवार को जरूर आइएगा, लेकिन शाम को।”

मंगलवार की शाम को मैं एक दोस्त के घर छिप कर बैठा रहा और इस तरह उस दिन यह बला टल गई। चन्द दिनों के बाद उसने मुझे कॉफी हाउस में आ दबोचा। और पूछा—
“गोदान और रंग-भूमि में आप किस उपन्यास को श्रेष्ठ समझते हैं ?”

मैंने कहा—“गोदान मुन्शी जी का अन्तिम उपन्यास है, इस दृष्टि से मैं उसे रंगभूमि से अच्छा समझता हूँ।”

“यह तो कोई उचित कारण नहीं ?”

“उचित कारण क्यों नहीं ? आखिर जो डामे शैक्सपियर ने आखिरी दिनों में लिखे, उन्हें हमेशा उन डामों से अच्छा समझा जाता है, जो उसने शुरू में लिखे।”

“लेकिन इससे आप इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँच सकते हैं कि लेखक की आखिरी रचना उसकी पहली रचनाओं से हमेशा अच्छी होती है ?”

“क्यों नहीं।”

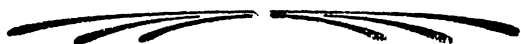
“आप किस दृष्टि से ‘गोदान’ को ‘रंग-भूमि’ से अच्छा समझते हैं ?”

“इसलिए कि...इसलिए कि...इसका अन्त अच्छा है।”

“किस दृष्टि से ?”

“इस दृष्टि से कि जब हम ‘गोदान’ पढ़ते हैं तो हमें महसूस होता है कि इसका अन्त वही होना चाहिए था, जो है।”

उसको संतोष न हुआ और उसने फिर किसी दिन इस विषय पर बहस करने के लिए मुझसे समय माँगा। उस दिन के बाद कई बार वह मेरे मकान पर आया और मैंने हर बार अन्दर से कहलवा भेजा कि मैं घर पर नहीं हूँ। आजकल वह मेरे मकान पर नहीं आता, लेकिन जहाँ कहीं मुझसे मिलता है, पूछता है—“आपने विस्तार से नहीं बताया कि आपको प्रेमचन्द का कौन-सा उपन्यास पसन्द है ?” और मैं भट यह कह कर कि—“इस समय मुझे ज़रा जल्दी है, फिर बतलाऊँगा” कन्नी काट जाता हूँ। कभी सोचता हूँ कि किसी दूसरे शहर चला जाऊँ, कभी खयाल आता है कि उससे एक दिन साफ़-साफ़ कह दूँ कि मैंने प्रेमचन्द का कोई उपन्यास नहीं पढ़ा। लेकिन फिर सोचता हूँ कि उस निबन्ध का क्या बनेगा जो मैंने प्रेमचन्द की बरसी के अवसर पर पढ़ा था ?



मुल्ला जी की बीबी

एक जमाना था, जब बी० एन० आर० की ट्रेनें मेरे लिए उन लावारिस गधों की तरह थीं, कि जिन पर कोई भी जीन कसकर बैठे जाए, उसे कोई रोकने वाला नहीं। इसी तरह मैं भी निर्द्वन्द्व ट्रेन में बैठ कर मटरगश्ती किया करता था। फ़र्स्ट, सेकेण्ड, इण्टर और थर्ड मेरे लिए सब बराबर थे। मुझे जब कभी कहीं जाना होता, तो जहाँ पर मैं खड़ा रहता था, वहाँ पर कोई-सा भी डिब्बा खड़ा हो जाता, मैं उसी में बैठ जाता, —चाहे वह जनाना ही क्यों न हो ! बहुत-सी औरतें तो देख कर घबरा जातीं और कहने लगतीं—“क्यों?...क्यों ? आप तो मर्द हैं, इस डब्बे में क्यों चढ़ आए ? उतरिए, नहीं तो चेन खींचती हैं।”

सिर्फ उन्हें बताने के लिए इतना कह देता—“घबराइए नहीं, मैं कोई चलता-फिरता चोर या ठग नहीं हूँ। मेरे पहिचान की एक महिला कटनी में उतर गई हैं उनका कुछ सामान छूट गया है, वही देखने आया हूँ। अगले स्टेशन पर

उतर जाऊँगा ।” तब कहीं उनको विश्वास होता था, परन्तु खड़े-खड़े अगले स्टेशन तक जाना होता था और नज़रों को कब्ज़ों में रखना पड़ता था ?

कलकत्ते से नागपुर तक के स्टेशन-मास्टरों से मेरी जान-पहिचान थी; क्योंकि मेरे पिता जी भी एक रेलवे अफसर थे । एक दिन मुझे बिलासपुर से नागपुर जाना था उस वक़्त वहाँ बॉम्बे-टॉकीज़ का ‘पुनर्मिलन’ चल रहा था । उसमें मुझे स्नेह-प्रभा प्रधान के भावमय अभिनय, चुलबुले गाने और थिरकता नाच देखना था ।

मेल आई । मैं इण्टर के एक डब्बे में बैठ गया । उसी में एक मुल्ला जी तथा उनकी बीबी साहेबा अपनी तशरीफ़ का टोकरा रखे हुए थीं । मेरा अन्दर दाखिल होना था, कि बुरक़े का नक्काब चढ़ गया, और मैं देख भी न पाया, कि जनाबा काली थी या गोरी । उस डब्बे में सिर्फ़ तीन सीटें थीं । वे दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने बैठे हुए थे । मैं जा कर उनकी बीबी वाली सीट पर थोड़ा बग़ल से बैठ गया ।

मेरा वहाँ बैठना मुल्ला जी को इतना अखरा, कि वे लगे मुझे सिर से पैर तक घूर कर देखने । मैं भौचक्का रह गया । मुझे ऐसा लगा, मानो मुल्ला जी ने मुझे कोई जिन समझा हो और मन ही मन मुझे भगाने के लिए किसी सिद्ध मन्त्र का जाप कर रहे हों । उन्होंने लगातार कई मरतबा ऐसा किया तो मुझे भी गुस्सा आए बिना न रहा । मैंने तो सोच लिया

कि मुल्ला जी चाहे कोई भी क्यों न हों, इनसे बिना उलभे काम न चलेगा। मैं बोल ही तो उठा—“क्यों साहब, क्या घूर-घूर कर देख रहे हैं?”

मुल्ला जी कुछ मँपते हुए बोले—“जी नहीं, हमारे यहाँ ज़रा परदा होता है। आप अपना डब्बा बदल लीजिए।”

“आपके यहाँ परदा होता है, तो उससे मुझे क्या? मैं क्या कर सकता हूँ? पाखाने में बिठा दीजिए, जिससे इन्हें कोई देख न सके, क्योंकि आप जहाँ भी बिठाएँगे, वहाँ आदमी तो जरूर आवेंगे। बेहतर तो यह है, कि जब कभी आप किसी भी जनाने के साथ सफ़र किया करें, एक पूरा डब्बा रिज़र्व करा लिया कीजिए।”

मुल्ला जी पाखाने में बिठा देने वाली मेरी बात से इतना चिढ़े, कि शायद अन्दर ही अन्दर कवाब हो गए हों। मेरा उनकी बीबी के साथ बैठना उन्हें इतना खल रहा था, कि मुल्ला जी की हालत उस कुआरी (कुआर के) कुत्ते की तरह हो रही थी, जो दूसरे कुत्ते को देखते ही बम की तरह फट पड़ता है। उसके माथे पर शिकने पड़ गई। मुल्ला जी ने त्योरी बदलते हुए कहा—“जनाब, आप इस सीट पर आ जाइए, वहाँ पर नहीं बैठ सकते!”

मुल्ला जी की बातों का तो मैंने कोई विशेष ख्याल नहीं किया, मगर मन में सोचने लगा, कि आखिर मुल्ला जी ने कितनी टिकटें खरीद रक्खी हैं। बड़े शक्की मिजाज के हैं।

अगर मैं उनकी बीबी के बगल में बैठ गया हूँ, तो क्या उन्हें उड़ाए लिए जा रहा हूँ, या उन्हें निगल जाऊँगा ? अजीब परदा कराने वाले हैं, कहीं मेरी नजर न लग जाय, मगर 'नजर-प्रूफ' परदा तो उनके चेहरे पर लगा ही हुआ है।

मैंने कहा—“मुल्ला जी, मालूम पड़ता है, कि औरंगजेब के बाद एक आप ही शक्की-मिजाज रह गए हैं, जो किसी का अपने पास बैठना भी पसन्द नहीं करते। मैं तो यहाँ से नहीं उठ सकता, अगर आप को एतराज है, तो किसी वीरान डब्बे में ठिकाना कर लीजिए।”

अपनी दाल गलती न देख, मुल्ला जी मुझे धमकी देने लगे—“बतलाइए जनाब आपका टिकिट कहाँ है?”

सचमुच मेरी हालत उस समय ऐसी थी, कि मुल्ला जी का टिकिट के बारे में शक करना वाजिव था। वजह यह थी, कि उस वक़्त मेरे बाल बिखरे हुए थे—लोफ़रों की-सी वेश-भूषा थी। मैं समझ गया, कि मुल्ला जी को मेरी ड्रेस पर शक हुआ। फिर मेरे पास साथ में कुछ था भी नहीं; सैलानी जो ठहरा ! जहाँ कहीं गया, पचीसों दोस्त ! इन जनाब को तो यही मालूम हुआ, कि मैं कोई ठग या गिरहकट हूँ।

मैंने कहा—“जनाब, मालूम पड़ता है, कि आप का दिमाग दुरुस्त नहीं है ! आप हैं कौन टिकिट पूछने वाले ? समझ लीजिए, मेरे पास टिकिट नहीं है, भला आप क्या करेंगे मेरा ?”

“मैं अभी चेन खींच दूँगा। गार्ड से कह दूँगा, कि यह शख्स हम लोगों को धमकी दे रहा था। कहता था, कि मुझे सब माल-असबाब दे दो, नहीं तो तुम दोनों का गला घोट दूँगा !”—मुल्ला जी बोले।

मुल्ला जी की बातों पर मैं एक बार ठहाका मार कर हँस पड़ा—“क्या .खूब ! क्या .खूब !! मुल्ला जी, ऐसा मालूम पड़ता है, कि आप अभी किसी अजायब घर से निकल कर चले आ रहे हैं। आपकी दाढ़ी भी अजीब है और दिमाग का तो कहना ही क्या !”

दाढ़ी का नाम सुनते ही मुल्ला जी और भी बिगड़ उठे और कहने लगे—“तौबा, तौबा ! खुदा आपको अक़ल दे ! वाहीयात बातें न कीजिए। बातें मुझसे हो रही हैं या मेरी दाढ़ी से ?”

“जी नहीं, मुल्ला जी ! आप थोड़ा शुरु से ही अकड़ गए, इसलिए मजबूरन मुझे बेजा अलफ़ाज काम में लाने पड़े। कहिए जनाब, ये बग़ल में बैठी हुई आपकी हमशीरा हैं क्या ?” यह तो मैं जानता था, कि यह जनाब उनकी बीबी ही होंगी, परन्तु मज़ा जो देखना था, इसलिए मैंने उनसे यही पूछा।

अपनी बीबी को हमशीरा सुन कर, तो उनका खून खौल गया। वह बोले—“वाह जनाब ! ये तो मेरी बीबी हैं। मेरे साथ इतनी देर तक रहे, फिर भी आपके दिमाग में यह अदना-सी बात न आई, कि ये मेरी बीबी हैं, या हमशीरा ?”

“तो जनाब, आपने बताया ही कब था, कि ये आपकी बीबी हैं ?”

इतनी देर की बात-चीत में मुल्ला जी सरकते-सरकते अपनी सीट के आखीर तक पहुँच गए। मैं समझ गया, कि मुल्ला जी हैं सोलहो आना सनकी ! न मालूम क्या सोच कर अचानक वे फट पड़े—“आप बड़े बदमाश हैं !” इतना कहना था, कि आप ‘धम’ से अपनी बीबी साहेबा की जूतियों पर, जहाँ केले और सन्तरे के छिलके भी पड़े हुए थे, चकिया कुम्हड़े की तरह लुढ़क गए। गिरते ही मुल्ला जी का पाजाम चर्र हो गया। केले-सन्तरे के छिलकों पर जो फिसले, तो एक हाथ आगे सरक गए। पाखाने का दरवाजा खटाक से आपकी खोपड़ी पर लगा, और छिलके दाढ़ी से जा चिपके। मुल्ला जी हड़बड़ा कर दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए उठे। उनकी टर्किश कैप दूर जा पड़ी, मानो वह मुल्ला जी को तलाक़ देना चाहती थी !

अब उनकी बीबी, जो अभी तक बिलकुल चुपचाप बैठी थीं, बुरका ऊपर उठा कर देखने लगीं, कि क्या हो गया ? उन्होंने समझा था, कि मैंने मुल्ला जी को उठा के पटक दिया है। वह चट से उठीं और चेन खींच दी। गाड़ी थोड़ी दूर चल कर रुक गई। गार्ड दौड़े आए। यात्री भी घबरा गए, कि आखिर क्या हो गया ? मेरे डब्बे के सामने अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गई। मिस्टर जे० के० शर्मा गार्ड थे, जिनके

यहाँ मैं महीनों रह कर दावतें खा चुका था। अस्तु, मेरे लिए कोई डर की बात थी नहीं।

जैसे ही शर्मा जी पहुँचे, मुल्ला जी गिड़गिड़ा कर अपना बयान सुनाने लगे—“देखिए साहब, इस बदमाश को; यह हमें तरह-तरह की धमकियाँ दे रहा था। हमसे कहता था, कि माल-असबाब मेरे हवाले करो, नहीं तो मार डालूँगा।”

मैं समझ गया, मुल्ला जी मुझे फँसाना चाहते थे; क्योंकि मैंने उन्हें रास्ते भर तंग किया था।

मिस्टर शर्मा मुझसे पूछने लगे—“क्या मामला है मिस्टर नारायण ! खुलासा कहिए ?”

शुरू से अन्त तक का सारा किस्सा मैंने उन्हें सुना दिया, जिससे उन्हें भी हँसी आए बिना न रही। मैं यह भी कहना नहीं भूला, कि ये मुझसे टिकिट माँग रहे थे।

अब तो उलटी बत्ता मुल्ला जी के गले पड़ी। शर्मा जी बोले—“क्यों जनाब, आपको क्या अर्थॉरिटी थी, जो आप किसी यात्री से टिकिट माँगे ? आप कौन होते हैं, किसी को डब्बे से निकालने वाले, किसी शरीफ आदमी को गिरह-कट या बदमाश कहने वाले ? आप कैफ़ियत दीजिए, नहीं तो आप पर केस चलाया जायगा। मुल्ला जी हक्के-बक्के रह गए। कह भी क्या सकते थे ? बोले—“बाबूजी !”

मिस्टर शर्मा यह सुनने के पहले वही हाँ से रवाना हो चुके थे ।

मैंने देखा मुल्ला जी दूसरे कम्पार्टमेण्ट में तशरीफ़ ले जा चुके थे । मुझे याद आया, जिस वक़्त उनकी बीबी साहेबाबेन खींचने उठी थीं, मैं उनकी नक्काब से खुली हुई सूरत देख चुका था । वे काली-कलूटी थीं ! इसी स्याह परी पर मुल्ला जी ने इतना बख़ेड़ा व्यर्थ ही मोल लिया !



शोर का शिकार

यह जब का जिक्र है कि अल्लामियाँ ने वह दिन दिखाया कि हमारे सेहरे बँधे, और श्रीमतीजी को दुलहन बना कर लाए।

जब हम लोग एक मुखतसर बारात की सूरत अख्तियार करने लगे, तो भाभीजान ने हलक फाड़कर इस बात का एलान किया, कि दुलहन के कमरे को कब सजाया जायगा....वह कमरा जिसमें नैहर से दुलहन आकर उतरेगी? तजवीजों होने लगीं कि कौन जगह सबसे मुनासिब है। सभी ने अपनी अपनी अकल पर जोर दिया। मतलब यह कि सिवा नीम के दरखत के गालिबन् तमाम मौजूँ मुकाम तजवीज हो कर रह हो गए। तब कहीं जाकर भाभीजान को अकल आई— मेरी बीबी खुद मेरे कमरे में क्यों न ठहरे? साफ़ बात थी! भाभीजान खुद तज़रबेकार ठहरीं! बेहतर यही था। बस फिर क्या था! टूट पड़े सब के सब कमरे पर और लगे ऐसी-वैसी और बदसूरत चीज़ें हटाने (मुझे नहीं), और

आरायश का सामान सजाने । भाभीजान जिस काम में हाथ डालें और भला तारे न चढ़ जाएँ ! उन्होंने न अपनी देखी, न पराई । जिस किसी की भी उम्दा आरायश की चीज़ देखी, कमरे में ला सजाई और पल-भर में कमरे को सचमुच दुलहन बना दिया !

जब कमरा सचमुच सज-सजा कर दुलहन बन गया और कोई कसर बाक़ी न रह गई, और चारों तरफ़ से भाभीजान की तारीफ़ों के पुल बँध गए, तो भाभीजान को और भी जोश आया । वल्ला, दौड़ी हुई अपने कमरे में जाके अपनी शेर की खाल उठा लाई और उसको करीने से मसहरी के पास डाल दिया ।

अब इस खाल की कहानी भी सुन लीजिए । जब हमारी शादी श्रीमतीजी से तय हो गई और मँगनी भी हो गई, तब तक एक दफ़ा हम दोनों भाई बतखों के शिकार को गए । वहाँ एक बेवक्रूफ़ शिकारी हमें शेर का शिकार कह कर जंगल में ले गया, ऐसा दहशतनाक जंगल कि वहाँ एक हू का आलम था और दरख़तों की छाँह से अंधेरा था । यहाँ हमारा नातका बन्द हो गया । थक अलग गए और हैरान अलग हुए । बच गए, वरना शेर खुद खा लेता । लिहाज़ा यह सोच कर कि अगर हमें शेर खा गया, तो श्रीमतीजी के साथ बेहद जुल्म होगा, हमने जब देखा कि शेर से भपट होगी, तो हम एक दरख़त पर चढ़ गए । किस्सा मुखनसर यह कि शेर को भाई साहब

ने मार लिया। जब मर गया, तो हम भी मौक़ा वारदात पर पहुँचे। भाई साहब ने कहा—शेर में अभी जान है, बन्दूक तैयार रखो। जब क़रीब गए, तो वह मज़ाक़ में चीख़े कि मारो। मैंने घबराहट में रायक़ल चला दी। और खुद भाड़ियों में उलझ गया। शेर मुर्दा था और यह गोली शेर की दुम में लगी। शेर मर कर जब घर आया, तब भाभीजान का मारे खुशी के बुरा हाल हो गया। और हमें पता चला कि दर-असल हम से ग़लती हुई। हमें खुद एक शेर अलग मारना चाहिए था। वालिद साहब अलाहिदा ख़फ़ा हुए कि शेर की दुम में भी कोई गोली मारता है ! भाभीजान ने इस बात को यों साफ़ किया कि जिनका इरादा बजाय शेर के शेर की दुम मारने का हो, वह ऐसा ही करते हैं। चुनान्चे जब कभी भी इस शिकार का ज़िक्र आया, भाभीजान ने खुश होकर इसी बात पर ज़ोर दिया, जिसकी वजह से मुझे अक़सर शरमिन्दा होना पड़ा। और वाक़या यह है कि अगर कहीं अपनी शादी का मामला दरपेश न होता, तो कभी का शिकार में जाकर या तो शेर मार लाया होता या फ़ना हो गया होता। भला खुद ग़ौर कीजिए कि कहाँ नई दुलहन और कहाँ कम्बख़्त शेर ! इनमें से शेर से मुलाक़ात क़तई वाहियात। चुनान्चे मैंने शेर मारना शादी बाद तक मुलतवी कर दिया कि जब घर वाली आ जाएगी तब उससे पूछ-पाछ के जाएँगे और शेर एक छोड़ दो मार लाएँगे। वरना अभी जो बंदहवासी की तो मारना तो

खैर बरहक है, लेकिन शादी से पहिले कुछ वक्त पहिले सा हो जायगा। दर-असल श्रीमतीजी का चेहरा, जो एक दफे छिप-छुपा कर देखने में आ चुका था, उसको दोबारा देखने की जरूरत हो रही थी।

२

जब हम श्रीमतीजी को ब्याह कर लाए तो उन्हें इसी कमरे में निहायत ही ठाटसे लाकर उतारा गया। इस सिलसिले में कुछ ऐसी हरबोंग मची कि “दुलहन” के देखने के सिलसिले में हर शख्स; बच्चा, बूढ़ा, नौकर-चाकर गोया बे-टिकट घुस पड़े। कमरे में रौंद-सी मच गई। भाभीजान की हलक कट गई। मगर लोगों ने शेर की खाल मसल फेंकी। इसमें मखमल की गोट लगी थी। कोई जूता पहिने तो कोई नंगे पैर। गरज इस खाल को पलक मारते, दुलहन के उतरते-उतरते, रगड़ फेंका। भाभीजान क्या करतीं? मुनासिब साइज के दो-चार नौकरानियों के बच्चों को ठोंक दिया, फिर जोर से पुकार कर हुक्मे-आम दिया कि “जो भी इधर आएगा, मारा जाएगा।” और फौरन ही “जो भी” चले आते हैं! यानी चले आते हैं सामने से भाई साहब इधर!

भाई साहब ने सुना नहीं कि बीबी साहबा क्या फरमाती हैं! बोले—“क्या है...?” इन्हें यह नहीं मालूम था कि इधर आना मना है और बीबी साहबा मारपीट का वादा-आम

फरमा रही हैं। आते ही बोले—“यह तो क्या बाढ़ियात है... हम लोग भी आखिर दुलहन को देखेंगे...”

“चूल्हे में गया देखना। छोटे तो छोटे, बड़े...” यह कहते हुए भाभीजान ने भाई साहब को सख्ती से मखमल की गोठ रौंदने से रोका और गुल मचाकर, कई क्रायदों का हवाला देकर, उन्हें और मुझे दोनों को कमरे से निकाल दिया।

इसी रात का जिक्र है। मैंने आहिस्ता से कमरे में झाँक कर देखा—श्रीमतीजी और उनकी लौंडी थी, जो घर से आई थी। मैंने चुपके से झाँक कर देखा। मैं आपसे क्या अर्ज करूँ—कमरा बिजली से जगमगा रहा था। माँगे-ताँगे की सजाबट ने सितम ढाया था, और इस सामाने आरायश में एक नगीने की तरह श्रीमतीजी चमक रही थीं। दोनों कुहुनियाँ मसहरी की पट्टी पर रखकर दोनों हाथों की हथेलियों पर अपनी ठोड़ी रखे चेहरे पर एक दिलरुबा ताज्जुब। बड़ी दिलचस्पी से शेर की खाल को झुकी देख रही थीं, जिस पर उनकी लौंडी बैठी हुई एक किनारा उठाए हुए थी।

श्रीमतीजी ने हाथ के इशारे से लौंडी को हटाया। खाल का किनारा हाथ में लिया कि मैं आहिस्ता से कमरे में दाखिल हुआ। मैंने कहा—“अस्सलामालेकुम या.....”

श्रीमतीजी ने घबड़ा कर खाल वहीं छोड़ दी। लौंडिया एक तरफ़ को लुढ़क गई।

अब मेरी अकल पर पड़ें पत्थर कि मुझसे ऐक अजीब हिमाकृत हो गई ।

बातचीत शेर की खाल के मुताल्लिक हुई । पता चला कि शेर का मारना अच्छी बात है । श्रीमतीजी के पड़ोस में एक नवाब हैं, जिनकी मगरूर बहू ने लोगों का (श्रीमतीजी का) नातका बन्द कर रक्खा है; क्योंकि उनके खाविन्द से भी किसी शेर को गोली लग गई थी । श्रीमतीजी को यह नहीं मालूम कि यहाँ खुद भाभीजान से जान आफत में है । अब सवाल यह था कि यह खाल कहाँ से आई । मैंने सच-सच बता दिया — हम दोनों भाइयों ने शिकार किया है । दो गोलियाँ उन्होंने मारीं और एक मैंने । अब गोलियाँ कहाँ लगीं, यह बहस फ़िजूल थी । अब मैं क्या अर्ज करूँ श्रीमतीजी की हिमाकृत पर । मारे खुशी के इनका बुरा हाल हो गया । किसने मारा ? कब मारा ? कहाँ मारा ? किस तरह मारा ? ये सवाल पैदा हुए । कहो, तुम नई दुलहन हो । तुम्हें इन भगड़ों से क्या मतलब ? मगर मजबूरी; अब मुझे मालूम हुआ कि ओफ़ ओह ! हमें क्या खबर थी ! गलती हुई जो हम पेड़ पर चढ़ गए । जो भाई साहब के साथ रहे होते, तो मुमकिन था हमीं इस शेर के सही माने में क़ातिल होते । अब आप खुद गौर फ़रमाएँ कि क्या मैं कह देता श्रीमतीजी से कि तुम्हारी मुहब्बत व मुलाक़ात की खातिर मैं इस कमबख्त शेर से दूर रहा कि कमबख्त कहीं मुझे खा-पीकर बराबर न कर दे या मैं यह कैसे कह देता कि मरे हुए

शेर के पास रायफल लेकर पहुँचा और भाई साहब चौंके जोर से, तो वहीं मैंने रायफल सर कर दी और गोली दुम में लगी और मैं झाड़ियों में उलझ कर रह गया, और उसके बाद सबने मुझे बुरा-भला कहा और मजाक भी उड़ाया। लिहाजा श्रीमतीजी को मैंने क्रिस्ता इस तरह सुनाया कि खुद को भाई साहब के साथ ही दिखाया और क्रिस्ता में नमक-मिर्च मिला कर वह रंग दिया कि सुना कीजिए। क्रिस्ता मुख्तसर— हम दोनों ने शेर को मारा। श्रीमतीजी का मारे खुशी के बुरा हाल हो गया। उन्होंने मुझसे दबी ज़बान से कहा कि यह कीमती खाल जब दोनों के शिकार की कमाई थी, तो मुझे इससे दस्त-वरदार होकर भाई जान को न देना चाहिए था। मैंने भाभीजान के कब्जे की वजह यह बताई कि उन्होंने उसे कानपुर से रँगवाया, अस्तर दिया, गोट लगवाई। हालाँकि वालिद साहब ने अपने खर्चे से बनवा दी थी और मेरी वह फ़ज़ीहत हुई थी कि वालिद साहब ने कह दिया था कि मैं सख्त बुज़ादिल हूँ और मरे शेर से डर जाता हूँ।

कहने को तो श्रीमतीजी से सब कुछ कह दिया, मगर मुझे यह थोड़े मालूम था कि भाभीजान ऐसी हो जाएँगी कि सारा भंडा फोड़ देंगी। श्रीमतीजी से मैंने पुख्ता वादा कर लिया कि हम तुम्हें इससे भी बड़ा शेर ला देंगे। उसकी खाल इससे भी चम्दा होगी।

३

खुदा भला करे भाभीजान का। दूसरे ही दिन इन्होंने भंडा फोड़ दिया। हिमाकत खुद श्रीमतीजी ने की। ले बैठीं वह शिकार का दुखड़ा और खाल का किस्सा। भाभीजान को यह कब गवारा था ! इन्होंने कैफियत हाल खोल कर रख दी बल्कि श्रीमतीजी से यह कह दिया कि मैं सख्त बुज्जदिल हूँ। सारे किस्से में नमक-मिर्च लगा कर दिल से जोड़ कर न नालूम क्या कह दिया। इतने में मैं जो पहुँचा, तो “उई अल्लाह” कह कर भाभीजान हँसी से बेहाल हो गई। मैं भला ऐसे मौके पर क्या कहता ? बात को हँसी में टाला। श्रीमतीजी ने फिर जो हकीकत दरयाफ्त की, तो मैंने कह दिया कि उनसे भाभीजान मजाक करती हैं। मालूम हुआ कि श्रीमतीजी को यह मजाक पसन्द न आया। फिर भाभीजान ने इसी पर बस न की। उठते-बैठते श्रीमतीजी के सामने औरों से मेरी गप हाँकने की तादीद की। किसी को गवाह बनाया, किसी के सामने वह सीन पेश किया, जब बालिद साहब ने मुझे अहमक और गधा और बुज्जदिल करार दिया था। किस्सा-मुख्तसर—श्रीमतीजी बिचारी को ऐसा गोदा कि अब इनको भी शुबहा होने लगा कि हो न हो। दाल में काला है। मैंने अब यह देखा तो और दाँब चला। भाई साहब खड़े थे। इनसे मैंने कहा कि “भाई, ईमान से कहना, शेर किसने मारा ?” वह बोले—“तुमने”। भाभीजान ने कहा—“इनकी गोली कहाँ लगी थी ?” भाई साहब माथे पर

उँगली रख कर बोले—“यहाँ”। खैरियत हुई, श्रीमतीजी ने भाई साहब को नहीं देखा कि वह माथा बता रहे हैं। भाभी-जान चीख कर बोलीं—“माथे में..!”

मैंने कहा—“माथे में क्यों..?”। भाई साहब को मैंने इशारा कर दिया और इन्होंने अब सीने में बता दिया, जहाँ मैंने श्रीमतीजी को बताया था। नतीजा यह कि भाभीजान खिसियानी हो गई। भाई साहब से जिरह करने लगीं। जिसका नतीजा यह निकला कि उन्होंने बहुत ठीक जवाब दिए। इससे साफ साबित हो गया कि शेर हम दोनों ने मारा। भाभीजान हँस भी रही थीं, और रो भी रही थीं।

श्रीमतीजी से मैंने अकेले में कह दिया कि भाई साहब ने इनको खुश करने के लिए न मालूम क्या-क्या मजाक में कह दिया था। बस उसीको अब वह मशहूर किए चली जाती हैं। श्रीमतीजी ने इन तमाम बातों को मद्देनजर रख कर तय किया कि जल्द एक शेर खुद मार लेना चाहिए और खाल उठाकर भाभीजान को वापस दे दी। वैसे भी माँगे-ताँगे का सामान-आरायश जिसका था, उसको वापिस किया जा रहा था। भाभीजान ने श्रीमतीजी से कहा—“भई, ऐसी जल्दी क्या है। अभी पड़ी रहने दो खाल।” मगर इन्होंने कहा—“ना बहन, तुम्हारी खाल खराब हो जाएगी..।”

भेजा । भाई साहब भी साथ गए । एक और भी रिश्ते के भाई साथ गए । नतीजा बड़ा खराब रहा । गए थे शेर के शिकार को । श्रीमतीजी का मारे खुशी के बुरा हाल था कि अब आती होगी शेर की लाश । लेकिन क्या अर्ज किया जाए ।

एक अहमक और साथ हो लिए थे । इनके साथ बटेरों का जाल था । नतीजा यह हुआ कि वहाँ इस बटेर के जाल में हम फँस गए और लगे बटेरें पकड़ने ! और असल पूछो, तो वाक्या भी यही है कि बटेर का शिकार शेर के शिकार से बेहतर होता है ; बल्कि एक शेर किसी बटेर का मुकाबिला नहीं कर सकता । यकीन न हो तो खाकर देख लीजिए ।

नतीजा इस बटेरबाजी का यह हुआ कि हम एक गन्ने के खेत में बटेरें बीनते रह गए, और भाई साहब और उनका शिकारी “बीहड़” में घुस के कोई तीस मील आगे निकल गए । एक जंगल में पड़ाव कर रात को एक ताल पर से एक शेर को मार, भागे-भागे क़रीब के स्टेशन पर पहुँच कर शेर लेकर दिन के साढ़े बारह बजे घर पहुँचे । और फिर हम उसी रोज़ शाम को पाँच बजे वाली गाड़ी से दस-पन्द्रह बटेरें लेकर घर पहुँचे । अब आप से क्या बताएँ क्या ग़ज़ब हो गया ! हमें क्या ख़बर थी, वरना हम सिरे से खाली हाथ ही पहुँचते ।

आह ! हमारी चहेती घर वाली शेर का इन्तज़ार कर रही थी और हम पहुँचे बटेरें लेकर ! भाभीजान के ऊपर

नूर चढ़ा। फिर एकदम से खुशी की बिजलियाँ तड़पने लगीं।
 “ऐ लो बहन.....” श्रीमतीजी को उन्होंने पुकार कर कहा—“निरे शेर ही शेर.....। पिंजरा भरे आ गए।” और फिर जो इन शेरों को देख कर “उई अल्लाह” कह कर इनके ऊपर हँसी के एक सख्त खतरनाक दौरे का हमला हुआ है, तो न पूछो; मुँह सुख हो गया, उछू लग गया, गले में फन्दा पड़ गया; खाँसती-उकती बिचारी मारे हँसी के गोल-गुप्पा होकर अपने कमरे में जाकर मसहरी पर गिरीं। घर में हुल्लड़ हो गया! उधर तो शेर पड़ा और इधर बटेरों का मनहूस पिंजरा। वालिद साहब भी खड़े हँस रहे थे। कहने लगे—“उल्लू हो तुम निरे।” अब मैं क्या करता! क्या बटेरें छोड़ देता या कन्धे पर जो शेर मारने का खौफनाक रायफल रक्खा था, उसे फेंक देता। भाभीजान को देखिए कि देखती हैं और मारे हँसी के दीवानी हुई जाती हैं। इधर श्रीमतीजी का हाल मालूम है? क्या अर्ज किया जाए। जब यह अवतर हालत न देखी गई तो वह अपने कमरे में भाग गई और भाभीजान पुकारती ही रह गई—“ऐ बहन.....ऐ शेर अफगन वाली बहन.....अपने शेर तो सँभालो!” वह पिंजरा हाथ में उठाए थीं, जो हँसी के मारे छूटा पड़ता था।

श्रीमतीजी के साथ सिवा हमदर्दी के और मैं क्या कर सकता था। सब मामला समझाया। मुझे बटेरों में लगा छोड़ के भाई साहब आगे बढ़ गए। रही यह बात कि मैं बटेरें क्यों

लाया—वेशक गलती हुई। मगर मुझे मालूम भी तो हो कि शेर आ चुका है। खैर, वैसे तो कुछ नहीं, मगर हाँ एक बात है। भाई साहब को चाहिए न था कि खुद शेर मार लें। श्रीमतीजी ने मुझे मशविरा दिया कि आइन्दा भाई साहब से अलहिदा जाओ।

५

बहुत दिन तक शेर के शिकार की नौबत न आई। आइन्दा शिकार की उम्मीद ने श्रीमतीजी को फिर शिगुफ़ता कर दिया था। अकसर चर्चे होते थे। श्रीमतीजी को शिकायत थी कि भाई साहब ने “हमारा” शेर मार लिया। मैंने किस्सा ही कुछ ऐसा बना के कहा था। आखिर क्या वजह, जो भाई साहब ज़रा न टिके। मेरी परवाह तक न की। हालाँकि शिकार की मुहिम में दाम मेरे लगे थे।

फिर खुदा की मर्जी ऐसी हुई, मौक़ा आया। कई और दोस्त शामिल जाने को तैयार हुए। (यह तब का ज़िक्र है, जब मैं फ़र्स्ट इयर में पढ़ता था) चार रोज़ की छुट्टियाँ हुई। इसमें एक दिन सनीचर का शोता मिला कर इतवार जोड़ के पूरे छः रोज़ मिल गए। तजवीज़ यह हुई कि एक मोटर लॉरी की जावेगी। कोई तीस मील के फ़ासले पर एक गाँव में सदर मुक़ाम होगा और वहाँ से इधर-उधर मुख़्तलिफ़ शिकार-पार्टियाँ रवाना होंगी। जो बतखों और तीतर वग़ैरह के शिकारी हैं, वह अलग रहेंगे और हम शेर के शिकारी अलहिदा दूसरी

तरफ़ जाएँगे। भर्ज है कि शेर के सिर्फ़ दो शिकारी थे। एक मैं और एक मेरे दोस्त, जो सरहद्दी पठान थे। इनके पास बारह नम्बर की छर्रे की बन्दूक थी और मेरे पास रायफल थी। भाई साहब अपनी पार्टी में थे। वह बतखों के शिकार का इरादा रखते थे।

शाम के चार बजे लॉरी रवाना होने लगी। मैंने और मेरे दोस्त ने यह तय किया कि हम रात को जाड़े में मरने कह जाएँ। बड़े सुबह तड़के एक्का एक ले लेंगे और रवाना हो जाएँगे, ऐसे कि आठ बजते-बजते पहुँच जाएँगे। बारह बजे हमारा शिकार हमें मिल जाएगा। हम जल्दी जाकर क्या करेंगे।



रात के दो बजे उठकर श्रीमतीजी ने नाश्ते का इन्तज़ामा शुरू कर दिया। असल पूछिए तो और सब झूठी बात है। शिकार का मज़ा ही नाश्ते में है वरना; शिकार कम्बख्त में धरा ही क्या है। मेरे दोस्त रात को यहीं सोये थे। एक्का वाले से कह दिया था कि सुबह तड़के आ जाए। अब नाश्ता तैयार होने को आया और एक्का नदारद ! घबड़ाहट में मुलाज़िम को भेजा कि एक एक्का पकड़ लाओ। वह ढूँढ़ता-ढूँढ़ता पहुँचा तो उसे एक थर्ड क्लास का एक्का मिला। उसे वह पकड़ लाया। इस एक्के का हाँकने वाला एक देहाती लौंडा था, कोई चौदह या पन्द्रह वर्ष का। मालूम हुआ कि असल एक्का वाला नहीं

है, बल्कि एक्का वाले का साला है। यह गाँव से अपनी बहन से मिलने आया था। बहनोई ने कहा कि ढाई बजे की गाड़ी निकाल आओ। उसने जब शिकार में चलने से इन्कार किया, तो हमारे दोस्त, खान, ने शिकारी चेहरा निकाल कर उसे कत्ल कर देने को कहा। बेचारा देहाती लौंडा सचमुच डर गया। एक दम से काँप गया और चुपचाप राजी हो गया।

हम दोनों दोस्त अपना-अपना बिस्तर, बन्दूकें और दूसरे सामान रखकर अँधेरे में ही रवाना हो गए! रास्ते में हमारे खान को शरारत सूझी। इधर-उधर की बातें करते-करते जी में आया कि इस लौंडे को फिर डरायें। आहिस्ता-आहिस्ता हम दोनों ने आपस में बातें करनी शुरू कीं, मगर इस तरह कि लौंडा सुन ले।

खान—“क्यों जी, बहुत दिन में किसी लौंडे का गोشت नहीं खाया?”

मैं—“इसका (एक्का वाले का) गोشت कैसा होगा?”

खान—“उस दफ्ता जब शिकार को चले थे, तो एक्का वाले का गोशत तो खराब निकला था।”

मैं—“वह तो बूढ़ा था। यह..।”

लौंडे ने खौफ़जदा होकर मुड़ कर देखा।

मैंने लड़के में कहा—“देख, तू ज़रा तेज़ चलाये चल।”

खान—(सरगोशी करते हुए)—इसे जंगल में ले जा के पहिले बन्दूक मार देंगे, फिर हलाल कर लेंगे।”

मैं—“और जो कोई आ गया तब ?”

खान—“कह देंगे कि हिरन को मार रहे थे यह बीच में आ गया । लग गई इसके ।”

मैं—“वह सड़क छोड़ कर जंगल में जायगा कैसे ?”

खान—“रुपए का लालच देंगे ।”

लड़के ने इन्तहा से ज्यादा घबड़ा कर फिर देखा । खान ने चुमकार कर लड़के से कहा—“देख तो, हमें तू वहाँ (जंगल की तरफ इशारा कर के) उधर वह गड्ढे जो हैं, ज़रा वहाँ ले चल ।”

लड़के ने विसूरती आवाज़ में कहा—“ना...नहीं ।” सर हिलाया ।

खान—“अरे रुपए देंगे हम !”

लड़का—(रोनी आवाज़ से) “नहीं ।”

खान—“अरे हम तुम्हें मारेंगे थोड़े ।”

लड़का—(रोते हुए)—“अरे मुझे मार डालोगे । अरे दादा रे.....।”

लड़के ने एका रोक दिया और दहाड़ना शुरू किया । इधर हमने डाँटना और चुमकारना शुरू किया । बड़ी मुश्किल से लड़का चुप हुआ । हाथ जोड़ने लगा कि मुझे मत मारना । सामने से कुछ गँवार राहगीर भी आ रहे थे । लड़के को चुपके-चुपके धमकियाँ देकर चुप किया और दिलासा दिया ।

फिर थोड़ी देर बाद खान बोले—“क्यों जो, इसे इस एक्के पर ही गोली मार दें।”

मैं—“कह देंगे कि चल गई बन्दूक।”

उसने मुड़ कर देखा और यहाँ चुपके से नाल के बजाय हमने कुन्दा उसकी तरफ किया था। खान ने बजाय कारतूस के अपनी बन्दूक में नाल की तरफ छोटा चाकू डाल दिया।

लड़का चिल्लाया—“अरे मार डाला...अरे...।”

जब उसे खूब रुला लिया, तो फिर उसे दिलासे दिए, तसल्लियाँ दीं। गरज खूब मशगिला हाथ आया।

इसी तरह मजे में कोई आधा रास्ता तय किया होगा कि सड़क को पार कर के चार मुरगावियाँ दाहिनी तरफ सामने ही एक ताल में गिरीं। ताल क्या एक बड़ा-सा गड्ढा था। हम दोनों तड़प कर एक्के से उतरे। भट से इन्होंने अपनी बन्दूक में दो कारतूस लगा लिए। मैंने भी अपना रायफल हाथ में ले लिया। एक्का वाले से ठहरने को कह कर हम लपके। फासला ही कितना था? मगर हमें एक खेत का चक्कर काट कर जाना पड़ा। बीच में कीचड़ का एक नाला आ गया। उससे बचाव के लिए एक खेत का और चक्कर काटा। गड्ढे पर पहुँचे हैं कि मुरगावियाँ उड़ गईं। उड़ते ही फायर किया। एक सरसों के खेत में फासिला पर गिरी; ढूँढ़ा मगर न मिली। आखिर थक, हार कर सड़क के किनारे पर आए; बहुत कुछ जहाँ से उतरे थे, वहाँ से कोई एक-दो फर्लाँग आगे निकले। यह सोचा

कि इसके वाले को आवाज़ दे लें कि हम आ गये हैं, और वह यहाँ आ जाय। अब जो देखते हैं, तो इक्का नदारद ! ज़रा और आगे बढ़ कर देखा—और देखा ; फौरन पता चला कि वह भाग गया। अब परेशान होकर दौड़े। एक्के का कहीं पता नहीं था। बदहवास होकर जहाँ एक्का खड़ा था, पहुँचे। पहिये के निशानों से पता चला कि एक्का वाला भाग गया मय हमारे कोटों, बिस्तरों, कारतूसों, टोपियों वगैरह के ! सब लेकर भाग गया ! क्या यह मुमकिन था ? जी हाँ, सामने से दो आदमी आ रहे थे। उनसे पूछा कि एक्का तो नहीं मिला ? कहने लगे—“एक लौंडा एक्के को उड़ाये लिए जाता था। उस पर बिस्तर भी थे। सामान भी।” मारे डर के दरअसल भाग गया लड़का। सवाल यह था कि क्या हो ! बीस मील पैदल चलें, तब घर पहुँचें। और पन्द्रह मील पैदल चलें, तो शिकार के सदर मुक़ाम पर पहुँचें ! मगर मैं सदर मुक़ाम पर रायफल के कारतूसों के बगैर जाकर क्या करूँ ! फिर जाऊँ भी तो कोट और बिस्तर नदारद। सरदी का ज़माना। इतने में एक और राहगीर मिले। उनसे भी एक्के का पता चला। भागा जाता था। चार व नाचार, नंगे सर, पैदल, कोट नदारद, घर की तरफ़ डबल मार्च किया। मेरे कन्धे पर रायफल और खान के कन्धे पर बन्दूक। खान अपनी हिमाकत पर पश्तो में बकते हैं। मगर न्या होता है।

आपसे क्या अर्ज करें कि कैसी मुसीबत आई। भारी रायफल ने कन्धा तोड़ दिया। राहगीर एक से एक बदमाश। शौर से हमारी शक्त देखते हैं। कोई मसखरा पूछता है—“क्या मारा?” “तेरा सर!” खान झल्लाकर कहता है। कोई राहगीर आपस में बातें करते हैं, हम दोनों की सूरत देख कर—“कुछ मिला नहीं?” कोई दबी ज़बान से कहता है—“शिकारी है...” “जी में यही आता, इन कम्बख्त राहगीरों को पकड़ कर हिला मारें और इनसे हाल बयान करें और पूछें कि बदतमीज़ों, तुम्हें भी वह एक्का मिला या नहीं। मगर किस-किस से पूछते? थोड़ी दूर जाकर एकके का देखने वाला भी नापैद हो गया।

शाम को घर पहुँचे। गर्द में डूबे हुए, भूखे, खस्ताहाल। मालूम हुआ एक्का वाला बिस्तर और सामान वगैरह सब दे गया, यह कह कर कि हम लोग एक्का छोड़ कर न मालूम कहाँ चल दिए। अब बताइए कि हम तो इस मुशकिल में और भाभी-जान मारे हँसी के लोट-पोट हुई जाती हैं। तजवाज़ इनकी यह है कि मुझे शेर का शिकार एक सिरे से ज़रा नहीं आता। यहाँ खान का और मेरा मारे गुस्से का यह हाल कि मिल जाय एक्का वाला, तो उसे धुन के डाल दें। अगर भूखे न होते, तो उस लड़के को तलाश करके पहिले मारते। मगर फ़िज़हाल तो बेहद भूखे थे। श्रामतीजी बिचारी ने चुपचाप हम दोनों को बचा हुआ नाश्ता गरम करके खिला दिया। खान ने एक लपलपा बेंत लिया और कहा—“चलो, उस लौंडे को मारें।”

दरअसल एक्के पर बातों ही बातों में एक्के वाले का घर भी पूछ लिया था। श्रीमतीजी से वादा किया कि लौंडे को खूब मारेंगे।

६

जिन्होंने अलीगढ़ देखा है, वह लोग इस मुकाम को खूब पहचान लेंगे। कठपुले से नीचे उतर कर दाहिने को ढालुवाँ सड़क चली गई है। लंबे सड़क दरखत, मोपड़ियाँ, तमाम मकान कच्चे हैं। पूछते-पूछते हम दोनों यहाँ पहुँचे। एक मैली-सी लालटेन जल रही थी और लौंडा हमें देख कर कोठरी में घुस गया। एक अदद बुढ़िया थी। दो और औरतें पूछने को आईं कि क्या मामला है। हमने लौंडे को पाजी करार देकर उसके पीटने की बात उठाई। एक बुढ़िया बोली—“वाह, हमारे लाल को डरा दिया तुमने।” एक दूसरी ने माफ़ी चाही। एक तीसरी औरत ने हिमायत की। एक चौथी ने किराया माँगा। और खुद साहबजादे साहब ने अब ज़रा आज़ाद होकर किवाड़ पर हाथ रख कर भाँका। और उधर खान का पारा तेज़ ! लौंडा मुस्कुराया। खान ने लपक कर लौंडे का हाथ पकड़ लिया। घसीटा जैसे ही, तो पसर गया और मचाई जो उसने दुहाई तो खान ने गज़बनाक होकर उसे खींचा। और वह जो दहाड़ा है, तो तीन-चार चुड़ैलें उसे लगीं छुड़ाने। धर खान को मैंने मदद दी। बस फिर क्या था। हरबोंग मच गई। कश्मकश में खान ने लौंडे पर बेंत चला दिया। मगर

नतीजा ठीक न निकला। न मालूम किस तरफ से टूटी हुई चारपाई का एक फिलिंगा आकर गिरा। एक पीढ़ा का पाया किसी तरफ से आकर मेरी पुस्त में लगा। किसी तरफ से एक भाड़ू मुँह पर आकर पड़ी। न मालूम किस चुड़ैल ने खान के अँगूठे को काट खाया। और हुआ जो है हुल्लड़, तो अड़ोस-पड़ोस के मुसएडे जो इधर लपके—तो हम दोनों जो वहाँ से इधर भागे तो कठपुला पार करके घंटा-घर पर आकर दम लिया। मालूम हुआ कि कमीजें भी फट गईं। फिलिंगों और भाड़ुओं की मार से मुँह में धूल अलग घुस गई। खान के स्र पर एक मुर्गी बन्द करने का टोकरा भी लगा था। अब क्या करते? पिट-पिटा कर घर वापस आये। श्रीमतीजी ने पूछा—“क्या हुआ?” मैंने कहा—“मार आये उसे।” उन्होंने पूछा—“बेत कहाँ गया? मैंने कहा—“खान के पास है।” खान ने कहा—“वहीं रह गया।” खौर। बकौल कहे उस बदमाश लौंडे से हम बदला तो ले आये। ज़रा गौर करना, यह कम्बख्त शेर का शिकार जाकर खत्म कहाँ हुआ! मगर नहीं साहब, अभी तो फिर शिकार को जाना है!!



मेरी फज़ीहत

अ | ज से करीब पाँच साल पहले का क्रिस्सा है, जबकि मैं आठवीं जमात में तालीम पा रहा था; और मेरी उम्र थी करीबन १४ साल। उन दिनों मैं अपना बक्त खेल-कूद और तरह-तरह की शरारतों में बिताया करता था !

उन्हीं दिनों मेरे भाई साहब नए-नए एक से दो हुए थे, याने उनकी शादी हुई थी। इस नए शौक की वजह से वे दोनों एक साथ खाते-पीते, बातें करते और मौज उड़ाते थे। गरज यह, कि भाई साहब ने मुझे करीब-करीब बिलकुल ही भुला दिया। जहाँ पहले वह मुझे खूब प्यार करते, कहानियाँ सुनाया करते और मेरे साथ खेला करते थे, वहाँ अब मुझे उनका दर्शन भी न मिलता था; पर मुझे उनका यह बर्ताव कुछ अस्वरा भी नहीं; क्योंकि एक तो उन्हीं की तरह बोलने, प्यार करने और हँसने वाली भाभी मिल गई थीं, दूसरे यह, कि मैं कुछ अपने खयाली पुलाव भी पकाने लग गया था। मैं भाभी को तरह-तरह से तंग व परेशान भी करता था; वह भी अक्सर

मुँभुला कर कहा करतीं—“लाला, तुम मुझे क्यों तंग करते हो, तुम तंग करना अपनी मेम साहबा को।”

यह सुन कर मैं अकसर हँस दिया करता; और अपने खयाली पुलावों में मस्त हो जाता ! सोचता, जब मेरी शादी हो जायगी और भाभी-सी सुन्दर बीबी मेरे घर आवेगी, तब मैं भी भैया की तरह उसे खूब प्यार किया करूँगा, और जब वह रूठ जाया करेगी, तो उसे बड़े प्रेम से समझा कर खशामद करके मनाया करूँगा । गरज यह, कि इसी तरह मेरे दिन हँसी-खुशी में बीत रहे थे ।

२

बहुत दिन बीत गए—करीब-करीब दो साल । इन दिनों मैं मैट्रिक के इम्तहान की जोर-शोर से तैयारी कर रहा था । इधर मेरे घर वाले एक नया ही मन्सूबा बाँध रहे थे । कहने का मतलब यह, कि मुझे चौपाया बनाया जाने का इरादा किया जा रहा था । पर मैं इस दुनिया से अलग, अपनी किताबी दुनिया में रहता था । इसी तरह करीब डेढ़ माह के और बीत गया ।

उस दिन मेरा इम्तहान खतम ही हुआ था, और मुझे होस्टल में एक दिन भी बिताना भारी मालूम हो रहा था । बस, मैं फौरन ही घर रवाना हो गया । घर पहुँचते ही मुझे भाभी ने परेशान करना शुरू कर दिया । मैं कुछ समझ न सका । बड़े अचम्भे से उनकी ओर देखने लगा । बातों ही बातों में

मुझे पता चला, कि मेरी शादी की बातचीत अमृतसर में ठीक हो गई है। और शगुन वगैरह कल आने वाला है।

इस रसम के अदा हो जाने के बाद, मैं छुट्टियाँ बिताने पहाड़ चला गया। और पहाड़ से लौट कर कॉलेज में पढ़ने के लिए बनारस। गरज यह, कि डेढ़ साल का अर्सा बीत चला। इधर मेरे घर वालों ने मेरी शादी फरवरी में पक्की कर दी।

बड़े दिन की छुट्टियाँ शुरू होने के पहले ही मैं घर गया; वहाँ भाभी और बहन ने मुझसे सब किस्सा कहा। मेरा इरादा शुरू ही से था, कि बगैर बीबी के देखे शादी न करूँगा। इसलिए मैंने पिता जी से कहा, कि अव्वल तो मेरा इरादा अभी शादी करने का है ही नहीं, दूसरे, मैं लड़की देखे बिना शादी न करूँगा; बस पिता जी बिगड़ गए और मुझसे बातचीत भी बन्द कर दी! मगर अम्मा और दादी ने मुझे समझाना शुरू किया। दादी कहतीं—“बेटा, अब मेरा आखिरी वक्त है, मुझे मरने के पेश्तर अपनी बहू की सूरत तो दिखा दो।” भाभी कहतीं—“लाला, मुझसे बात करने वाली कोई मेरी हमजोली नहीं है, बीबी ला दो, तो मेरा जी भी बहले।”

मैंने हार कर कुन्दन से राय ली; उसने कहा—“यार, शादी तो करनी ही होगी, तो एक काम करो; बाबू जी की

बात मान लो, और बीबी को देखने का तरीका मैं तुम्हें बता दूँगा।

३

कॉलेज के साथियों के साथ जब मैं बम्बई की ट्रिप पर चलने लगा, तो पिता जी ने फिर शादी के बारे में मेरी राय पूछी। मैंने कहा—“मुझे आपके हुक्म से कतई एतराज नहीं है।”

दोस्तों को बम्बई का रास्ता दिखा कर मैं अमृतसर चल दिया। वहाँ मानसरोवर होटल में अपना असबाब रख कर आवश्यक जरूरतों से फारिग हो, मैं अपनी भावी ससुराल की ओर चला। उनका पता मैंने भाभी से पहले ही मालूम कर लिया था। मकान के पास पहुँचा हो था, कि मेरी निगाह अपने मामा पर पड़ी, जो सामने से चले आ रहे थे। मैं उनको देख कर चकपका उठा।

मामा ने पूछा—“यहाँ कहाँ?”

मैंने कहा—“मामा जी, मैं भी तो यही पूछता हूँ, कि आप यहाँ कहाँ?”

खैर, मेरा तो अभी पहली से यहाँ तबादला हो गया है; पर तुम कहाँ आए हो?

“मैं अपनी कॉलेज-मण्डली के साथ ट्रिप पर आया हूँ।”—मैंने कहा। क्योंकि यह कहना तो नामुनासिब था, कि बीबी देखने आया हूँ।

“तो घर चलो।”

मैं मन ही मन मायूस-सा हो उनके साथ चल पड़ा। और दिल में कहने लगा ‘आए थे हरी भजन को ओटन लगे कपास !’

थोड़ी देर बाद जब मामा दफ़्तर चले गए, तो मैं मामी से कह कर होटल से सामान लाने चला गया। जब सामान ले कर लौटने लगा, तो मैंने सोचा, चलो ससुर जी के मकान से होते चलें, जो कि उसी मोहल्ले में था, जिसमें मेरे मामा का मकान था, पर लज्जा की वजह से जा न सका !

जब मैं सामान रख कर गुसलखाने में नहा रहा था, तो सुना मामी कह रही थीं—“मुरली जी, पुष्पा को भेज दीजिएगा।” मैं चौंक पड़ा, कि मुरली जी मेरे ससुर का नाम था। मैंने सोचा, सम्भवतः मामी मेरे आने का उद्देश्य समझ गई हैं। और उसी उद्देश्य से मेरी भावी पत्नी को बुलाया है।

दोपहर को मेरे भोजन करते समय, मामी ने मेरे अमृतसर आने का उद्देश्य पूछा। मैंने कॉलेज के साथियों के साथ आने का बहाना किया; पर वह मुस्कुरा कर बोलीं—“भूठ, और वह भुक्त से ही !”

मेरी गर्दन अनायास ही झुक गई। इसी समय वह फिर बोलीं—“क्यों, बीबी को देखने आया है ?” मैं चुप रहा, वह फिर कहने लगीं—“अच्छा, घबरा मत मैं तुम्हें तेरी बहू किसी-न-किसी बहाने दिखा दूँगी।”

थोड़ी देर बाद एक लड़की ने घर में क्रदम रकखा। मैंने पर्दे की आड़ से उसे देखा और खूब देखा; यहाँ तक कि तेरह वर्ष की सुन्दर-सी मृग के समान काली-काली आँखों वाली वह शक्त मेरे दिल में बसने-सी लग गई। मैंने सोचा शायद यही मेरी पत्नी है।

उसी समय मामी ने कहा—“पुष्पा, तुम आ गई।” सुन कर मेरा सन्देह दूर हो गया।

कपड़े पहन कर जब मैं बाहर जाने लगा, तो मामी ने मुझे बुला कर अपने पास बैठा लिया। थोड़ी देर बात करने के बाद जब मामी ने उसका परिचय दिया, तो मुझे मालूम हुआ, कि वह मेरी पत्नी नहीं, बल्कि उसकी बहन है!

मेरी आशाओं के महल पर भूकम्प का धक्का लगा; पर महल इस उम्मीद पर खड़ा हो रहा, कि जब यह इतनी सुन्दर है, तो इसकी बहन भी अवश्य ही सुन्दरी होगी।

शाम को जब मैं मामा के साथ बरामदे में बैठा बातें कर रहा था, तो मेरी नज़र उनके बरामदे की ओर थी। मामा इसे ताड़ गए और बोले—“बेटा, दो दिन और सब्र करो। फरवरी ज्यादा दूर नहीं है।” मैं शर्म से गड़गया। पर इतना होने पर भी मेरी निगाहें उधर उठ ही जाती थीं! बहुत देर वहाँ रहने पर भी मुझे वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया।

अगले दिन जब मैंने चलने के बारे में कहा, तो मामा ने

तीन दिन ठहर कर अपने जन्म-दिन की दावत खा कर जाने की सलाह दी। मैं रुक गया।

तीसरे दिन मामा की वर्ष-गाँठ में सम्मिलित होने वाले व्यक्तियों में मेरे भावी ससुर साहब भी आए! उनके साथ कई लड़कियाँ भी थीं। मैंने सोचा, शायद इनमें मेरी पत्नी भी हो। पर परिचय कराए जाने पर मेरे हाथ नाउम्मेदी रही। मैं मन ही मन कह उठा :

किस्मत की बदनसीबी को सैयाद क्या करे ?

सिर पर गिरा पहाड़, तो फरयाद क्या करे !

रात को बात ही बात में मैंने मामी से जिक्र करते हुए कहा—“मामी, मेरे यहाँ आने का मकसद तो हल न हुआ।”

मामी ने कहा—“अच्छा, कल शाम के वक्त करीब ६ बजे दरबार साहब में आना; मैं उसे साथ ले कर आ जाऊँगी, तुम अपने मन की मुराद पूरी लेना।

४

किसी तरह अगली शाम हुई, करीब साढ़े पाँच जब मैं दरवाजे पर ताँगे के इंतजार में खड़ा था, मैंने देखा, कि हमारे दरवाजे के आगे एक ताँगा आ कर खड़ा हुआ। मैंने सोचा, शायद मामी उसे ले कर यहाँ ही आ गई हैं। मैं आगे बढ़ा, पर उस पर की सवारियों के देखते ही मैं चीख पड़ा। मेरे कलेजे पर साँप-सा लोटने लगा ! उस ताँगे पर से मेरे भाई प्रेम तथा भाभी साहबा उतर रही थीं !!

उन्होंने मुझे देखते ही कहा—“कैसी अच्छी बम्बई की सैर है, मुझे नहीं मालूम था, कि अमृतसर भी बम्बई का एक मुहल्ला है !”

मैं भेंप गया, पर शर्म मिटाने के लिए कहा—“हमारे टिप्प ने बम्बई न जाकर पञ्जाब आना निश्चित किया, इसलिए यहाँ आ गए ।”

“हो सकता है; हमारी भी शादी हुई है, और हमने भी इसी तरह की शरारतें की हैं। पर यह तो कहो, कि अपने मकसद में कामयाब हुए या नहीं ।”

मैं चुप रह गया। भाभी ने कहा—“अच्छा, लाला ! घबराओ नहीं, मैं उसका इन्तजाम कर दूँगी ।”

५

शादी के बाद जब मैंने बीबी से इसका जिक्र किया, तो वह बोली—“फज़ीहत तो आपकी अच्छी हुई थी। खैर, आपने तो मुझे नहीं देखा था, पर मैंने आपको जरूर देख लिया था ।”

मैं मुस्करा कर रह गया !



मैं सम्पादक !

मैं—सम्पादक !

जी हाँ, मैं भी 'भूतपूर्व सम्पादक' हूँ ! यह तो ठीक है कि मेरे अखबार का एक ही अङ्क निकला था.....। लीजिए तमाम बात बतलाए ही देता हूँ ।

मेरे एक दोस्त थे; नाम—समझ लीजिए 'शूशू बाबू' । आप समझ गए होंगे, कि नाम असली नहीं है ।

हाँ, तो एक दिन मैं कलम-कागज लिए झुक मार रहा था, कि आ पहुँचे । मैंने देखते ही कागज खिसका दिया ।

शूशू बाबू में एक विशेषता थी । वह सदा नई से नई स्कीम बना कर लाते थे रुपया कमाने की; बिल्कुल पक्की स्कीम ! सो उस दिन भी वह आकर दन से मेज़ पर बैठ गए ।

मैंने कहा—“भई, मेज़...।”

“ऊँह” —उन्होंने कई बार मेज़ को चरचरा कर कहा—जाने भी दो । अगर तुम मेरी बात मानो, तो हजार रुपए की मेज़ पर बैठ सकते हो !

“मेज़ पर बैठ सकता हूँ !”

“यानी मेज़ तुम्हारे आगे आ सकती है !” मैं सब बात चुपचाप सुनता गया। लाचारी थी। स्कीम थी एक अखबार निकालने की !

शूशू ने कहा—“यह क्या दुनिया-भर के लिए तुम लिखा करते हो ! मज्जा तो तब है, जब लोग तुम्हारे लिए लिखें !”

मुझे ध्यान आया उन छोटी-छोटी छपी स्लिपों का, जिन्हें बिलकुल बेतकलुफी से सम्पादक लोग मेरे लेखों के साथ लगा कर वापिस भेज देते थे। किसी में वह अपनी असमर्थता पर अफसोस जाहिर करते थे, और किसी में जगह की कमी का रोना रोते थे ! समझ में नहीं आता कि ऐसे नालायक लोग—जिन्हें इस प्रकार की चिट्ठियाँ छाप कर रखनी पड़े—क्यों सम्पादक बन जाते हैं, और बन जाने पर फिर अचल क्यों बने रहते हैं !

खैर, मेरे दोस्त, शूशू, की खींची हुई तस्वीर बड़ी मनो-मोहक थी। बढ़िया-सा ऑफिस, घण्टी, अर्दली, सब कुछ। लेखों, कहानियों का ढेर...और मैं; जी हाँ मैं ही, उनमें से, जिसे जी चाहे...ओह !

हृदय बैठ-सा गया।

“पर शूशू,”—मैंने कहा—“भइया, बड़ा रुपया लगेगा। और जो अखबार न चला तो ?”

“न चलने का क्या अर्थ ?”—उसने कर्माया “भागेगा सरपट ! भई, मकान, कर्नीचर, नौकर सब को तो महीने के बाद ही रुपया देना पड़ता है। रहा थोड़ा-सा खर्च रोजाना का, सो वह एजेण्टों की पेशगी से चल जायगा।”

सच मानिए, मेरे शरीर में स्फूर्ति पैदा हो गई। खून में गर्मी की मात्रा बढ़ गई !

“न चलने के क्या मानी, आप ही बताइए !”

आखिर एक साप्ताहिक निकालने की ठहरी। मैं बड़ी गम्भीरता पूर्वक ऑफिस में जा कर बैठा। अर्दली का सलाम लिया, ज़रा सिर झुका कर।

उस दिन, एक युगान्तरकारी पत्र का जन्म हुआ। और मैं...मैं...कमरे के बाहर छोटी-सी तख्ती पर लिखा जो था—‘सम्पादक’ वही था मैं !! दो-एक दिन बाद ही मुझे एक आवश्यक कार्य से बाहर जाना पड़ा। काम था बड़ा आवश्यक, इसलिए जाना ही पड़ा, और लौटने में भी काफ़ी देर होने की सम्भावना थी। मुझे तो घबराहट थी, पर शूशू ने छाती ठोक कर कहा—“ओह ! तुम जाओ, मैं सब कर लूँगा। बिलकुल !”

मैं ज़रा हिचकिचाया—“पर, सम्पादकीय...?”

“वह तुम लिख कर रख जाओ, अगर चाहो तो।”

बात ज़रा ओछी-सी थी, पर मैंने सम्पादकीय लिख ही डाला। बिलकुल, लाजवाब ! बेजोड़ !!

धीरे-धीरे खिसकती हुई पहिली तारीख आई। मैंने शहर के छहों एजेण्ट दूँद डाले, पर मेरा अखबार न मिला ! आखिर स्टेशन पर हॉलर के यहाँ देखा उसे—ऊपर कवर पर, देखा, एक सिनेमा के एक्टर महोदय आँख मिचका कर जीभ निकाल रहे थे। कैसा बेहूदापन था ! यह शूशू भी.....!! और तस्वीर के नीचे छपा था—सम्पादक, ...और 'सम्पादक' के नीचे मेरा नाम !!

मैंने जल्दी से इधर-उधर देखा। कम्बख्त ने सम्पादक का नाम किस बेमौक़े छपा ! मालूम होता था, मानो ऊपर की बेहूदा तस्वीर सम्पादक महोदय की ही हो !

मैं लौट आया।

सूट, टाई से लैस मैं पहुँचा अपने दफ़तर, लेकिन वहाँ विलकुल सन्नाटा था ! अन्दर घुस कर देखा, अखबारों का अम्बार लगा था। विलकुल ठीक। इतनी माँग थी हमारे अखबार की ! तब तो.....

अन्दर बढ़ कर देखा, शूशू चीड़ के बक्स पर बैठा था, परेशान-सा। सच ही तो, बेचारे को बड़ा काम करना पड़ा होगा।

“शूशू !” मैंने कहा।

“ओह ! तुम !!”

कुछ अधिक प्रसन्नता न दिखाई थी उसने। खैर !

“यह सब,” मैंने ढेर की तरफ इशारा करके कहा,—“शायद नया अङ्क है।”

शूशू ने एक उसाँस ले कर कहा—‘पहिला ही है।’

मैं हैरान था। इतने में बाहर धमाके की आवाज़ सुनाई दी। एक लड़का एक पार्सल लिए अन्दर आया, और धड़ाम से उसे डाल कर चल दिया।

मेरी हैरानी देख कर शूशू ने कहा—“देख क्या रहे हो, एजेंटों के यहाँ से वापिस आ रही हैं प्रतियाँ !”

“कितनी कॉपियाँ बिकीं ?” मैंने पूछा।

“ग्यारह।”

मैं चुप। कहता भी क्या ?

“सुनते हो, भई”—शूशू ने सहसा कहा, “तुम्हारा देहात वाला मकान कहाँ है ?”

“क्यों ?”

“वहाँ चलना पड़ेगा एक दम... ! कागज़ वाले का, प्रेस का, मकान का... देना है न...।”

कुछ देर चुप रह कर उसने फिर कहा—“बड़ा बेबकूक देश है, भइया ! मैंने कैसे-कैसे लेख, कैसे-कैसी कविताएँ...।”

बात काट कर मैंने पूछा—“लेख कहाँ से मँगाए थे ? किन-किन के ?”

शूशू ने मुस्कुरा कर कहा—“उसमें तो मैंने कमाल ही कर दिया था। एक बार ही साल-भर के लेख इकट्ठे कर लिए थे,

और बिलकुल मुफ्त में !! बस एक दिन शहर के तमाम अखबारों के दफ्तरों की रद्दी की टोकरियाँ खरीद ली थीं।”

सच जानिए, जी में आया कि कम्बख्त के एक हाथ दूँ कस के। पर चुपचाप हाथ पकड़ कर कहा—“चलो !”

और वह फिर भी यही कहता है कि इस मुल्क के आदमी ही बेवकूफ हैं !

ऐसी सम्पादकी की थी मैंने !!



रिफॉर्मर

“मारा समाज क्यों नहीं सुधरता ?” क्योंकि इसके रिफॉर्मर लड़कियों के मोहसिन और लड़कों के बाप होते हैं।”

मेरे ससुर जी भी अपनी लड़की की शादी के पहिले एक् रिफॉर्मर थे। दहेज के सख्त मुखालिफ और नई तहजीब के जानी दुश्मन ! शादी-विवाह के अवसरों पर बेजा रसूमात और फिजूलखर्ची को फूटी आँखों भी न देख सकते थे।

पिता जी पर तो उन्होंने ऐसी मोहिनी डाली, कि मेरी शादी बिला किसी पशोपेश के तुरन्त मन्जूर कर ली गई। पिता जी ने कहा था—“जब आपने लड़के को लड़की के लिए पसन्द कर लिया, तो लड़की जरूर अच्छी होगी। आखिर आप भी तो दोनों की जिन्दगी के इस मसले को खूब समझते हैं।” मेरी होने वाली गृहिणी की फोटो बिना देखे ही वापस कर दी गई। शराफत का पूरा-पूरा इस्तेमाल किया गया। ससुर जी ने शायद इसी को गनीमत समझा और बिना कुछ कहे-सुने फोटो जेब में रख ली।

दूसरे ही महीने मेरी शादी बड़ी धूम-धाम से हुई। पिता जी ने बड़ी सावधानी से काम लिया। फिर भी काफी हौसला दिखाया। ससुर जी आदि से अन्त तक रिफॉर्मर ही बने रहे।

श्यामा मेरी अर्द्धांगिनी बन कर आई। अपनी कमजोरी क्यों छिपाऊँ, उसे देख कर मैंने अपनी किस्मत ठोक ली। आप ही आप एक आह मुँह से निकल गई। मगर मैं धार्मिक वातावरण में पला था, तुरन्त ही अपना कर्त्तव्य याद आया। श्यामा को मैंने गले से लगाया; मैं उसका हो गया, वह तो मेरी थी ही।

२

मैं श्यामा को पहिली बार बिदा कराने ससुराल गया हुआ था। ज्यों ही मेरा ताँगा कोठी के सामने रुका, साले और सालियों ने दौड़ कर मेरा स्वागत किया। ससुर जी, सास जी; सभी वहाँ नज़र आई। सबके सब अच्छे-अच्छे वस्त्र पहने थे। लड़के सूट पहने ऐंठते फिरते थे। लड़कियाँ जॉर्जेट की साड़ियों में उभरी पड़ती थीं। मैंने छिपी नज़रों से श्यामा की तलाश की; मगर वहाँ वह न दिखाई दी।

सास जी ने मुझे सोफे पर बिठाते हुए कहा—“अच्छे समय पर आए भैया, हम सब तो तुम्हारी राह ही देख रहे थे।”

ससुर जी ने उनकी तरफ़ देखा। बोले—“इनको भी साथ लेती चलो।” मेरी समझ में कुछ न आया। मैंने पूछा—“कहाँ?”

सास जी हँसी। “हाँ, हाँ, इन्हें तो चलना ही पड़ेगा। सरहज तो इन्हीं की पसन्द की होनी चाहिए।”

अब मैं समझा। बातें हो ही रही थीं, कि मेरी छोटी साली ने एक फोटो ला कर मेरे हाथ में रख दी। यह एक कुँआरी लड़की की तस्वीर थी। मैं शरमा-सा गया और चाहते हुए भी उसकी तरफ न देख सका। साली ने ताली बजा कर कहा—
“बाह जीजा जी, आप शरमाते क्या हैं? देखिए यह हमारी भाभी होने वाली हैं!”

साले साहब अंगरेज बने बैठे थे। उनकी माँ ने कहा—
“भय्या तस्वीर तो बहुत अच्छी है, मगर (लड़के की तरफ इशारा करके) मोहन कहता है, कि इसका कुछ एतबार नहीं। खास कर रंग का पता, तो चल ही नहीं सकता।” मैं चुप था।

ज़रा देर बाद सब ने मिल कर खाना खाया। फिर सबके सब लड़की देखने के लिए रवाना हुए। मुझसे भी बहुत कहा गया। सालियों ने खुशामदे कीं। साले साहब ने अंगरेजी में ज़िद की। मोटर बड़ी देर तक इन्तज़ार में रुकी रही, लेकिन मैं न गया।

जब सब चले गए, तो मैं आकर कमरे में लेट गया। मेरे दिमाग में एक उलझन थी। एकाएक श्यामा मुस्कुराती हुई आई। मैंने पूछा—“तुम नहीं गईं?”

वह बोली—“मम्मी बहुत कहती रहीं, मगर मुझे यह तरीका कुछ पसन्द नहीं है। और फिर मैं ही कौन बड़ी

सुन्दर हूँ। यह कह कर वह फिर मुस्कुराने लगी। फिर बोली—
“और भैया भी ती फटे ईसाई-से लगते हैं।”

३

शाम होते-होते यह लोग लौटे। कमरे के भीतर से मैंने सुना, सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मोहन साहब कह रहे थे—
“देखा मम्मी, कैसी काली है। मैं तो उसे देख कर डर गया।”

ससुर जी बोले—“लाला जी ने खासा धोका दिया था। अगर देख न लेते, तो मोहन को ज़िन्दगी भर रोना पड़ता।”

माँ को यह बात ज्यादा पसन्द न आई। बोलीं—“काली है तो क्या हुआ, हमारे मोहन से उसका रंग फिर भी साफ़ है और स्वभाव भी बड़ा अच्छा जान पड़ता है।”

छोटी साली, जो खुशी से उछली पड़ती थी, बोल उठी—
“मम्मी, भाभी ने मुझे अपने हाथों सन्तरा खिलाया। मुझे तो बड़ी अच्छी लगती है।”

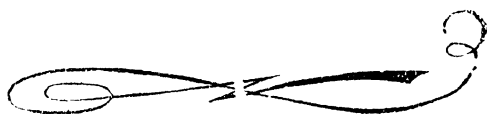
छोटे साले को बहिन की यह बात अच्छी न लगी। रुष्ट हो कर बोले—“तुम्हीं को क्या, मुझे नहीं खिलाया? मैं तो मारे शर्म के खाता ही न था। उन्होंने ज़बरदस्ती मेरा मुँह खोल कर सन्तरे की फाँक रख दी थी।”

मैं भी बाहर आ गया था। देखा, मोहन साहब ऐसा मुँह बनाए थे, जैसे काले साहब ने चिरायता पिया हो। एक हाथ पतलून की जेब में था, दूसरे से माथे पर गुस्सा उतार रहे थे।

ससुर जी मेरी तरफ मुखातिब हुए—“मिस्टर किशोर, लड़की हमें पसन्द नहीं आई। रंग अच्छा नहीं है !”

मैं चुप रहा। बोलता भी क्या ? उनके यहाँ कॉकेशस के जलवे थे ! वह फिर बोले—“और फिर चार हजार से ज्यादा देने को भी तो नहीं कहते !”

मैंने दिल में कहा—बेशक यह उनका दूसरा जुर्म है !!



मिस्टर टॉम

मिस्टर टॉम ने कमरे में पैर रखते ही अपना हैट मेज पर फेंका और जोर से अपने नौकर चारली को आवाज देते हुए दूसरे कमरे में गए। वहाँ से आप चारली को आवाज देते हुए वापस आए। बेचारा चारली बबड़ा गया, कि आज साहब को क्या हो गया, जो इस तरह चिल्ला रहे हैं! वह भागता हुआ साहब के पास पहुँचा। टॉम साहब चारली को देखते ही एक साँस में कहने लगे—“क्यों, कहाँ था? बहरा हो गया? मेरा चिल्लाते-चिल्लाते गला पड़ गया, सुन, जल्दी सुन, मैं एक बहुत जरूरी काम से बाहर जा रहा हूँ। जल्दी से मेरा असबाब ठीक कर दे, बहुत जल्दी। देख, गाड़ी को सिर्फ एक घण्टा रह गया है। अरे, जल्दी कर, जल्दी।”

इतना कह कर टॉम साहब ने एक सूट-केस खोला, उसके कपड़े निकाल कर चारपाई पर डाल दिए और दूसरे ट्रंक से दो सूट निकाल कर उसमें रख लिए। दो-तीन कमीजें, दो कॉलर, टाई वगैरह रखने के बाद क्रीम, पाउडर का नम्बर आया; जैसे ही

एक शीशी उठाई वह हाथ से छूट गई और चूर-चूर हो गई। आपने दूसरी शीशी उठाई और टूट्ट की तरफ भागे। इत्तफाक से आपका पैर फिसल गया, और आप चारों खाने चिन गिर पड़े। चारली, जो विस्तर बाँध रहा था, साहब को गिरता देख, फौरन दौड़ कर आया और उसने साहब को उठा कर खड़ा किया। टॉम साहब ने जल्दी-जल्दी किसी तरह असबाब ठीक किया और स्टेशन पहुँचे। वहाँ उन्होंने जल्दी से टिकट खरीदा और एक डब्बे में जा बैठे। जल्दी में वह, बजाय तीसरे दर्जे के, दूसरे दर्जे में जा बैठे। डब्बा खाली था, उन्होंने इतमीनान से अपना असबाब एक तरफ रख दिया और खिड़की के पास बैठ कर सोचने लगे, कि अपनी भावी ससुराल पहुँच कर क्या करेंगे। अभी बेचारे कोई बात तय भी न कर पाए थे, कि उनके विचार एक टिकट-चेकर साहब ने टिकट माँगते हुए भंग कर दिए। टॉम साहब ने टिकट निकाल कर टिकट-चेकर साहब के हवाले किया। टिकट-चेकर ने टिकट देख कर कहा—“जनाब आपके पास तीसरे दर्जे का टिकट और आप बैठे हैं दूसरे दर्जे में। अब आपको दूसरे दर्जे का किराया देना पड़ेगा।”

टिकट-चेकर की बात सुन कर टॉम साहब बोले—“यह डब्बा खाली था, इसलिए बैठ गया, अगर कोई बैठा होता, तो न बैठता। आखिर, डब्बा खाली ही तो जा रहा था।”

टिकट-चेकर साहब बोले—“जनाब, अगर ऐसी ही बात

होती, तो सब लोग, जिसको जहाँ जगह मिलती बैठ जाते। फिर इन दर्जों की क्या जरूरत होती? एक तो जुर्म किया, दूसरे हमीं को उल्लू बनाते हो।”

टॉम साहब ने कहा—“जनाब, नाराज न हूजिए, अगर आप इसको जुर्म समझते हैं, तो लीजिए मैं इस डब्बे से उतर कर दूसरे में चला जाता हूँ।”

इतना कह कर टॉम साहब ने सूट-केस उठाया और दरवाजे की तरफ बढ़े। जैसे ही उन्होंने दरवाजा खोला, टिकट-चेकर ने जोर से चिल्ला कर करा—“क्या मरना है, देखते नहीं गाड़ी चल रही है।”

साहब ने जो सुना, कि गाड़ी चल रही है, तो उनको होश आया, और जो जल्दी मुड़े, तो पैर फिसल गया! पैर फिसलते ही वे टिकट-चेकर से जा टकराए। टिकट-चेकर साहब इस धक्के को बरदाश्त न कर सके और वह भी सीट पर औंधे मुँह जा पड़े। इतने में गाड़ी स्टेशन पर आ कर खड़ी हो गई। इधर टिकट-चेकर ने उठ कर फौरन टॉम साहब को मग इनके सूट-केस के बाहर ढकेल दिया। टॉम साहब फुटबॉल की तरह प्लेटफॉर्म पर जा गिरे। फिर किसी तरह जल्दी से उठ कर एक डब्बे में पहुँचे। उस डब्बे में इतनी भीड़ थी, कि बेचारे टॉम साहब को खड़ा होना भी मुश्किल हो गया। उनके पीछे भी दो-तीन आदमी खड़े थे। गाड़ी चलते ही टॉम साहब पीछे वालों पर गिर पड़े। उनके गिरते ही पीछे वालों ने उनको

जोर से धक्का दिया। इस धक्के से टॉम साहब अगली सीट के मुसाफिरों पर जा गिरे। उन आदमियों ने इनको पीछे की सीट पर उछाल दिया। पीछे वाले भला क्यों वरदाशत करते, उन्होंने टॉम साहब को फिर आगे ढकेला। फिर क्या था, इनका वॉलीबॉल बना कर मैच शुरू हो गया ! आगे वाले इनको पीछे ढकेलते और पीछे वाले आगे। इस फेंका-फेंकी में इनके कोट-पतलून ने जवाब दे दिया। कोट की जेबें फट गईं। पैण्ट भी साबित न बचा। टोप महाशय तो इतने नाराज हुए, कि आपने फौरन डब्बे से निकल कर बाहर का रास्ता लिया। बेचारे टॉम का बहुत बुरा हाल था। इस फेंका-फेंकी में उनकी हड्डी-हड्डी में दर्द होने लगा था। इतने में स्टेशन आ गया। किसी तरह जान बचा कर टॉम साहब भाग खड़े हुए। डब्बे से उतरते ही उनको मालूम हुआ, कि इसी स्टेशन पर उनको उतरना भी था। टॉम साहब ने ठण्डी साँस ली और स्टेशन से बाहर आ कर एक बैलगाड़ी किराया पर की। वे उसमें जा बैठे। दर्द से बेचारे का बुरा हाल था, इसलिए वे कोट उतार कर और सिरहाने रख कर लेट गए। धक्का खाते-खाते वे बहुत थक गए थे, इसलिए लेटते ही सो गए। पर यकायक चें-चें की आवाज से चौंक पड़े और इस जोर से उछले, कि आप गाड़ी के बाहर जा गिरे। गाड़ी-वाले ने फौरन गाड़ी खड़ी कर के पूछा—“साहब, क्या बात हुई ?”

टॉम साहब बोले—“अरे, यह गाड़ी चें-चें क्या करती है !”

गाड़ी वाला बोला—“हज़ूर, पहिया बोलता है, कच्ची सड़क है।”

टॉम साहब फिर गाड़ी में जा बैठे। उनको मालूम था, कि उनको कहाँ जाना है, वहाँ रात के आठ-नौ बजे से पहिले नहीं पहुँचेंगे, इसलिए, वे फिर लेट गए और फिर उन्हें नींद आ गई। इधर अंधेरा हो गया। गीदड़ों ने आवाज़ करना शुरू कर दिया। टॉम साहब गीदड़ों की आवाज़ सुन कर जग गए। उन्होंने पहिले कभी गीदड़ों की आवाज़ न सुनी थी। चारों तरफ से उन्होंने ‘हुआँ-हुआँ’ की आवाज़ें जो सुनीं, तो उनकी रूढ़ फटना हो गई और वे उठ कर उतरने लगे और घबड़ाहट में गाड़ी वाले के ऊपर जा गिरे। गाड़ी वाला इस अचानक हमले को न सँभाल सका और गाड़ी के नीचे जा पड़ा। टॉम साहब भी उस पर जा पड़े। बेचारा गाड़ी वाला समझा, कि शायद साहब का दिमाग खराब हो गया है, और मुझे मार डालना चाहते हैं। वह उठ कर भागा। टॉम साहब तो बुरी तरह डरे हुए थे, वह भी उसके पीछे भागे और कुछ दूर पर उसको पकड़ कर उससे चिपट गए। गाड़ी वाला लगा चिल्लाने—“साहब, मुझे मत मारो, मेरा क्या क्रसूर है, मुझे छोड़ दो।”—बेचारे को क्या मालूम, कि साहब की यह हालत गीदड़ों के कारण है। इधर टॉम साहब गाड़ी वाले से बुरी तरह चिपटे जा रहे थे, उधर, इत्तफाक की बात है, एक गीदड़ टॉम साहब के पीछे बोल उठा। उसकी आवाज़ सुन कर टॉम

साहब गाड़ी वाले के कंधे पर जा चढ़े। गाड़ी वाला बेचारा कैसे यह बोझ सँभालता ? वह आँधे मुँह गिर पड़ा, टॉम साहब थे उसके ऊपर ! गाड़ी वाला टॉम साहब को धक्का दे कर भागा, पर उनके हाथ में उसकी धोती आ गई। इतने में टॉम साहब की निगाह एक गीदड़ पर जा पड़ी, जो कुछ ही दूर पर खड़ा था। उसको देखते ही टॉम साहब उछल कर फिर गाड़ी वाले से जा चिपटे और गीदड़ की तरफ इशारा करके बोले—“व...ह...व.....ह आ गया !”

गाड़ी वाले ने गीदड़ को जब देखा, तो उसकी समझ में आ गया, कि साहब गीदड़ों ही से डर कर मेरी यह हालत कर रहे थे। किसी तरह समझा-बुझा कर गाड़ी वाला टॉम साहब को गाड़ी पर लाया; पर साहब ने गाड़ी वाले से अलग बैठना मुनासिब नहीं समझा और बिलकुल उससे सट कर बैठे। जैसे-तैसे टॉम साहब रात को नौ बजे मिस्टर पीटर के यहाँ पहुँचे। पीटर साहब इनको बैठक में ले गए, और वहाँ अपनी एक कुरसी पर बैठने का इशारा किया। गलती से टॉम साहब दूटी हुई कुरसी पर जा बैठे। उनके बैठते ही कुरसी उलट गई और वे सर के बल गिरे। मिस्टर पीटर ने उनको किसी तरह दूटी कुरसी से निकाला। टॉम साहब ने बड़ी बेतल्लुकी से माफ़ी माँगी और बिछे हुए तख्त पर बैठ गए।

खाना खिलाने के बाद मिस्टर पीटर ने टॉम साहब से आराम करने के लिए कहा और सुबह बात-चीत करने को

कह कर अन्दर चले गए। इधर टॉम साहब तख्त पर लेटे और लेटते ही ज़रा देर में खर्राटे भरने लगे। बेचारे शायद घण्टे भर ही सो पाए होंगे, कि खटमलों से परेशान हो कर उठ बैठे और तख्त छोड़ कर खड़े हो गए। खड़े होते ही उनकी नज़र चमकती हुई दो आँखों पर पड़ी। उनको क्या मालूम, कि मोसी बिल्ली चूहों पर ताक लगाए बैठी है। नज़र पड़ते ही उनको कँपकँपी आ गई और यकायक उनके मुँह से चोख निकल गई। इधर मिसेज़ पीटर ने जो चीख सुनी, तो वे पीटर साहब को जगा कर बोलीं..... “जल्दी उठो, मिस्टर टॉम के कमरे में चोर घुस आया है, मैं बड़ी देर से खट-पट सुन रही हूँ, और अभी-अभी वह चिल्लाए भी हैं। इतना सुनते ही पीटर साहब डण्डा ले कर उस कमरे में पहुँचे। दरवाज़ा खुलते ही बिल्ली उछल कर टॉम साहब के पास से भाग गई। उसके भागते ही टॉम साहब और जोर से चिल्लाए—“वह भागा !”

इधर मिस्टर पीटर जैसे ही कमरे में घुसे वैसे ही टॉम साहब के टकराते ही मिस्टर पीटर ने चोर समझ के टॉम को कस कर एक डण्डा रसीद किया ! टॉम साहब डण्डा खाते ही सड़क की तरफ़ का दरवाज़ा खोल कर भाग खड़े हुए और ऐसा भागे कि सीधे स्टेशन जा कर साँस ली। जब स्टेशन पहुँचे, तो उनका बुरा हाल था। वहाँ पहुँच कर उन्होंने क्रसम खाई कि अब कभी गाँव में शादी करने का नाम नहीं लूँगा।



चिट्ठा

मुझे पान से बेहद चिट्ठा है। आप भले ही चाब से पान खाते हों; परन्तु वह मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं आता। कोई ऐसी बात नहीं है, कि वह मुझे खाने में खराब लगता हो; परन्तु पान खाया किस तरह जाता है, यह मैं नहीं जानता। पान खाया नहीं, कि बच्चों की लार की तरह लाल-लाल मुँह से चू पड़ता है। गालों पर खून-सा बहने लगता है, और कत्थे के दाग कपड़ों पर साफ नज़र आने लगते हैं। मैंने बहुत कोशिश की, कि पान खाना मुझे आ जाय, परन्तु आज तक यह कला मैं न सीख सका।

मैं सोचता था, अगर आज नहीं, तो कल मैं ज़रूर पान खाना सीख जाऊँगा। इसी आशा से मैं निरन्तर कोशिशें करता रहा। दोस्त उल्लू बनाते, कहते—“देखना भाई, ज़रा गणेश को, कैसा अच्छा मुँह बनाया है!” यह कह कर वे ठहाका मार कर हँस देते। मैं क्या करता, चुपचाप भेंप मिटाने खड़ा रह जाता। मुझे समझते देर न लगती, कि पान मुँह से चू पड़ा है। इस

कला के पीछे मैं इस कदर पड़ा, कि एक दिन यों ही बैठे-बैठे क्रसम खा ली; कि बिना इसे सीखे दम नहीं लेंगे; चाहे लोग हमें कितना ही क्यों न बनाया करें !

इस के रिहर्सल के लिए हमने रात का वक्त ज्यादा अच्छा समझा। एक दिन रात को खा कर सो रहे। सवेरे उठते ही श्रीमती जी मुझे देख खिलखिला कर हँस पड़ीं। मैं सोच रहा था, अजीब औरत है ! सो कर उठा नहीं, और इसने हँसना शुरू कर दिया; और वह भी मुझे देख कर। बाहर दोस्त बनाया करते हैं, और घर में यह मुझसे उलझी रहती हैं। गोया सारा दिन ही बनते कटता है। आफत है—दोनों तरफ दुधारे हैं ! इस ओर कुआँ है, उस ओर खाई है ! क्या बताऊँ, मुझे उस वक्त उनके हँसने पर बड़ा गुस्सा आया; दिल में आया; कि पकड़ के भोंटा पटक दूँ यहीं पर; परन्तु यह सोच कर, कि ऐसा करने से निर्जला एकादशी मनाना पड़ेगी, गुस्से को पी गया। अभी मेरे सोने की खुमारी भी दूर नहीं हुई थी; पर मुझे बनाने का उपक्रम जारी हो गया। भगवान् खैर करे, पूरा दिन कैसे कटेगा ?

इस समय मैं वहीं पर खड़ा-खड़ा सोच रहा था, कि कहीं रात-भर में भगवान् ने मेरा स्वरूप तो नहीं बदल दिया। कान को जगह नाक और मुँह की जगह सिर तो नहीं हो गया ! मैंने टटोल कर बखूबी देखा, तो वे अपनी-अपनी जगह पर

सही-सलामत थे। मेरा टटोलना देख कर उनके हँसने की स्पीड और तेज हो गई ! मैं बड़ी हैरत में पड़ा ! आखिर मुझे हो क्या गया है, जो श्रीमती जी इतनी जोरों से मेल ट्रैन की तरह, बिना रुके ही, हँसती चली जा रही हैं। मैं बोला तो ज़रा भी नहीं, क्योंकि मेरी समझ में कुछ आ ही नहीं रहा था, कि आखिर बात क्या हो सकती है ? मैं गौर से उनकी तरफ़ घूर ज़रूर रहा था। श्रीमती जी वहाँ से भाग निकलीं। मैंने जी-भर कर साँस ली। मैं बड़ा खुश हुआ, कि चलो छुट्टी मिली। परन्तु एक ही मिनिट बाद मैं देखता हूँ, कि वे आइना लिए चली आ रही हैं। बहुत भल्लाया। वे पहुँचते ही बोलीं—“ज़रा अपनी सूरत तो देखिए आइने में।” मैंने आइना उनके हाथ से छुड़ा लिया और गौर से देखने लगा। उसमें अपनी सूरत। मुझे ऐसा लगा, जैसे आइने में किसी और की सूरत हो परन्तु वह किसी और की हो कैसे सकती थी, जब मैं खुद देख रहा था। वह तो मेरी ही होनी चाहिए। मेरी सूरत पर उस वक़्त मैंने देखा, कि गालों के सपाट मैदान में चाइनीज़ लेटरों की शकलें बनी हुई थीं। कहीं से नदी निकली थी और कहीं जाकर गिर गई थी। अजीब सूरत बनी हुई थी। ऐसा लगता था, मानों किसी रीछ ने सारा मुँह अपने पंजे से खँरोच लिया हो ! यह सब पान की कृपा थी। सोते समय यहाँ-वहाँ बह गया था। अब मेरी मोटी अकल में अच्छी तरह आ रहा था, कि श्रीमती जी उठते ही क्यों हँस पड़ी थीं। मुझे भी हँसी आए बिना

न रही, और श्रीमतीजी ने दिल खोल कर मेरा साथ दिया, क्योंकि ऐसी बातों में उनका मन खूब लगता है ।

तब से पान से मुझे बेहद चिढ़ है, या यूँ कहिए, कि हो गई है । पाँच रुपए की शीरनी बाँट कर मैंने अपनी क्रसम वापस ले ली है; और उस दिन से तो दिमाग में यही रहता है, कि पान कभी नहीं खाएँगे, और जहाँ तक बनेगा, उससे दूर रहेंगे ! आजकल मैं अपने दोस्तों के यहाँ भी कम बैठने-उठने लगा हूँ, क्योंकि डर लगता है, कहीं पान खाने को न कह दें, और मुझे वेकार बनना पड़े । वजह यह, कि दोस्तों के सामने 'नहीं' तो चलती नहीं । बाज़ार जाता हूँ, अगर कहीं पान की दूकान नज़र आ गई, तो देह में सिहरन-सी पैदा हो जाती है, और देखने लग जाता हूँ अपने चारों ओर, कि कहीं कोई पहिचान का तो नहीं है । क्योंकि जान-पहिचान वाले अक्सर कहने लग जाते हैं—“आइए, पान खा लीजिए तब चलेंगे ।” और अगर कभी किसी ने बुलाया, तो वहाँ से ऐसा सरक जाता हूँ, जैसे सुना ही न हो ।

दुनिया में मैं आज अनुभव कर सका हूँ, कि जिस बात से घृणा करो, वही सामने टाँग पसारे पड़ी नज़र आती है । मैं जितना ही पान से घृणा करता हूँ, उतना ही मुझे घेरे रहता है । मैं चिढ़ कर कभी-कभी तो भगवान् को भी कोस बैठता हूँ, कि उसने पान ऐसी चीज़ बनाई क्यों ?

एक दिन की बात है। मैं अपना सफेद सूट पहिने साइकिल पर चौक-बाजार से गुज़र रहा था। मेरे आगे-आगे एक ताँगा जा रहा था। उस पर एक 'बटरफ्लाई', करीब उन्नीस-बीस साल की रही होगी, बैठी थी। कथई रंग की साड़ी, गौर वर्ण, सोने की झरिंग पहने, मुँह पर पाउडर लगाए, छल्लेदार बाल बनाए, चमकीला चुस्त ब्लाउज़ पहने थी, और उसके उन्नत उरोज उसकी खूबसूरती को दूना बढ़ा रहे थे। मैं तो फिसल पड़ा! एक टक देखने लग गया, उसकी ओर। भगवान् जाने, मेरी सूरत से उसे क्यों नफरत-सी हो गई, कि मेरा देखना उसे बिलकुल ही अच्छा नहीं लगा। उसने तुरन्त ही मेरी तरफ से अपना मुँह फेर लिया। मुँह फेरते वक़्त मैंने बखूबी देखा, उसका दाहिना गाल सूजा हुआ था।

मैं उसे देखने में इतना तल्लीन हो गया था, कि हज़ार कोशिशें करने पर भी मैं साइकिल ताँगे से आगे नहीं बढ़ा सका। एक मरतबा तो साइकिल ताँगे से चिपटते-चिपटते बची। मैंने अचानक उस लड़की को अपनी तरफ़ गर्दन मोड़ते देखा, और जैसे उस बे-शऊर को कुछ दीखा ही न हो, पच्च् से उसने मेरी तरफ़ थूक दिया। उसके थूक का माल-मसाला ठीक मेरे मुँह पर आ कर पड़ा! ईश्वर जाने, कि उस बदतमीज़ ने यह कुकर्म जान-बूझ कर किया था, या उसे सचमुच धोखा हुआ था। मेरे उपर थूक पड़ता देख, वह घबरा गई! ताँगा खड़ा हो गया। उतरते ही बोली—“I am extremely sorry.” इधर

मैं हृदय के आन्तरिक पट से खीझ रहा था । यह भी अजब शिष्टाचार है । किसी को मार दो, और कह दो 'Sorry'; बस उसका क्रसूर माफ हो गया ।

“माफ कीजिएगा, मैं देख नहीं सकी, बड़ी गलती हुई !”— कहते हुए उसने अपने ब्लाउज के परत से एक क्रीमती सेण्टेड रूमाल निकाला और मेरे मुँह का थूक पोंछ दिया । उसके चेहरे से मालूम हो रहा था, कि वह बहुत डर गई थी, कि कहीं मैं उसके ऊपर बिगड़ न पड़ूँ । क्योंकि किसी के ऊपर थूक देना मामूली बखेड़ा नहीं है ।

मैं बोला तो कुछ तहीं, एकटक उसकी तरफ देखता रह गया । वह सहम गई । मुझे गुस्सा कम तो नहीं आया; परन्तु क्या बताऊँ ? मैं एक स्त्री से सरे-बाज़ार उलझना भी नहीं चाहता था, फिर जब वह मेरी ओर विनयपूर्ण कातर दृष्टि से देख रही थी । उस 'बटरफ्लाई' की जगह अगर कोई आदमी होता, तो फिर समझ लीजिए, मैं उसका क्या करता ? बच्चा को वहीं उठा के पटक देता ! इतना तो मैं सब अपने जी में सोच रहा था; पर मुझे इसका खयाल ही न रहा, कि जिन लोगों ने उस स्त्री की बेजा हरकत देख ली थी, मेरे आस-पास खड़े हो कर मेरी खिल्ली उड़ा रहे थे । चौक बाज़ार था; काफ़ी भीड़ थी । मैं शर्म से सिर नहीं उठा सका, आप अनुमान लगा सकते हैं, कि मेरी उस समय क्या हालत रही होगी !

खैर, जो कुछ हुआ सो हुआ। मैंने उसे माफ़ कर दिया, महज उसके सरल स्वभाव और उसकी सुन्दरता के कारण। वरना मैं भी बड़ा टेढ़ा आदमी हूँ। अगर किसी से उलझ गया, तो फिर शर्म को बालाएँ-ताक रख देना हूँ।

हाँ, तो मैं उसका ताँगा छोड़ साइकिल पर चढ़ भेंप मिटाने के लिए ब्रू हो गया। चलते वक्त मैंने सुना—“माफ़ कीजिएगा !” मैं मुनी-अनमुनी करके आगे बढ़ गया। लौट कर देखने की भी हिम्मत न कर सका। अब मुझे याद आ रहा था, कि जब पहले-पहल मैंने उसको ताँगे पर देखा था, उसका गाल सूजा हुआ न था, बल्कि उममें पान दबा था, और अधरों पर लिपस्टिक नहीं, वरन पान की लाली थी। जो कुछ भी हो, उसका मेरे साथ जैसा भी बर्ताव रहा हो, मुझको वह बुरी नहीं लगी। हाँ, एक बात थी, अगर वह थूक पान मिश्रित न होता, तो मैं न बिगड़ता; परन्तु उसमें तो मुझे चिढ़ पैदा करने वाली चीज़ थी।

चौक से मैं बिल्ली की तरह दुम दबाएँ साइकिल पर भाग कर घर आया। मेरी श्रीमती जी मुझे दरवाज़े पर ही मिलीं। मैंने पहुँचते ही अपना क्रिस्सा सुनाना शुरू कर दिया। मुझे तो सेण्ट-परसेण्ट उम्मीद थी, कि वे इन बाक़यात को सुन कर हँसेंगी; परन्तु उनके शब्दों में आज सहानुभूति थी, वे मेरा साथ दे रही थीं; मेरे पक्ष में बोल रही थीं; यह मेरे लिए एक बड़े ताज्जुब की बात थी! वह एक दम तमक कर बोल उठीं—

“कौन थी वह कलमुहीं ? बताना तो मुझे कभी, हरामजादी का मुँह न नोच लिया, तो कहना । कौन बेहूदी थी वह, जिसने ऐसी बेजा हरकत आपसे की ?”

मैंने कहा—“जाने भी दो, अब बातें करने से क्या ? मैं तो उसे पहचानता नहीं, और फिर वह ऐसी लग रही थी, जैसे इस शहर की थी नहीं, क्योंकि सारा शहर तो मेरा जाना हुआ है ।”

“तभी तो उम्मेने ऐसा किया; परन्तु तुम उससे डर क्यों गए, उसकी जवान खींच लेनी थी । तुम भी बड़े डरपोक आदमी हो !”

“जी, तो मैं चौक घूमने गया था । सरे-बाज़ार भगड़ा मोल लेने नहीं !”

“क्या खूब ! अगर कहीं घर की औरत ऐसा कर डालती, तो न मालूम क्या करते ?”

“जाने भी दो !”—कह कर बातों का सिलसिला मैंने यहीं तोड़ दिया, और आगे वह भी न बोलीं । वह फिर जैसे सोते से जाग पड़ीं; बोली—“आज मेरी छोटी बहिन आई हुई हैं ।”

मैंने पूछा—“कब ?”

“आज ही और अभी पन्द्रह मिनट पहिले ।”

“वे हैं कहाँ ?”

“अन्दर कमरे में ।”

हम लोग इसी तरह बात कर रहे थे, कि अन्दर से मेरी साली साहेबा; याने वही 'वेशऊर' महिला, जिसने मेरे चेहरे पर थूका था, कमरे से निकल कर मेरी तरफ चली आ रही थीं। हम लोग दालान में खड़े थे। मुझे देखते ही वह ठिठक गई; कुछ झेप-सी गई। मैं समझ गया, उन्हें वही चौक बाजार वाली दुर्घटना याद आ गई है। यहाँ मैंने जीवट से काम लिया। आगे बढ़ के उन्हें 'नमस्ते' की। उन्होंने बहुत शर्माते हुए जवाब दिया। मैंने चुपके से अपनी श्रीमती जी के कान में कह दिया—“यही वह कलमुहीं है, जिसने मेरे ऊपर.....!”

“ठीक से सूरत याद है, कि नहीं; भूल करते होगे! आप की साली आपके साथ ऐसा नहीं कर सकती।” वह भी मेरे कान में ही बोलों।

“मुझे अच्छी तरह याद है। मैं भूल नहीं करता। ये हो वह महोदया हैं।”

अब तो क्या कहना था। श्रीमती जी इतने जोरों से हँसों, कि हमें उनके अचानक बस्ट होने पर झेपना ही पड़ा! मैंने कनखियों से देखा, उनकी बहिन भी मुस्कुरा रही थीं, क्योंकि उनके दिमाग में भी मामले की सूझ ठीक बैठी थी। मैं तो जल कर भुट्टा हुआ जा रहा था इन दोनों की हँसी और मुस्कुराहट पर। भगवान् जाने ये औरतें क्या बला होती हैं! अगर इन्हें मैं 'बम का मुहारा' कह दूँ, तो ज़रा भी आतिशयोक्ति नहीं है; क्योंकि जिस क्रूर बम लगातार फूट सकता है, ये लगातार

बोलती रह सकती हैं। उसी दिन से मैंने प्रतिज्ञा कर ली है, कि अपने वेवकूफ बनने की बात कभी न बताया करूँगा। उनको तो अपनी खुशकिस्मती समझना चाहिए, कि मैं अपने बनने की बातें बता दिया करता था। नहीं तो भला कौन उल्लू होगा, कि जो अपनी तौहीनी इस तरह स्वयं बयान करे। फिर उन्हें अगर हँसना ही है, तो हमारे पीठ पीछे हँसे, हमारे सामने क्यों ?

हमारी साली साहेबा के आ जाने से घर ज़रा ज्यादा रौशन हो गया है। हँसी के कव्वारे छूटते ही रहते हैं। एक कहावत है—‘दो मुल्लाओं के बीच मुर्गी हराम।’ वही हाल हू-बहू मेरा हुआ करता है। फिर मैं भी नहीं चूकता, जहाँ तक बनता है अपनी मुर्गी की एक ही टाँग पेश किया करता हूँ। फिर है भी तो वकीली दिमाग !

आप सबको ताज्जुब होगा, कि जब मेरी साली साहेबा मुझे बाज़ार में शुरू-शुरू ताँगे पर मिलीं, मैं उन्हें एक दम पहिचान क्यों न गया ? उसका सिर्फ़ एक सबब था। वह यह, कि जब मेरी और श्रीमती जी की शादी हो रही थी। अथवा यों कहिए, कि मेरी बरबादी का संस्कार सम्पन्न हो रहा था, साली साहेबा घर पर थीं ही नहीं। वे उस समय मेट्रीक्यूलेशन की परीक्षा में फँसी हुई थीं, जिससे उन्हें अवकाश ही न मिला कि हमारा गठ-बन्धन देख सकतीं !

फिर जब मैं गया, तब वे न मिलीं, और वे रहीं, तो मैं न गया। बाद मुद्दत के 'इन्ट्रोडक्शन' हुआ, वह भी बहुत भद्दे तरीके से !

साली साहेबा को मालूम हो गया कि मैं पान नहीं खाया करता। फिर क्या है, वह अक्सर मेरे सामने तश्तरी में पान ले आया करती हैं। मैं तो बौखला जाता हूँ, इनके इस दुस्साहस को देख कर, परन्तु क्या कहूँ, मेहमान जो हैं, फिर रिश्ता भी तो बड़ा ज़वरदस्त है, जिसके आगे मैं चूँ तक नहीं कर सकता ! मैं भी मुस्कुरा के रह जाता हूँ, और वह भी मेरे आगे आँखें नचाते हँसती हुई भाग जाती हैं। चिढ़ भी मधुर हो सकती है, अगर विढ़ाने वाली साली की तरह हो, या ऐसी ही कुछ !!



कॉलेज का स्वप्न

“यार कुन्दन, कोई कहानी सुनाओ। आज प्रोफेसर चैटर्जी नहीं आए हैं।”—सुरेन्द्र ने कहा।

“यार, तुम भी क्या बच्चों की-सी बातें करते हो! क्या तुम्हारा ‘नानी की कहानी’ का शौक अभी तक नहीं गया? चलो, लाइब्रेरी चल कर कुछ पढ़ें।”—कुमार ने कहा।

“अरे बैठा रह! बड़ा आया है लाइब्रेरी वाला! जब देखो तब पढ़ना! ज़रा जल्दी कहानी शुरू करो, व्यर्थ समय नष्ट करने से फायदा?”—सुरेन्द्र ने तपाक से कहा।

“ठीक है, ठीक है, कोई मजेदार कहानी होनी चाहिए।”—गुप्ता ने कहा।

“बड़े आए हैं कहानी सुनने वाले!”—कुमार ने कहा।

“तुमको सुनना हो तो सुनो, वरना रास्ता नापो!”—सुरेन्द्र ने ज़रा हाथ चमकाते हुए कहा।

“अच्छा, अच्छा,, इसमें लड़ने की कौन-सी बात है ? चलो टॉस कर लें ! बोलो कुमार—हेड लोगे या टेल ?”—कुन्दन बोला ।

“हेड !”—कुमार ने कहा ।

“देखो, देखो, टेल है ! अब कहानी ही होनी चाहिए, इसको सुनना हो सुने, वरना लाइब्रेरी जा कर भाड़ भोंके !”—सुरेन्द्र ने कहा ।

कुन्दन ने गला साफ़ करते हुए कहना शुरू किया—“आज मैं तुम लोगों को एक ऐसी कहानी सुनाऊँगा, जैसी तुम लोग रोज़ कॉलेज में देखते और सुनते हो । यहाँ पर तुमको कई ऐसे मन-चले लड़के मिलेंगे, जो पढ़ते नहीं, बल्कि... .”

“अरे, कहानी कहेगा, कि भूमिका ही बाँधेगा ?”—सुरेन्द्र बीच ही में बोल उठा ।

“दोस्त, आजकल कुछ कहने के पहले भूमिका बाँधने की जरूरत पड़ती है । तुम जानते नहीं, आजकल सभी बड़े-बड़े लोग कहेंगे थोड़ा, और भूमिका बाँधेंगे लम्बी ।”—कुन्दन ने कहा ।

“अरे भाई ! अभी तुम्हारी भूमिका खतम भी हुई, कि नहीं ?”—सुरेन्द्र ने कहा ।

सुन्दर ने अपनी कहानी शुरू की—“कुछ दिन पहले की बात है, कि :

“ ‘मिस्टर, रूम नम्बर २८ कहाँ है ?’

“ ‘ऊपर ही तो है। चलिए, मैं भी वहीं जा रहा हूँ।’

“ ‘तो क्या आप भो कस्टर्ड ईयर बायालॉजी में पढ़ते हैं?’

“ ‘लोग तो ऐसा ही कहते हैं।’

“ ‘मैं भी उसी में पढ़ती हूँ।’

“ ‘मैं जानता हूँ।’

“ ‘कैसे?’

“ ‘कल पहले-पहल मैंने आपको क्लास में देखा था।’

“ ‘मगर मैंने तो आपको नहीं देखा था।’

“ ‘हाँ, हो सकता है, मैं पीछे बैठा होऊँ।’

“ ‘क्या मैं आपका नाम जान सकती हूँ?’

“ ‘जरूर, जरूर! मेरा नाम हरिश्चन्द्र है। और आपका?’

“ ‘लोग मुझे कुमुद कहते हैं। क्या आप इंगलिश की किताब लाए हैं?’

“ ‘कौन सी?’

“ ‘पोइ्ट्री की।’

“ ‘हाँ, हाँ।’

“ ‘तो मैं आप ही के पास बैठूँगी।’

“ ‘जैसी आपकी मर्जी।’

“इतने में क्लास आ गया। दोनों एक ही जगह अगल-बगल बैठ कर इधर-उधर की बातें करने लगे। क्लास के और विद्यार्थियों की नज़र इन्हीं की तरफ थी। कुछ मनचले लड़के तो रह-रह कर इनकी ओर संकेत करके कुछ आवाज़ें भी

कस देते थे। मगर हम दोनों ने उसकी कुछ परवाह नहीं की। कुछ देर के बाद प्रोफेसर साहब आए और हाजिरी ले कर पढ़ाना शुरू कर दिया। उधर तो प्रोफेसर साहब पढ़ा रहे थे, और इधर हरिश्चन्द्र डेस्क पर सर रख कर सो गया और स्वप्न-संसार की यात्रा करने लगा।”



“वह कॉलेज से घर की ओर फुल स्पीड से साइकिल पर आ रहा था। रास्ते में उसकी साइकिल एक लड़की की साइकिल से टकरा गई। दोनों सड़क पर गिर पड़े, पर चोट किसीको नहीं आई, मगर लड़की की साइकिल में पञ्चर हो गया। दोनों उठे और साइकिल ले कर पैदल ही चल पड़े, और बातचीत का सिलसिला शुरू हो गया :

“ ‘आप पढ़ते हैं ?’

“ ‘जी !’

“ ‘कौन क्लास में ?’

“ ‘फिफ्थ इयर में ?’

“ ‘आपका शुभनाम ?’

“ ‘हरिश्चन्द्र’

“ ‘नाम तो अच्छा है।’

“ ‘क्यों ? आपको पसन्द है ?’

“ ‘कुछ-कुछ !’

“ ‘मगर आपने परिचय तो दिया ही नहीं।’

“ ‘यह तो बताइए, कि आप मेरा परिचय किस लिए चाहते हैं ?’

“ ‘जिस लिए आप ने चाहा ।’

“ ‘फिर भी ।’

“ ‘तो आप अपना परिचय देती हैं या मैं आगे बढ़ूँ ।’—
कह कर हरिश्चन्द्र ने साइकिल आगे बढ़ा दी ।

“ ‘सुनिए, सुनिए !’

“ ‘मुझे बुला रही हैं ?’

“ ‘जी हाँ !’

“ ‘क्यों ?’

“ ‘क्या आप मेरा परिचय नहीं सुनिएगा ?’

“ ‘मगर आप बतलाएँ, तब तो ।’

“ ‘मेरा नाम कुमुद है और मैं दसवीं कक्षा में पढ़ती हूँ,
मेरा मकान कमला के पास ही है ।’

“ ‘मैं आप के मकान का पता नहीं पूछ रहा हूँ ।’

“ ‘फिर भी सुन लीजिए, मैं तो बता रही हूँ ।’

“ ‘आखिर, इससे फायदा ।’

“ ‘शायद आप कभी रास्ता भूल कर उधर आ जाएँ ।’

“ ‘ज़रूर-ज़रूर ! अच्छा, अब मैं घर चलता हूँ आप
इसी रास्ते से पैदल ही कमला चली जाएँ, थोड़ी ही दूर तो
है ।’—यह कह कर वह साइकिल पर चढ़ने लगा ।

“ ‘अरे, आप सचमुच जा रहे हैं ? मुझे अकेले ही जाना होगा, ज़रा घर तक संग चलिए न; आज आप मेरी मदद करिएगा, कल मैं आपकी मदद करूँगी ।’

“वह साइकिल से उतर पड़ा और कहने लगा—‘मेरी एक बात मानिए, आज आप घर जा कर पिता जी से कह कर एक नौकर रख लीजिए, जो रोज़ आपको आराम से कॉलेज से घर और घर से कॉलेज पहुँचा दिया करे ।’

“ ‘फ़िज़ूल पैसा ख़राब करने से क्या फ़ायदा ? आप जो हैं !’—कुमुद ने मुस्कराते हुए व्यंग्य से कहा ।

“ ‘तो क्या आप मुझे अपना नौकर समझती हैं ?’

“ ‘अररर ! आपको नौकर कौन कहता है ? अगर आप घर पहुँचाने से नौकर हो जायँगे, तो रहने दीजिए, मैं स्वयं चली जाऊँगी, ज़रा साइकिल पञ्चर हो गई थी, इसलिए मैंने आपसे कहा ।’

“ ‘नहीं, नहीं मैं तो मज़ाक़ कर रहा था । चलिए पहुँचा दूँ ।’

“ ‘नहीं, नहीं, नौकर बनने की कोई ज़रूरत नहीं, मैं चली जाऊँगी ।’

“ ‘अगर आपको चलना हो तो चलिए वरना...।’

“ ‘वरना क्या ? अच्छा चलिए ।’

“ ‘तो आप एम० ए० में पढ़ते हैं, क्यों ?’

“ ‘यह तो मैं पहले ही आपको बता चुका हूँ ।’

“ ‘आपकी अंगरेजी कैसी है ?’

“ ‘क्यों ? क्या आप मेरी परीक्षा लेना चाहती हैं ?’

“ ‘मैं आपकी परीक्षा क्या लूँगी ? क्या आप अपना कुछ समय मुझे अंगरेजी पढ़ाने में देंगे ? मैं इसमें बहुत कमजोर हूँ ?’

“ ‘यह बात तो आप पहले भी कह सकती थीं, आखिर इतना तूल बाँधने से फायदा ? आपकी परीक्षा कब से है ?’

“ ‘मेरी परीक्षा २६ मार्च से शुरू होगी, तो जितनी जल्दी हो सके, पढ़ाना शुरू कर दीजिए ।’

“ ‘कल से मैं कॉलेज से सीधा आप ही के यहाँ आऊँगा और आपको पढ़ा कर तब घर जाऊँगा, लेकिन आपका मकान कितनी दूर है ?’

“ ‘वह देखिए, पेड़ के सामने वाला ऊँचा मकान !’

“ ‘अच्छा, तो मैं अब घर चलूँ, अब आपका मकान आ गया ।’

“ ‘अगर आप आज घर देरी से पहुँचिएगा, तो कोई हर्ज होगा ? चाय पी कर जाइएगा ।’

“ ‘नहीं, मैं चलता हूँ ।’—कह कर उसने नमस्ते की और चल पड़ा ।’



“ ‘दोनों की दोस्ती दिनों-दिन बढ़ती ही गई, यहाँ तक, कि दोनों अधिक समय तक अलग नहीं रह सकते थे ; और कुमुद के पिता ने भी उनके मिलने-जुलने में बाधा नहीं दी । उन्हें

हरीश बहुत अच्छा लड़का प्रतीत हुआ। उसके स्वभाव तथा सुन्दरता ने इनको उसकी ओर अधिक आकर्षित किया। उनका विचार तो एक दिन अपनी इकलौती पुत्री, कुमुद, का ब्याह हरीश के साथ करने का था।

“एक दिन कुमुद के पिता ने हरीश से कहा—‘बेटा हरीश ! एक बात कहूँ ?’

“ ‘कहिए ।’

“ ‘मेरी हार्दिक इच्छा यह है, कि तुम्हारी शादी कुमुद के साथ कर दूँ। तुमने इसको देखा ही है और यह भी जानते हो, कि वह तुम्हें कितना चाहती है। तुम्हारा भी उस पर काफ़ी अनुराग है। यही सब देख कर मैंने तुमसे कहने का साहस किया। आशा है, कि तुम इस प्रार्थना को स्वीकार करोगे।’

“ ‘.....’

“ ‘चुप क्यों हो गए बेटा ? इस तरह चुप रहने से काम नहीं चलेगा ।’

“ ‘मैं सोच रहा हूँ, कि यदि आप यह बात पिता जी से कहें, तो ज्यादा अच्छा हो ?’

“ ‘हाँ, तुम्हारा कहना तो ठीक है, मगर वह मानते नहीं ।’

“ ‘कैसे ?’

“ ‘मैंने उनसे परसों बात-चीत की थी। मैं सोचता हूँ, कि तुम्हारे ऐसे पढ़े-लिखे लड़कों को लक़ीर का फ़कीर नहीं होना चाहिए ।’

“आपका मतलब ?”

“यही, कि तुमको अपने पैरों पर खुद खड़ा होना चाहिए, शादी तुमको करनी है, न कि तुम्हारे पिता जी को।”

“जैसी आपकी मर्जी।”

॥

॥

*

“कुमुद, मिठाई खिलाओ। हो, ज़रा जल्दी करो, मुझे कई जगह जाना है।”

“तो पहले वहाँ हो आइए। जय देखो तब जल्दी, लेकिन आप मिठाई किस बात की माँग रहे हैं ?”

“तुम्हें खिलानी हो, तो खिलाओ, वरना मैं जाऊँ।”

“लेकिन मिठाई क्यों खिलाऊँ ?”

“पहली बात यह, कि तुम पास हुई हो।”

“सच ?”

“नहीं झूठ, मैंने तो झूठ पीतल का ठेका ले लिया है, क्यों ?”

“लेकिन मिठाई तो आपको खिलानी चाहिए क्योंकि यह आप ही के परिश्रम का फल है। अगर आप अंगरेजी न पढ़ाते, तो मैं सान जन्म में भी पास न होती।”

“मैं तुम्हारी बातों में आने वाला नहीं हूँ, जल्दी मिठाई खिलाओ।”

“अच्छा, पहले दूसरी बात तो बताइए, तब मिठाई खिलाऊँगी।”

“ मिठाई आने पर दूसरी बात बताई जाएगी ।’

“ वह मिठाई लेने चली गई तथा थोड़ी देर के बाद एक प्लेट में थोड़ी मिठाई ला कर बोली—‘अब दूसरी बात बताइए ।’

“ ‘दूसरी बात यह, कि परसों मेरा तिलक है ।’

“ ‘क्या मुझे दावत न दीजिएगा ?’

“ ‘अरे, क्या लड़के वाले कहीं लड़की वालों को दावत देने हैं ?’

“ ‘यह आप क्या गोरख-धन्धे की बातें कर रहे हैं ?’

“ ‘अच्छा, सुनो, मेरे पिता जी मान गए हैं, और मेरी शादी तुम्हारे साथ ठीक हो गई है, जो आज से २० दिन के बाद हो जाएगी ।’

“ ‘आप के पिता जी मान गए !’—कहते हुए उसने एक रसगुल्ला उसके मुँह में डाल दिया ।’



लड़कों ने अखबार में पढ़ा, कि उनके दोस्त हरिश्चन्द्र की शादी कुमारी कुमुद के साथ हो गई । अब क्या था, हरिश्चन्द्र के कॉलेज आने पर सब लगे उसको बधाई देने । बेचारा बधाइयाँ सुनते सुनते थक गया और नींद में ही चिल्ला उठा—‘अब भागते हो, या मार खाओगे ।’ प्रोफेसर साहब ने समझा, शायद यह मुझे ही कह रहा है, क्योंकि सब लड़के

उनकी तरफ देख कर हँस रहे थे। उन्होंने गुस्से में कहा—
‘हरिश्चन्द्र क्या तुम होश में नहीं हो?’

“इतना गुन कर हरिश्चन्द्र चौंक उठा और आँख मलते-मलते बोला—‘महाशय, मुझे अपनी कर्बवाई पर सख्त अफसोस है, मैं नींद में बक रहा था।’ कुछ ही मिनटों के बाद घण्टा-बजा और कुमुद तथा हरिश्चन्द्र क्लास से एक साथ बाहर चल पड़े। कुमुद ने कहा—‘आपने जो कहा था, हटो यहाँ से, सिर मत खाओ। इसका मतलब?’

“‘कुछ नहीं, मैं स्वप्न देख रहा था, यों वक पड़ा।’—हरिश्चन्द्र ने कहा।

“‘कैसा स्वप्न? क्या मैं गुन सकती हूँ?’

“‘फिर कभी सुना दूँगा।’

“‘अब हम लोगों को घर चलना चाहिए। क्योंकि अब छुट्टी है।’—कुमुद ने कहा।

“‘आज छुट्टी क्यों है?’

“‘आज कॉलेज-डिवेंट है, जिसका विषय सह-शिक्षा है।’

“‘मुझे आज पता लगा, कि फर्स्ट-इयर के लड़कों को ‘फर्स्ट-इयर-फूल’ क्यों कहा जाता है। देखिए न, आज डिवेंट है, और मुझे पता तक नहीं।’—हरिश्चन्द्र ने कहा।

“‘मुझे भी फर्स्ट इयर-फूल पर अपना क्रिसा याद आ गया।’

“‘क्या?’

“ ‘सुनिए, जब मैं कॉलेज में अपना एंडमिशन कराने आई थी तब मेरे साथ सिर्फ मेरा नौकर ही था, मुझे मालूम नहीं था कि मुझे कहाँ-कहाँ जाना चाहिए, इसलिए दूसरी लड़कियों से पूछ-पूछ कर सब काम करती थी, अन्त में मैंने एक लड़की से प्रो-वाइस चान्सलर का कमरा पूछा, तो वह मुझे एक कमरे के सामने ले गई और उमी की तरफ इशारा करके चलती बनी। मेरा अन्दर जाना था, कि किसी ने अन्दर से दरवाजा बन्द कर दिया, मुझे बाद में मालूम हुआ, कि यह कॉलेज का स्टोर-रूम था। थोड़ी देर के बाद एक लड़की ने दरवाजा खोला, और सब लगीं चोर-चोर चिल्लाने, मैं चुपचाप सुनती रही !’ उसने हरिश्चन्द्र से कहा ।

“ ‘मगर यह गलती आपकी थी, आपको कमरे के बाहर देख लेना था ।’

“ ‘इसीलिए तो फर्स्ट-ईयर-फूल महशूर हैं। अगर मैं बोर्ड ही देख लेती, तो रोना किस बात का था। अच्छा चलिए, डिबेट सुनते, पाँच ही मिनिट बाकी हैं।’—कुमुद ने हरिश्चन्द्र से कहा और दोनों डिबेट-हॉल की तरफ चल पड़े ।”

दोनों, अब कहानी खतम हो गई और उधर घण्टा भी खतम हो गया, चलो: क्लास में चला जाय ।” —कुन्दन ने कहा ।

‘भाई बाह ! तुमने तो कहानी सुनाने में कमाल कर दिया, इसकी खुशी में मैं तुम्हें एक कप चाय पिला सकता हूँ ।’
—सुरेन्द्र ने कहा ।

“हम लोगों को भी !”—सब लड़के एक साथ चिल्ला उठे ।

“कुछ पढ़ना-वढ़ना भी है, कि केवल कहानी ही सुननी है, घर पर पिता जी सोचते होंगे, कि बेटा कॉलेज पढ़ने गया है; उन्हें क्या पता, कि यहाँ क्या होता है; चलो, चलें पढ़ने ।”
—कुन्दन ने कहा ।

भाई, पहले आत्मा, पीछे परमात्मा, हम लोग चाय पी कर ही जायेंगे ।”—गुप्ता ने कहा तथा सब लोग रेस्टूराँ की ओर चल पड़े । राजेन्द्र गुनगुनाने लगा :

सैर कर दुनिया की गाफिल, जिन्दगानी फिर कहाँ ?

जिन्दगी गर कुछ रही, तो नौजवानी फिर कहाँ ??



हमारी आशिकी

कोई कहता है काम, क्रोध, माह, और अहङ्कार से बचो ;
कोई कहता है, या मुदा, अपने बन्धों को शैतान से
पनाह दे ! लेकिन भई, हम तो कहते हैं, कि अल्ला भियाँ
हमारे-जैसे भोले आदमियों को चालाक दोस्तों से बचाए;
क्योंकि बाकी बातों से बचने के उपाय जरूर हैं, परन्तु इन
दोस्तों से बचने के लिए जब तक 'अन्दरूनी रौशनी' न हो, कोई
सूरत ही नहीं ।

मिसाल के तौर पर हमारी 'आप-बीती' हाज़िर है । हमें
तो यह बात ज़ाती तजरबे से जाहिर हुई है—हमारा अपना
एक्सपेरिमेंट है । अब भले हो हम यह कहने लगे, कि हमारी
अकल तरक्की करने लगी है, परन्तु दोस्तों से डरते हैं अभी
तक, कि कम्बख्त कहीं किसी गए पचड़े में न फँसा दें
किसी रोज़ !

वात यह हुई, कि हमारे पड़ोस में हमारी बदकिस्मती से
एक साहब कहीं से आ ठहरे । उन्होंने हमारे ही सामने वाला

मकान किराए पर ले लिया। एक वह थे और एक उनकी श्रीमती जी, बस दो ही मियाँ-बीबी थे। मियाँ तो जो थे, सो थे, पर बीबी पर प्रकृति भी तुष्ट हो कर रही थी। बड़ी गूबसूरत, बड़ी रंगीन-मिजाज, हँसमुख और नटखट थी वह। खिड़की पर बैठी देख लेते, तो यही कहते, कि चाँद यहीं से निकला है ! बड़ी-बड़ी कटीली, रसीली, मद-भरी आँखें, नोकदार पलकें, जी चाहता था, कि शहीद हो जाएँ, नयन-बाण खा कर ज़ख्मी कर अपने आपको ! लेकिन सच्ची बात तो यह है, कि हिम्मत ही नहीं पड़ी हमारी। हम अपने जीवन को, न तो फ़ालतू समझते थे और न श्रीचन्द्र दौनेरिया वाली स्वदेशी बीमा कम्पनी में हमने ज़िन्दगी का बीमा करवाया था, जो इस प्रकार जान देते ! यह तो हमारे दोस्तों ने ज़बरदस्ती हमें अपनी पड़ौसिन का प्रेमी बना डाला।

हुआ यह, कि एक रोज़ घनश्यामदत्त, विद्यासागर, वेदव्यास, प्रेमसागर आदि बैठे थे, कि न मालूम घनश्याम को क्या सूझी, बोला—अरे भई ! यह कौन साहब हैं ?

वेदव्यास—कहाँ ?

प्रेमसागर—अरे, वह देखो, सामने खिड़की पर !

वेदव्यास, प्रेमसागर, घनश्यामदत्त—सबने एक साथ देखा, मेरी भी निगह उठ गई, वह मेरी नई पड़ौसिन गूब बन्नी-ठनी खड़ी थीं।

वेदव्यास ने कहा—बड़ी शोख है।

घनश्याम बोले—रंगीन मिजाज मालूम पड़ती है।

प्रेमसागर ने कबूती कसी—बाल किस अदा से सँवारे हैं, और आँखें कैसी गजब की हैं ज़ालिम की ?

विद्यासागर—देख भी रही है इसी तरह !

हमने सबको डाँटते हुए कहा—अरे, यह तुम लोगों को हो क्या गया है, यह सब क्या बक रहे हो ? हमारे पड़ोस में एक नए साहब आए हैं, यह उन्हीं की बीबी हैं। तुम्हारी इस बकवास को सुन कर क्या खयाल करेंगी, कि कैसे आवारा लोग इकट्ठे हुए हैं यहाँ !

घनश्यामदत्त ने हमारी ओर रुख करके कहा—भई, 'लाला' ! हुक्म हो, तो एक बात कह दूँ ?

इस पर सबके सब इस तरह बोल उठे, जैसे हमने अपने तमाम अधिकार उनको कानूनी तौर पर सौंप दिए हों—अजी, कहो भी, सब इज़ाजत ही है।

हम हँका-बँका सबका मुँह ताकने लगे, क्या शुगूफा छोड़ते हैं यार लोग !

घनश्याम ने एक अद्भुत मुखाकृति बना कर कहा—तुम लोग मानो या न मानो लेकिन मुझे विश्वास है, कि यह देवी जी, भई 'लाला' पर आशिक है, आशिक !

वेदव्यास—मेरा भी बिलकुल यही खयाल है।

प्रेमसागर—खयाल क्या ? असलीयत है जी, लाला भाई भी अच्छी तरह समझते हैं, यह और बात है, कि हम लोगों

से इनकार करें। अरे भई, सुना नहीं है, कि 'हूल रंग से और आदमी ढंग से पहचाना जाता है।' उसकी एक-एक अदा बता रही है, कि वह 'लाला जी' पर मरती है।

वेद-वास—भई, 'लाला' के इन्कार में क्या होता है? कभी इश्क और मुश्क भी छुपाए से छुप सकती है?

विद्यासागर—और फिर हम लोगों से?

हम झुंझला कर बोले—तुम सबके सब हो सिड़ी। एक शरीफ औरत की इस प्रकार हँसी उड़ा रहे हो। यह कहते हुए हम उठ खड़े हुए। वह भी सब उठे और इस प्रकार यह महाफल बरखास्त हुई!

२

अब ज़रा हमारी बद-वख़्ती देखिए, कि हमने इन सबको तो डाँट-डपट कर भगा दिया, लेकिन उनकी बातों को दिमाग से न भगा सके; हम बराबर सोचते रहे, कि घन-श्याम ने जो कुछ कहा वह केवल हँसी-मजाक ही था या इसमें कुछ रहस्य भी है? अकेला घनश्याम ही नहीं, प्रेम, वेद, सागर—सभी भला एक-मत कैसे हो सकते थे, कि वह हम पर आशिक है?

मान लिया, वह सब चालाक और गप्पो हैं, लेकिन इसका क्या मतलब है, कि हम जब बैठक में बैठते हैं, तो वह खिड़की में आ बैठती है और बराबर हमारी तरफ देखती रहती है? और लो, खूब याद आया! उस दिन हमारी ओर देख कर

मुस्कुरा भी पड़ी थी, वह एक रोज हमारे घर भी तो आई थी और हँस कर हमें नमस्कार किया था, इन सारी बातों से भी तो यही मालूम पड़ता है, कि वह हम पर जरूर आशिक है ! हमने खयाल भी नहीं किया, और घनश्याम वगैरह ने इस बात को एक ही नजर में ताड़ लिया । बड़े काइयाँ हैं ये लोग ?

अब आप चाहे इसे हमारी मर्दुम-शनासी का फितूर समझें या हमारे दिमाग की खराबी कहें अथवा मनोविज्ञान का विकार करार दें, पर हमें कोई सन्देह नहीं रहा, कि हमारी चन्द्रमुख और मृगनयनी पड़ीसिन हम पर आशिक हो गई है, इस लिए हम यह सोचने लगे, कि एक हसीना आशिक से हमें कैसा व्यवहार और बर्ताव करना चाहिए ? यह तो ईमानदारी और वफादारी के प्रतिकूल है, कि कोई हम पर जान दे, और हम इस ओर ध्यान भी न दें । अंगरेजी-दाँ इसे 'आऊट ऑफ एटिकेट' समझते हैं । लेकिन मुसीबत यह थी, कि हमने अपनी ज़िन्दगी भर में, न तो किसी से प्रेम किया था और न किसी पर आशिक ही हुए थे । प्रेम-प्रणाली से एकदम 'अज्ञेय', या इस दस्तूरे-आशिका के मैल से 'निर्मल' थे । प्रश्न तो अब यह था, कि हमें आगे क्या करना चाहिए ?

अब हमारी सूझ मुलाहेजा फर्माइए । कसम मौला की, क्या बात सूझी है, कि बाह ! आज तक किसी 'चवन्नी वाले मेम्बर' अर्थात् नए और आरम्भिक आशिक को भी न सूझी होगी । दिमाग को मसल कर बड़े सोच-विचार के बाद हमारा

खयाल अपनी श्रीमती जी की ओर गया। हमने सोचा, किसी के सिवा किसी की हार्दिक भावनाओं को दूसरा कौन जान सकता है? इस विषय में श्रीमती जी के अतिरिक्त दूसरा कोई अच्छा परामर्श नहीं दे सकता। उन्हीं से पूछना चाहिए।

हमने रात को सोते समय इधर-उधर की बातों में ही उनसे पूछा—“जरा, यह तो बताओ, कि अगर कोई औरत किसी मर्द पर आशिक हो जाए, तो उस मर्द को उस औरत से कैसा व्यवहार करना चाहिए? वह औरत अपने आशिक व प्रीतम से क्या-क्या आशाएँ रखती होगी और क्या करने से वह प्रसन्न हो सकता है?”

साहब! इतना पूछना था, कि जैसे बम फटा, या किसी आर्सनल में आग लग गई! कहने लगीं, वस औरत यूँ खुश हो सकती है, कि मर्द अपने घर-गृहस्थी को तबाह कर दे, बाप-दादों की आबरू को खाक में भिला दे, मुँह में कालिय पोत ले, अगर मरने की कोई आसान सूरत न हो, तो किसी मुई के पाले पड़ कर मरे। हूँ! अब मैं समझी, कि आजकल आप किस धुन में रहते हैं। यही बातें हैं, कि जब देखो घर से गायब, मुँह लटका हुआ, सारी की सारी रात करवटें बदलते रहते हैं! आखिर वह चुड़ैल है। कौन, जरा उसका नाम तो सुनूँ, और वह रहती कहाँ है, होगी कोई मुई बदमाश!

अब हमें कहीं जा कर अपनी मूर्खता का पता चला! इस बारे में तो औरतों का स्वभाव शक्ती होता ही है। वह ख्वाह-

मरवाह मरदों पर शुबहा करती हैं। यहाँ तो सच्चाई ही थी, हमें चाहिए था घनश्याम आदि से इस विषय में सलाह लेना ! लेकिन वे भी तो परले सिरे के सिड़ी हैं। सारे शहर में, ढिंढोरा पिट जाता, कि लाला जी पड़ौसिन पर मरते हैं !

श्रीमती जी कड़क कर बोलीं—तुम्हारे होठों पर ताला क्यों पड़ गया ? बताते क्यों नहीं उस डायन का नाम ? ज़रा जा कर उसका भिजाज पूछ आऊँ, मेरी तबाही का हाल मुझी से पूछ रहे हो ! कल ही भाई को बुला कर मैंके चली जाऊँगी। यही तो है उसके खुश करने का इलाज !

श्रीमती जी सावन-भादों की तरह बरस रही थीं, इधर हमारी अकल ने ठिकाने आ कर एक चाल सोच ली। हमने कहा—तुम भी अजब औरत हो। पूरी बात सुनी ही नहीं और लगी टराने !

आँखें नचा कर श्रीमती जी बोलीं—बस, बस, मैं सुन चुकी पूरी बात, अब सुनना क्या बाक़ी रहा ?

हमने श्रीमती जी को शान्त करते हुए कहा—अजी, खाक़ सुन चुकीं तुम। बात यह है, कि घनश्याम बाबू पर कोई छोकरी बुरी तरह मर रही है, बेचारे बहुत परेशान हैं, उन्होंने तंग आ कर पूछा था, कि उसका दिल किस तरह रखना चाहिए।

साहब ! चाल हमारी 'सुधासिन्धु' ही साबित हुई। श्रीमती जी ज़रा नर्म हो कर बोलीं—देखो, मुझसे भूठ न बोलना, क्या सच घनश्याम बाबू ने पूछा है ?

दिल हमारा बढ़ चुका था, हमने कहा—तुम्हें इतने समझ नहीं है, कि अगर हमारा जाती 'केस' होता, तो रह गई थीं सलाहकार ! तुमने कभी देखा भी है हमें बातों में हिस्सा लेते ?

श्रीमती जी बोलीं—अच्छा, सुबह ही जाऊँगी उनके और सारी बात पूछूँगी, कि मामला क्या है, तुम कितना कहते हो ।

हमने घबड़ा कर कहा—खुदा के लिए ऐसा न कर आखिर घनश्याम क्या कहेगा, कि हम इतने 'जन-मुरीद' कि उनकी प्राइवेट बात भी हमने तुम से कह दी । हमेशा लिए हम उसकी नज़रों से गिर जाएँगे । फिर तुम ही सं कि वह तुमसे इक्करार करेंगे ? ऐसी बातों का भला कोई कि इक्करार किया करता है ? हाँ, यह हो सकता है, कि कल उनको अपने साथ लाएँ, तुम बातों-बातों में सब पता लगा । इस प्रकार मेरी पोजीशन भी खराब न होगी, और बात का पता लग जाएगा । हम फिर कहते हैं, कि हम तुम्हारा सन्देह निर्मूल है, हम ऐसे आदमी नहीं, कि तु छोड़ कर दूसरी स्त्री की ओर आँख उठा कर भी देखें !

हमें सारी रात नींद नहीं आई । पड़ोसिन हम आशिक हो, न हो, पर हमें आशिकी की सज़ा मिल । कब सबेरा हो, कि घनश्याम से सब बातें कहें, कि अब हम इज्जत तुम्हारे हाथ है ।

सवेरा होते ही हम सीधे घनश्याम के पास पहुँचे, वह अब तक सो रहा था। हमने आवाज दी, वह उठ कर बैठक में आया, हमें ज़रा बबराया हुआ देख कर वह स्वयं भी बबरा गया, बोला—कुशल तो है, इतनी सुबह कैसे ?

हमने रात की सारी बात-चीत घनश्याम को सुना दी और कहा—भाई साहब ! हमारी आवरू अब तुम्हारे हाथ है ! तुम जानते हो न हमारी श्रीमती जी की आदत, वह यहाँ से लेकर अपने मेँके तक आग लगा देगी, और हम कहीं मुँह दिखाने लायक भी न रहेंगे ।

घनश्याम ने सहृदयता का भाव दरसाते हुए कहा—फिर मुझसे क्या चाहते हो, जो कहो करने को तय्यार हूँ ?

बस, अगर श्रीमती जी तुमसे पूछें, तो कह देना, कि हाँ, मेरा ही मामला है ।

“बस इतनी ही बात ?”

बस !

तुम निश्चिन्त रहो, मैं मान जाऊँगा और भाभी को यक़ीन दिलाने के लिए एक लड़की की तस्वीर और चिट्ठी तक दिखा दूँगा । एक मित्र दूसरे मित्र के समय पर काम न आया और इतना भी न कर सका, तो वह मित्र कैसा ?

हमने शुक्रिया अदा करते हुए कहा—तुम्हारे इस एहसान को ज़िन्दगी-भर न भूलेंगे । अरुन्धा, घनश्याम ! हमें यह तो

बताओ यार, कि हमारी वह पड़ौसिन क्या सचमुच हम पर आशिक है ?

तुम अपने दिल से क्यों नहीं पूछते ? वह तुम्हें चाहती है और दिल से प्यार करती है ।—घनश्याम बोला ।

हमने कहा—अच्छा, तो फिर हमें क्या करना चाहिए ? हमारी समझ में कुछ नहीं आता ।

पहले एक पत्र लिख कर उसके पास भेजो । घनश्याम ने गम्भीरता से कहा ।

“अगर वह अपने पति से कह दे, या हमारी श्रीमती जी को ही पत्र दिखा दे तो ?”

“तुम भी अजीब आदमी हो, वह तुम पर आशिक है, तुम्हारे पत्र को दुनिया-भर में दिखाती क्यों फिरेगी ? अपने हाथों ही अपने पाँव में कुल्हाड़ी मारेगी क्या ? वह तुम्हारे प्रेम-पत्र को आँखों से लगाएगी, चूमेगी, फिर अपने प्राइवेट बॉक्स में बन्द करके मोहब्बत का ताला लगा देगी !”

हमने पूछा—यार, पत्र का मज़मून क्या होना चाहिए ?

घनश्याम—बस, भरपूर ही होना चाहिए विरह-व्यथा के भाव से । उपन्यासों, नाटकों और सिनेमाओं में देखते नहीं, कि इश्को-मुहब्बत की बातें किस प्रकार की जाती हैं । बस, इसी प्रकार का पत्र होना चाहिए ।

हमने कहा—फिर भी कुछ इशारे तो बता दो ?

घनश्याम बोला—पत्र की भाषा इस प्रकार की होनी चाहिए, कि प्यारी ! तुम्हें देख कर दिल जापानी रबर के गेंद की तरह उछलता है, जब तुम वन-ठन कर खिड़की पर बैठती हो, तो दिल चाहता है, कि मनुष्य न हो कर पत्नी होता, तो उड़ कर तुम्हारे पास पहुँच कर तुम्हारे प्रेम के पिंजरे में कैद हो जाता । मैं तुमसे मिलने के लिए बेचैन हो रहा हूँ, आदि-आदि ।

हमने कहा—अच्छा भई घनश्याम, देखो, अपनी भाभी की इन्कवायरी के मुआमले में होशियार रहना, बड़ी तेज औरत है ।

घनश्याम ने मुँह बना कर कहा—यार, तुम मेरे काम को तो मुझ पर छोड़ो और जा कर अपना काम देखो ! भाभी तेज हैं, तो बन्दा भा सुस्त नहीं है ! वह भाँसा दूँ, कि सारी तेजी धरी रह जाए !

हमने कहा—बस, बस, भाई साहेब ! इसी बात की जरूरत है । अच्छा, हम अभी जाकर उसके पास पत्र भेजते हैं ।

३

घर आकर हमने एक ऐसा प्रेम-पत्र लिखा, कि क्या लिखा गया होगा आज तक किसी प्रेमी की ओर से ! सिनेमा देखने, नाटक और उपन्यास पढ़ने से जितना ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह सब खर्च कर दिया हमने ! पत्र को एक लड़के के हाथ अपनी पड़ोसिन के पास भेज दिया, लड़के के जाने के थोड़ी ही देर

बाद वह खिड़की पर आई और हमारा प्रेम-पत्र हमें दिखा कर इशारे से पूछा, यह पत्र आपने भेजा है ?

हमने सर हिलाकर बताया, हाँ !

खत भेज कर हम रात-दिन उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे और दिल में ऐसे-ऐसे प्रेम-पत्र लिखने के मज्जमून बाँध डाले, कि अगर लिखने का समय मिलता, तो खुदा की कसम प्रेम-साहित्य की 'निधि' माने जाते !

तीसरे रोज उसने उत्तर भेजा, जिसका मज्जमून यह था—
मैं भी आपसे मिलने के लिए तड़प रही हूँ, परन्तु क्या करूँ स्त्री-जाति ठहरी, समय न मिलने के कारण असमर्थ थी, आज मेरे पति एक रोज के लिए बाहर गए हैं, आप आठ बजे रात को अवश्य कष्ट करके दर्शन दें, मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगी ।

उस रोज दिन बड़ी मुश्किल से खत्म हुआ । था तो पूस का महीना, पर उस रोज शाम बड़ी ही देर में हुई थी । लैम्प जलने के बाद हमने तय्यारी की, सौगान बगैरह का तो दिन ही में प्रबन्ध कर लिया था । बैठे घड़ी ही देख रहे थे, कि जैसे ही सात बज कर पचास मिनट पर सुई पहुँची, कि हम उमंगों-भरा दिल और आशाओं से भरा हृदय लिए अपनी पड़ोसिन के घर जा धमके । वह खूब शृंगार किए अपने कमरे में बैठी थी । उसे देखते ही हमारा दिल उदयशंकर की तरह नाच उठा, लेकिन हमारी हैरानी की हद न रही, जब

कि उसने हमारे कमरे में पाँव रखते ही बिजली की बत्ती बुझा दी !

हमने घबरा कर कहा—क्यों, क्यों ? आपने रौशनी क्यों बुझा दी, यदि आपको हमारा झूना इतना बुरा लगा, तो हम अभी लौट जाने को तय्यार हैं । क्योंकि प्यार और मुहब्बत की बातें, तो अँधेरे में मज्जा नहीं देती !

उन्होंने प्यार-भरी सुरीली आवाज में कहा—वाह ! आपका आना मुझे बुरा काहे को लगेगा ? मैं तो आपसे मिलने के लिए घड़ियाँ गिन रही थी । मैं अभी रौशनी करती हूँ परन्तु इस शर्त पर कि आप मेरी दो-एक बातों का उत्तर दे कर मुझे विश्वास दिला दें । प्यार और मुहब्बत की बातें, रौशनी में ही होंगी ।

हमने आवेश में आकर कहा—कहिए, कहिए, मैं हर प्रकार का विश्वास दिलाने को तय्यार हूँ ।

वह बोलीं—आपका प्रेम ढलती-फिरती छाया तो न होगा ?

“जी नहीं, हर्गिज नहीं ।”

“मर्द बड़े स्वार्थी होते हैं, इसीलिए पूछ रही हूँ ।”

हम उन मर्दों में से नहीं हैं ।”

“मैंने सुना है, कि आपकी घर वाली बहुत तेज है, और आप उससे डरते हैं, ज़रा ध्यान कर लें इस बात पर भी ।”

हमने बड़ी शान से जवाब दिया—किसने कहा आपसे कि हम उससे डरते हैं ? अगर उसने उफ़ भी की, तो हम जो कुछ

भी न कर डालें, थोड़ा है। आप हमें जानती नहीं, कि हम किस किस के आदमी हैं।

“आप खूब सोच-समझ कर कह रहें हैं न ?”

“हाँ, हाँ, खूब सोच-समझ कर।”

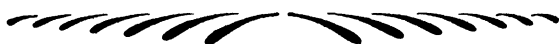
“तीन बार प्रणिज्ञा करते हैं आप ?”

“तीन बार आपके कहने पर और तीन बार अपनी इच्छा से।”

“मेरा हाथ पकड़ कर कसम खाइए, कि मेरी पत्नी मुझे छोड़ दे या मुझे वह छोड़नी पड़े, चाहे कुछ क्यों न हो, मैं तो तुम्हें किसी प्रकार न छोड़ूँगा !”

हमने आँधरे में हाथ बढ़ा कर उनका हाथ थामा, इतने में यकायक बिजली जल उठी और इसके साथ ही हम पर भी बिजली गिरी। हम क्या देखते हैं, कि हम अपनी पड़ोसिन के कमरे में साक्षात् अपनी श्रीमती जी का हाथ थामे खड़े थे, अजीब बौखलाहट के आलम में !

अब आप स्वयम् अनुमान कर लें, हमारे मुँह से हमारी दुर्दशा सुन कर क्या करेंगे। हाँ, एक बात बतलाए देते हैं, कि लैम्प जलने के साथ जहाँ हमारी रुढ़ काँप रही थी, वहाँ पास के कमरे में वे भलेमानुस सबके सब ठहाका मार कर हँस रहे थे। वही घनश्यामदत्त, वेदव्यास, प्रेमसागर और विद्यासागर !



चिरई

एक कहावत है—“सकल तीर्थ कर आई नितलौकी, तबहुँ न गई तिताई !” वही हाल हमारे मुहल्ले के मियाँ नूरी का था। छुटपन या जवानी चाहे उनकी जैसी बीती हो, पर कशों के खिचड़ी हो जाने के जमाने में, और हज कर आने पर जब वे ‘नूरी’ से ‘हाजी मुहम्मद नूरुद्दीन’ हो गए, और गर्दन से लेकर किल्ली तक घाँघरातुमा कुर्ता पहनने लगे तथा पाँचों नमाज के पाबन्द हो गए तो उन्हें एक बीमारी पैदा हो गई। यह ‘चिरई’ की बीमारी थी ; या यों कहना चाहिए कि वे ‘चिरई’ के आशिक थे, और उसकी तलाश में दर-दर ठोकरें खाते थे।

आप सोचते होंगे, मियाँ नूरी किसी गुलशन में फुदकने वाली या बियाबाँ में कूकने वाली ‘चिरई’ के प्रेमी होंगे। मगर नहीं, मियाँ नूरी की ‘चिरई’ जंगलों में वृक्षों पर बसने वाली ‘चिरई’ नहीं, महलों में चहकने वाली ‘चिरई’ है, जिसके डैने नहीं, दो हाथ होते हैं ; पैर में चंगुल नहीं, उँगलियाँ होती हैं,

चोंच नहीं, होंठ होते हैं, और जिसकी बोली 'चिरई' से भी ज्यादा प्यारी और मीठी होती है। मतलब किसी खूबसूरत नाज़नी से है, जिसे अपनी साँकेतिक भाषा में मियाँ बूरी 'चिरई' कहा करते थे। यह 'चिरई' की तलाश वाली बीमारी उनके पीछे ऐसा हाथ धो कर पड़ी थी, कि वे 'चिरई' के लिए ज़रूरत पड़ने पर सिर्फ़ अपना बधना और डोरी ही नहीं, 'जा-नमाज़' (जिसे बिछा कर नमाज़ पढ़ी जाती है) और तस्वीहतक—जिसे मक्का-शरीफ़ से बड़े प्रेम और श्रद्धा से वे अपने साथ लाए थे—बेच सकते थे। उनके चन्द हमजोलियों ने उनकी इस बुरी लत के लिए उन्हें धिक्कारा भी, उनकी लानत-मलामत भी की—'मियाँ, क्या इस बुढ़ाती में और वह भी हजी-नमाज़ी हो कर, अज़ाब की गठरी भारी किए जा रहे हो !'

पर अपने इन शुभचिन्तकों की नसीहत सुने मियाँ की बला ! वे तो 'चिरई' के मुश्ताक़ थे। अपनी कपड़े की छोटी-सी दूकान पर बैठे वे गाढ़क की टोह में नहीं, 'चिरई' की किक में परेशान रहते थे। सबसे बड़ी तबाही हमारी थी। मियाँ हमारे पड़ोसी थे—“कोई 'चिरई' फँसाओ !” के तकाजे से हमारी नाकें दम किए रहते थे। मैंने लाख कहा—“मियाँ, कोई 'चिरई-चिरई' हमारे कब्जे में नहीं, और न मैं कोई वैसा 'चिरईबाज़' ही हूँ। मेरा पिण्ड छोड़ो !”

मगर मियाँ तो अपनी नाक पर हरी ऐनक चढ़ाए बैठे थे, उन्हें सारा संसार हरा ही हरा दीखता था। उनकी नज़रों में दुनिया

के सारे लोग 'चिरईबाज' थे ! कहते—“अरे भई, जो खर्चा हो, हमसे ले लो । यह हीला काहे का ! न हो तुम भी शरीक हो जाना, क्यों !

“अच्छा !” कह कर किसी प्रकार पिण्ड छुड़ा लेता । पर कब तक ? मियाँ उधार खाए बैठे थे । आखिर एक दिन एक 'चिरई' का पता लगा, जो देहात से बहक कर हमारे शहर में आ गई थी । मियाँ ने यह खुश-खबरी सुनी, तो वे इतने खुश हुए, मानो सिकन्दर का दफ्तीना इन्हीं के हाथों लगा । पूछा—“यार, हम उसे देख सकते हैं ? कहाँ रक्खा है ?” फिर वे अपने लम्बी नोक वाले पञ्जाबी जोड़े पहने तैयार थे !

मैंने कहा—“अजी, हड़बड़ी किस बात की ! शाम होने भर की तो देर है, फिर सारी रात खुर्दवीन लगा कर देखा कीजिएगा । गालिबन तीन तो बज ही गए होंगे, दो-ढाई घण्टे में शाम हो जाएगी । 'चिरई' नई है, वह भी देहात की; कहीं आपको देख कर भड़की, तो सब गुड़ गोबर समझिए ।”

मियाँ ज़रा रुखे हो कर बोले—“वह हमको देख कर भड़केगी ! क्या मेरी शक्त ऐसी खूँखवार है जी ?”

मैंने मियाँ की बेताबी समझी, ज़रा मुलायम हो कर कहा—“शक्त तो आपकी 'नूर' के ही मानिन्द है । आपकी सूरत खूँखवार है, ऐसा कौन मरदूद कहेगा ! मगर वह एक नए आदमी को देख कर घबराएगी, क्योंकि आपके बारे में अभी उसे कोई खबर नहीं है ।”

मियाँ ज़रा सँभल कर बोले—“अच्छा, जाने दो। है कैसी ? उमर क्या है ?”

मैंने कहा—सूरत तो अभी मैंने भी नहीं देखी है ; मगर जहाँ तक मैं उसे देख पाया हूँ, उसको खूबसूरती में कोई शुबहा नहीं है।

मियाँ आँखों में रस भर कर ‘नूर’ (दाढ़ी) पर हाथ फेरते ए हुबोले—“बेशक, ‘चिरई’ बड़ी दिल फरेब होती है, तुम्हारा ख्याल बहुत दुरुस्त है। खैर, तब तक उसके खाने-पीने का इन्तज़ाम.....।

“जैसा आपका हुक्म !” मैंने कहा।

मियाँ टेंट से रुपए फेंकते हुए बोले—“लो तुम और ‘बह’ दोनों खाओ-पियो। और हाँ, निगरानी बराबर रहे, ताकि ‘चिरई’ फुर्र न हो जाय, या कोई बहेलिया उसे बन्ना न ले। फिर सब सत्यानास ! समझे !”

मैं जोर दे कर बोला—“नहीं, नहीं, भला यह कैसे होगा कि निगरानी न रहे ; और निगरानी क्या, पूरा पहरा रहेगा।”

“बहुत ठीक ! लो, जाओ। और हाँ, याद रखना, शाम हुई नहीं कि ‘चिरई’ के साथ हमारी बैठक में तुम हाज़िर हो जाओ।”—मियाँ ने कहा।

अबकी मैं पूरा जोर दे कर बोला—“हाँ, हाँ, आप खातिर रखिए ; शाम हुई, और ‘चिरई’ आपकी बैठक में बन्द !”

और सचसुच शाम होते ही मियाँ की बैठक में 'चिरई' बन्द हो गई। मियाँ ने 'चिरई' को देखा-भाला, और सूरत की दिल खोल कर खूब दाद दी। मेरी भी पोठ ठोकते हुए कहा—
“भई बाह ! हो तुम भी एक ही उस्ताद ! बेहद बेहतरीन चीज लाए ! ऐसी 'चिरई' बड़े भाग से मिलती है, यार !”

मैंने कहा—“यह कामयाबी और कुछ नहीं आपके समान हाजी की दुआ है ! खैर, अब मुझे छुट्टी दीजिए, और आप अपना काम देखिए।”

मैं घर आ कर लम्बी तान कर पड़ रहा। कोई दो घण्टे बाद मुझे मालूम हुआ, मेरे दरवाजे पर कोई बेतहाशा चीख रहा है, धड़ाधड़ किवाड़ के पल्ले पीट रहा है। भीतर से ही मैं भल्लाया-सा बोला—“अरे, किस ऊँट की नकेल टूटी, जो अरबिस्तान से सीधे छूट कर मेरे दरवाजे पर बलबला रहा है !”

फिर एक घबराहट-भरी, बौखलाई-सी आवाज आई—
“अमाँ, जल्द किवाड़ खोलो !!”

बाहर आ कर देखा, तो हमारे 'चिरई' वाले हाजी जी बड़ी परेशानी की हालत में, सर से पाँव तक जड़ैया के मरीज की तरह काँपते हुए खड़े थे। शक्त घबराई हुई, आवाज अटकी हुई—अजीब हालत ! पूछा—“क्यों, खैरियत तो है ?”

मियाँ उसी उलझी-सी आवाज में घबराए हुए बोले—
“खैरियत ! अच्छी खैरियत पूछते हो ! परी के बजाय देव

ले आए, फिर भी खैरियत-तलब ! बाग़ रे बाबा ! छछात
(साक्षात्) कालादेव ! !”

“कालादेव ! यह आप क्या फ़रमा रहे हैं, हाजी जी ! मैं
ज़रा भी न समझा !”

“ज़रा भी न समझा तो खुद चल कर अपनी आँखों देख
लो । बाप रे ! ऐसा खूँख़वार शैतान हमने अपनी इतनी बड़ी उम्र
में कभी न देखा था । ”

“अजी, शैतान कहाँ है, साफ़ बताइए ना !”

“हमारी बैठक में !”

“आपकी बैठक में शैतान ! ताज्जुब ! यह आप क्या कह
रहे हैं ?”

“हाँ जी, क्या झूठ थोड़ी ही कहता हूँ । जिसे तुम लाए,
वह तो, ‘चिरई’ नहीं ‘शैतान’ है !”

“यह तो आप अजीब बात कहते हैं । लाए हम औरत, उसे
आपने भी देखा-भाला, वह शैतान कैसे हो गई ?”

“इसी चक्कर में तो मैं भी हूँ भाई । तुम जब घर आए, तो
मैं भी खाना खाने घर गया । खाना खा कर लेटा, कमरा
खोला । देखा, वह खाट पर चुप बैठी है । नज़दीक गया,
पूछा—‘कुछ खाओगी ?’ सर हिला उसने ‘नहीं’ कहा । अब
मैंने खाट पर उसके पास बैठ कर ज्यों ही उसका हाथ थामा
कि बस, क़हर हो गया । एक झटके में उसने साड़ी तो एक ओर
दूर को फेंक दी ; अब हमारे सामने वह एक डबल लम्बा-तड़ंगा

कालादेव ! बड़ी-बड़ी सुख्ख आँखें, सारा मुँह कोयले-सा काला, होठ पर निकले अँगुल-अँगुल भर के लम्बे दाँत, सारा जिस्म काले कपड़े से ढँका !! एक अजीब डरावनी आवाज़ ! मैं घबरा कर उसे देख ही रहा था, कि उस मूजी ने झपट कर मेरा कान पकड़ लिया और कुत्ते की तरह मुझे ज़मीन से बेलाग उठा लिया। पूरे दस निमिट तक मुझे इसी तरह उठाए रहने के बाद, उस बेरहम ने मुझे छोड़ दिया। फिर इशारे में बतलाया कि उठ-बैठ करो ! पर दस ही बार उठने-बैठने में मेरी कमर अकड़ गई। रान नौ-नौ मन भारी हो गई, मैं लगा थोँसने। तब उस मरदूद ने फिर मेरा कान पकड़ा, और लगा उठाने-बैठाने। जब मुझे यह मालूम हुआ कि अब फ़क़त दो-चार बार के ही उठने-बैठने से दम निकल जाएगा, तो उसके पाँव से लिपट गया। बड़ी-बड़ी मिन्नतें कीं। फिर 'चिरई' की तलाश में न रहने की कसम खाई, थूक चाटा, उसके तलवों पर नाक रगड़ी, तब कहीं यह बला टली ! पर अब वह ५००) रु० नक़द माँगता है और कहता है, न दोगे तो सारा घर फूँक दूँगा। बड़ी मुश्किल से छुट्टी ले कर तुम्हारे पास आया हूँ। ज़रा चलो, भइया ! समझाओ उस सले शैतान को, किसी क़दर बला टले !

मैं गम्भीरतापूर्वक बोला—“अजी साहब, इस दुनिया में जो कुछ हो जाय, अचरज नहीं। अब मुझे एक बहुत पुराना वाक़या याद आ रहा है। द्रौपदी देवी भी जब छिप कर

विराट नगर में रह रही थीं, तब उन पर राजा विराट का साला, कीचक, आशिक हुआ। रात में जब उनसे मिलने गया, तो ठीक इसी तरह साड़ी से ही एक बड़ा खूँखार देव पैदा हुआ, और जनाब उसने तो वहीं कीचक को फाड़ खाया। और कीचक को ही क्यों? उसके ११ भाइयों को भी जला कर खाक कर डाला! खुदा का शुक है, यह जनाना शैतान फकत ५०० रू० पर ही मामला रफा-दफा किए देती है।

हाजी जी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। यह कीचक वाली कहानी सुनी, तो उनका दिमाग और दुरुस्त हो गया। बोले—“मगर मेरे पास इस वक़्त इतने रुपए कहाँ, जो उसे दूँ। और एक बात, वह कीचक वाला मजमून तो बहुत पुराना है। पुराने ज़माने की बात आज कहाँ होती है?”

“तो क्या आपको शक है, आपके साथ कोई फरेब रचा गया? मैं पूछता हूँ, आप तो उस औरत को खुद अपनी आँखों देख चुके थे। बोलिए, देखा था न?”

मियाँ बोले—हाँ, भाई! देखा तो जरूर था।

मैं—“कोई वैसी शुबहा वाली बात आपको नज़र आई?”

मियाँ—“नहीं।”

मैं—“आप जब खाना खाने गए, तो मैं आपके जाने के पहिले अपने घर चला आया?”

मियाँ—“हाँ।”

मैं—“और बैठक की ताली भी आपके ही पास थी। थो, न?”

मियाँ—“हाँ।”

मैं—“तो फिर आपके संग करेब कैसे रचा गया ? बाक़ी रही औरत से मर्द बनने की बात, जिसे आप इस ज़माने में अनहोनी समझते हैं ; मगर मैं कहता हूँ, ऐसे वाक़यात आज भी हो रहे हैं। यूरोप में कई दर्जन मर्द औरत, और कई दर्जन औरतें मर्द बन गईं और जनाब, शादियाँ करके घर भी बसा लिया ! आप किस बेख़बरी में हैं। आपको इसका पता हो भी क्यों कर ? आप तो ‘चिरई’ के आशिक़ हैं। अख़बार पढ़ते, तब तो यह दुनिया की बातें आपको मालूम होतीं !”

सारांश यह, कि ‘चिरई’ के आशिक़ हाजी साहब ने दो सौ रुपए उस ‘शैतान’ के पैरों पर रक्खे। तब कहीं उनकी जान बची ! इसके बाद फिर उन्होंने कभी ‘चिरई’ की न तो तलाश की और न उसका नाम ही लिया ! हाँ, ‘चिरई’ के नाम से अब चिढ़ने ज़रूर लगे थे।



अस्पताल के चक्कर में

ओह मैं तो परेशान हो गया हूँ अस्पताल जाते-जाते !
भगवान् जाने, कब पिण्ड छूटेगा अस्पताल की इस
आफ़त से। सवेरे उठे नहीं, कि अस्पताल जाने की
तजवीज़ होने लग जाती है ! शीशियाँ ढूँढ़ो, उन्हें साफ़
करवाओ आदि काम तो मुँह धोने के पहिले ही करने पड़ जाते
हैं। लगातार आठ साल में मैं अस्पताल जा रहा हूँ। शायद
ही कोई ऐसा दिन रहा हो, जिस दिन शीशियाँ मेरे हाथों में न
आई हों। कारण, कि बारहों महीने मेरे घर में मरीज़ बने
ही रहते हैं। आज किसी के छोटा-सा फोड़ा हो गया है, तो
कल किसी का पेट दर्द कर रहा है, किसी की आँखें दुख रही
हैं, तो कोई मलेरिया से चारपाई पर पड़ा है; याने हफ़्ते के
सात दिनों में कोई न कोई बीमार रहता ही है। फिर मैं अपने
भाइयों में थोड़ा बड़ा भी पड़ता हूँ; बस, फिर क्या है मेरी
ही शामत आती है इन सब ड्य टियों को अदा करने के लिए !

शहर के सारे वैद्य, हकीम और डॉक्टर मुझे पहिचानते हैं, और अगर कोई दूसरे मरशिद इसी पेशे के शहर में आ बसते हैं, तो उनसे भी जान-पहिचान हुए बिना नहीं रहती—काम जो पड़ता है।

मुझे अच्छी तरह याद है, शायद ही कोई ऐसा महीना गुज़रा होगा, जिसमें चालीस-पचास रुपए के बिल डॉक्टरों के यहाँ से बन कर न आए हों।

डॉक्टर लोग भी मुझसे खुश रहते थे, क्योंकि मैं उनका रोज़ का ग्राहक था। उनकी तो चाँदी बनती थी; किन्तु यहाँ रोज़-ब-रोज़ चक्कर लगाने में इतनी खीम पैदा होती, कि कभी-कभी तो अस्पताल जाना छोड़ पार्क में जा कर किसी पेड़ के नीचे बैठ चिड़ियों का फुदुकना और आकाश में दौड़ते हुए सफ़ेद-काले बादलों की गति देखा करता था, किसी एदार वृत्त के नीचे बैठ कर चैन की वंसी बजाता और कभी-कभी निद्रा देवी की गोद में खो जाता था।

अब क्या बताऊँ, कई मरतबा लोगों ने वहाँ हमारी मटर-गश्ती देख ली थी, जिसके लिए हमें काफ़ी भैंपना पड़ा था !

एक दिन की बात है, मैंने पक्का इरादा किया, कि आज चाहे जो कुछ हो जाय, भले ही पिता जी आगबबूला हो जाएँ, परवाह नहीं; मुझे घर से निकलना पड़े, पर दवाई लेने अस्पताल न जाऊँगा। आठ-आठ साल हो गए, क्या दवाई लाने का ठेका मेरे ही सिर है ? पिता जी से कहता हूँ, कि रमेश को भेज दो,

तो कहते हैं—‘वह अभी छोटा है, फिर उसे तमीज ही क्या है, तू काफ़ी दिनों से जा रहा है, तुझे अच्छा तजुर्बा हो गया है डॉक्टरों से बात-चीत करने का। चले जाओ, बेटा !’ मुझे कहना तो बहुत कुछ था, परन्तु क्या करूँ एका एक मुझसे ज़बान-दराज़ी न हो सकी। उनके कहने से घर से तो निकल पड़ा, परन्तु अस्पताल की ओर नहीं—बगीचे की तरफ़ चल दिया। बग़ल में शीशियाँ दबाई और चल पड़ा दिशबस्तगी के लिए—‘आयंडिन’ और ‘आयडोफॉस’ से दिमाग़ सड़ाने नहीं ! खुदा ख़ैर करे, इन अस्पताली दवाइयों से नाक इतनी सड़ गई थी, कि मैं इत्रों का पहिचानना भूल गया था। मैं ‘मलेरिया’ और ‘कॉलरा’ के भिक्सचरों में डूबना-उतराना नहीं चाहता था, मैं एक ऐसी जगह की तलाश में था, जहाँ न रोग हों और न उनके अच्छे करने वाले !

हाँ, तो घर से चल कर पार्क पहुँचा। बेञ्च पर बैठ कर निद्रा देवी का अह्वान करने लगा, क्योंकि मैं अपने अस्पताल जाने की व्यथा को देवी’ जी की गोद में विस्मृत कर देना चाहता था, परन्तु हिटलर की मूँछ और मुसोलिनी की खोपड़ी की तरह कहावत प्रसिद्ध है—‘माँगे मिले न भीख’ ! फिर निद्रा देवी उस कहावत की मर्यादा को कैसे भंग कर सकती थीं ? नोंद की उधेड़-बुन में क़रीब एक घण्टा गुज़र गया; लेकिन नोंद और आँखों की तनातनी में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा। मुझे याद है, मैं एक लमगोड़े बिडु की तरफ़ कौतुहल-भरी निगाहों

से देख रहा था, कि कब नींद आ गई, पता भी नहीं लगा, और मैं सोता ही रहता, अगर पास में रास्ते पर खड़ा एक गधा 'सी-पों', 'सी-पां' का कर्करा, कर्ण-भेदी राग आखिरी सप्तक के स्वरों में न छेड़ उठता। मैं उठा तो एक बज चुके थे, और घर से मैं निकला था आठ बजे। सोचा—क्या बहाना किया जायगा। दिमाग तो बचपन से ही चञ्चल है। बहाना बनाना तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है। कह दूँगा—डॉक्टर साहब एक मरीज को देखने गए थे, वहाँ उन्हें बहुत देर लग गई, अभी आए तो दवाई ले कर चला आ रहा हूँ। खीर, यह तो देर की बात हुई। अब सवाल रहा दवाई का, सो नल से शीशियों में पानी भर लिया और बाज़ार से एक पैसे की काली मिर्च और नमक खरीदा और बहुत बारीक पीस कर पानी में मिला दिया, कपड़े से छान लिया, दवाई तैयार हो गई। घर आया, तो पूछा जाने लगा—“देर क्यों हुई?” मन-गड़न्त बहाने वाली बात कह गया और शीशियाँ हवाले कर दीं अपनी अम्मा के। अम्मा एक घूँट पी कर बोलीं—“क्यों राजू, आज दवाई का स्वाद क्यों बदला हुआ मालूम पड़ता है?”

यहाँ पर तो मेरा दिमाग फेल हो रहा था, कि बुरे फँसे—क़िला तो फ़तह कर लिया, पर शासन न कर पाए! मैंने इस बात का तो बिलकुल खयाल ही नहीं किया, कि पिता जी डॉक्टर से पूछेंगे; तपाक से बोले उठा—“अम्मा, आज डॉक्टर ने बड़ी तेज़ दवा दी है। उनका कहना है, कि इस दवाई से

तुम्हारी माँ जरूर अच्छी हो जाएँगी।” ईश्वर जाने, मेरी बनाई हुई दवा में क्या जादू-ऐसा असर था, कि दूसरे ही दिन से मेरी अम्मा की बीमारी बिलकुल दूर हो गई। मैं भी चकित रह गया, मानो मैं जो कुछ भी दे दूँ वही दवा हो !

सवेरे-शाम भगवान् से प्रार्थना करता हूँ—हे भगवान्, दयानिधान, दीनबन्धु मैं आपकी शरण हूँ ! कृपया ऐसा करिए, कि बीमारी चुड़ैल का मेरे घर से महाप्रस्थान हो जाए; क्योंकि मेरे घर के मरीजों को जितना दुःख नहीं होता, उससे कहीं ज्यादा ज़िल्लतें मुझको पठानी पड़ती हैं। डॉक्टरों के घर जाते-जाते मेरी नाक में दम हो जाता है। वक्त-वेवक्त कभी भी इस काम के लिए भेजा जाता हूँ। अगर रात में भी किसी को खाँसी या जुकाम हुआ, तो डॉक्टर के यहाँ जाओ। अजीब आफत है ! किसी डॉक्टर का घर एक मील है, तो कोई अस्पताल दो मील दूर है। हमारा मकान इतना वदनसीब है, कि उसके चार करलाँग के आस-पास किसी डॉक्टर का घर है ही नहीं ! डॉक्टरों के यहाँ जाता हूँ, तो कम-से-कम एक घण्टा जरूर पाँवों को तकलीफ़ होती है, और जब डॉक्टर साहब को पहिले वाले मरीजों से फ़रसत मिलती है, तब कहीं वे मेरी तरफ़ मुखातिब होते हैं। शिष्टाचार की प्रतिमा बन कर कहने लग जाते हैं—“मि० राजेन्द्र, आपको बहुत इन्तज़ार करना पड़ा !” मैं क्या कहूँ उन लोगों से, जो मेरी हालत से सर्वथा नावाक़िफ़

हैं ? इनको क्या पता, कि हमें कितनी तकलीफों का सामना करना पड़ता है ?

भगवान् मेरे यहाँ की इस बुढ़िया को जरूर उठा लो, क्योंकि यहो मुझे सबसे ज्यादा परेशान किए हुए है। साल में नौ महीने खाट की सेवा करती है। मैं उन क्रयामत ढाने वाली नर्सों से बहुत डरता हूँ, जो जाती तो हैं 'पेशेण्ट' देखने, पर बार-बार अपनी साड़ी को देखती चलती हैं, कि कहीं सिकुड़न न आ गई हो ! मैं उनकी असामयिक हँसी की बौछारों का आदो नहीं हूँ। सोवने लग जाता हूँ, कि कहीं मुझे बनाने का तो यह उपक्रम नहीं हो रहा है। दिल ही तो है; रहा, न रहा अखितयार में ! कहीं दुर्भाग्य से किसी क्रयामते-नाज से दिल लग गया, तो हुई आफत, 'प्रेजेण्ट्स' देते-देते नाक में दम, और क्रमाइशों का ताँता जारी ! अभी तो सिर्फ सबेरे शाम ही अस्पताल जाना पड़ता है, फिर तो लिए साइकल लगाते रहो चक्कर अस्पताल के, पढ़ाई-वढ़ाई सब बालाए-ताक रख कर ! अभी तो दो ही चक्कर के फेर में पड़ कर चार साल तक फेल हुआ हूँ, और तब तो शायद जन्म ही खतम हो जाय पढ़ते-पढ़ते !



आज मेरे लिए एक सौभाग्य का दिन है; मैं फूला नहीं समा रहा हूँ; कहीं मेरा शरीर खुशी के मारे 'बस्ट' न हो जाए ! आज मेरे जीवन के इतिहास में एक नया पृष्ठ जुड़ेगा। आनन्द आज शरीर के प्रत्येक पट से भाँक रहा है। आज मेरे घर में

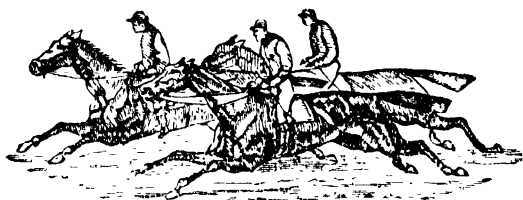
कोई बीमार नहीं है ! अब आप समझें, मैं क्यों इतना उड़ा जा रहा था। भगवान् ने मेरी सालों की प्रार्थना पर आज गौर किया है। आज मेरी ईद और दिवाली है, दशहरा और एक्समस है !

शाम हो रही है। भगवान् अंशुमाली दिन-भर के थके-माँदे अपने काम से अवकाश पा, प्रेयसी प्रतीची से मिलने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। अपनी आखिरी सुनहरी किरणों से भी दुनिया को आलोकित कर देना चाहते हैं। पक्षियों का एक जोड़ा सुदूर नील आकाश पर उड़ता चला जा रहा है, शायद वह युगल जोड़ी मेरे आनन्द में शरीक है !

शाम हो गई। घूम कर लौटा तो देखता हूँ, कि घर के सामने एक ताँगा खड़ा है। सोचा कोई मेहमान आए होंगे। हाँ, याद आया; शहर की एक महिला आज मेरी बहन से मिलने आने वाली थीं, परन्तु घर के अन्दर जा कर जो नजारा देखा, उससे मेरी रूढ़ कञ्ज हो गई। मेरा छोटा भाई बेर के दरख्त से गिर पड़ा था, और एक डॉक्टर अपना बक्स खोलें हुए इधर-उधर आँखें नचा कर सान्त्वना दे रहे थे—“घबराइए नहीं, कोई बात नहीं है, सिर्फ़ बाएँ हाथ की हड्डी सरक गई है, एक महीने के अन्दर अच्छी हो जाएगी !” “प्लास्टर ऑफ़ पेरिस” हाथ में बाँधा जा चुका था।

मेरी सारी खुशियाँ काफ़ूर की तरह उड़ गई ! मुहर्म्म की मुर्दनी छा गई। मर्सिया-गायकों की-सी सूरत हो गई ! एक तो

भाई के गिरने का दुःख था, दूसरा अस्पताल जाने का। आठ बज चुके थे। सायकिल पर बैठा शोशियोँ दबाए चला जा रहा था अस्पताल की ओर। ठण्डो हवा बिच्छू की तरह काट रही थी; साथ ही अस्पताल जाने का खयाल भी हजार बिच्छुओं से कम डंठ नहीं मार रहा था !!



हम शरीफ

हम शरीफ कोई किराए के शरीफ नहीं, बल्कि एक खानदानी शरीफ हैं—और रहेंगे भी ! जर की बदौलत, रईस होना एक अलग बात है, पर अहाँ तो खुदा की दी हुई शराफत चेहरे पर ही क्या, रोम-रोम में घुली-मली है । शराफत उस चिड़िया का नाम है, कि किसी के दुःख में दुखी न होना, किसी के झगड़े में पड़ कर शौ दे कर तमाशा देखना, चार दोस्तों में अपनी ही कहे जाना, किसी की न सुनना, इत्यादि । बहुत से नमूने हैं—जो मसबून हम में ही मौजूद हैं :



असलियत यह है, कि हम अपने माँ-बाप के अकेले चराग हैं । फिर लाड़-प्यार का अन्दाज़ा आप लोग ही लगाते रहिए, पर अब तो हम एक खासे बाल-बच्चों वाले और 'छोटी-सी' नौकरी वाले गृहस्थ हैं । गृहस्थी से तो हम उतना ही नाता रखते हैं, जितना कि होटल से ग्राहक ! बच्चों को उतना ही प्यार करते हैं, जितना कि एक मेहमान ! हम अपनी निराली

दुनिया में रहते हैं, निराला महल उठाते हैं और निराले कानून-द्वारा बीबी-बच्चों तथा नौकरों को दबाए रहते हैं : हम शरीफों की याद जहाँ-तहाँ आदमी कथा की तरह करते और सुनते हैं ! हम बहुत गुस्सा वाले हैं ।



एक बार का जिक्र है, कि नौकर से बन्दे ने कहा—“जरा टेबिल ठीक तरह से लगा दो, काम करना है ।” नौकर कागज बगैरह रख कर चला गया । इतने में दोस्त लोग ताश की गड्डी ले कर आ धमके । हम कहाँ चुकने वाले थे, फिर क्या था, जम गए और जमें भी क्यों नहीं ? लड़ाई से पीछे कदम हटाना हम शरीफों का काम नहीं । शाम हुई और रात भी हो गई ! इधर बीबी ने देखा, कि हम फँस हैं ‘काम में’, वह भी अपनी पड़ोसियों के यहाँ गप-शप करने चल दी । शाम को आई और फिर अपने चूल्हे के चक्कर में ! टेबिल की किसी को खबर नहीं !! किसी बच्चे ने कागजों की पतंग बना कर और किताबें-टेबिल स्याही से पोत-पात कर दुरुस्त कर दिए ! खाना खा चुकने के बाद जा कर देखा, तो हम बीबी पर बिगड़ बैठे—“क्यों जी, जब खेलने लगे, तो तुमने ये कागज उठवा कर क्यों नहीं रखवाए ?”

“हमें क्या खबर, कि कागज फैला कर ताश खेला जाता है ।”

बस, हम जल-भुन कर जान-खताई हो गए, क्योंकि शरीफों की शान में दाग लग गया ! बीबी की क्या मजाल, कि हमारे

रहन-सहन में दखल दे। हमने बात ज्यादा नहीं बढ़ाई, सिर्फ इतना कह कर अपना गुस्सा ज़ब्त किया, कि “मायके चली जा, मायके, जो मेरा खेल देख कर तुझे डाह होती है।”

फिर क्या था, वह भी तो शरीफ की बीबी ठहरी, बोली—
“तुम्हारे जीत-जी मायके क्यों जाऊँ? हमारा घर है, हमारे बच्चे हैं, एक तुम्हारी लापरवाही से क्या हमारा काम रुक सकता है? ये घर किसकी बदौलत चल रहा है.....?”

हम बीच ही में बोल उठे—“हमारी कमाई पर ही इतना घमण्ड!”—इतना कहते हुए हम सरकारी कागज़ों का मातम मनाने लगे। बात जहाँ की तहाँ दब गई।



दूसरी बार का जिक्र है, कि बड़ी लड़की को बिच्छू ने काट खाया। हमारा बड़ा बेटा वहिन का पैर कस कर पकड़े हुए था और वह फरमाता क्या है, कि “बाबूजी, जल्दी रस्सी लाओ, नहीं तो ज़हर आगे चढ़ जाएगा।”

हम इधर-उधर नज़र फेंक कर खड़े हो गए, बोले—“रस्सी नहीं मिलती, पकड़े रहो!”

बेटा भी शरीफ बाप का था। बोला—“अरे मुँह चलाने से दूँद कम नहीं होगा। ज़रा ढूँढ़िए तो।”

बस, फिर क्या था—हमने पकड़ा लड़के का पैर और तीन पछाड़ ज़मीन पर खिलाई और अपने बिस्तर के हवाले

हो गए ! इधर किसने दवा लगाई, किसने बाँधा, हमें क्या पता ? हम शरीफ तो सुख-स्वप्न देख रहे थे !



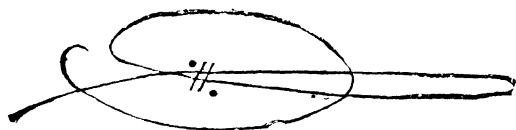
उस दिन बैठे-बिठाए बला आ गई। पानी जोर से गिर रहा था। बीबी के पेट में तेज दर्द था ; छोटा बच्चा बेतहाशा रो रहा था। कोई बीबी का पेट सेक रहा था, कोई छोटे बच्चे को संभाले था, कोई दवा को जा रहा था। हम शरीफ तो बैठक में आरामकुर्सी पर बैठ कर क्रिस्मत को धिक्कार रहे थे ! क्या बला है ये बीबी-बच्चों की भी ? अकेले रहना, अच्छा खाना, बस इनना ही हम शरीफ की शराफत का काम है। बन्दा तो हमेशा अपनी शराफत का लिहाज रखता है ! 'पेट में दर्द है' हुआ करे, क्या गुलाम की तरह दौड़ूँ, हाय-हाय करूँ ? औरतों के पेट में दर्द होना तो एक स्वाभाविक बात है। उसीसे तो कुनवे के कुनवे बढ़ते चले जा रहे हैं ! पेट में दर्द न हो तो क्या ? डॉक्टर ने सौ दफा कहा, कि पाँच बजे शाम के बाद खाना मत खाया करो; पर सुनता कौन है ? इधर भी 'सुनता कौन है', हम शरीफ तो टस-से-मस नहीं होने के ! मर जा बला से !!

नौकरानी बुलाने आई—“बाबू जी ! मालकिन बहुत बेचैन हैं; ज़रा देखें तो चल कर।”

हम बोले—“तो क्या हम डॉक्टर हैं ? डॉक्टर को बुला कर दिखाओ, अगर इतना पैसा कालतू हो गया हो तो!”

हम शरीफ किसी के दुख-दर्द में शामिल होना बिल्कुल फिजूल समझते हैं; क्योंकि हाँ में हाँ मिलाना कोई दर्द बँटाना नहीं है ! कानून, बाहर-भीतर हर मौके पर साथ रहता है, बग़ैर कानून के कदम उठाना अपने को आफत में फँसाना है !

हम शरीफ की शराफत के नमूने आए-दिन देखने और सुनने को मिलते हैं, और जब तक हम-जैसे शरीफ ज़िन्दा हैं, सुनाते रहेंगे। हाँ, दुनिया में आए हैं, तो कुछ करके जाएँगे। अगर आप लोगों को इन नमूनों से दिलचस्पी है, तो समय-समय पर हम अपनी डायरी पेश कर सकते हैं, जो आप लोग 'हमदर्द' होंगे, तो कुछ जरूर सीख लेंगे ! और आप लोग भी बाल-बच्चों के झमेले से बच कर अमन-चैन करते नाम कमाएँगे ! हम शरीफ तो फँस ही चुके हैं। कहावत मशहूर है "गुज़िश्तारा सलावात, आईन्दा रा गेहतियात !"



सेल्समैन

लकता का शहर, पौने आठ बजे सुबह का सुहावना वक्त, और फोर्ड कम्पनी के शोरूम में मैं सेल्समैन ! वैसे तो सेल्समैनों का काम भी काफ़ी ज़िम्मेदारी का होता है ; अधिकतर दिन भर बैठे खटमल मारना और मक्खियों से लड़ना ! पर ग्राहक या मौत का कोई ठिकाना भी तो नहीं होता, कि कब बरसाती मेंह की तरह टपक पड़े । मैं कल ही यहाँ सेल्समैन मुक़र्रर हुआ था, इसलिए अपने हथकण्डे की कारगुजारी दिखाने पर उतावला हो रहा था ।

किस्मत भी कभी-कभी फूट-सी फट पड़ती है । मैं उन्नति की कल्पना से कल्पना कर ही रहा था, कि देखा एक जापानी बबुए-सी मेम अच्छे कपड़े पहने अन्दर आ रही है । मैंने टाई खींच-खाँच कर ठीक की, पिन दुरुस्त किया व कोट के किनारे खींच ही रहा था, कि उसने आ कर अदा से 'गुड मॉर्निंग' किया । मैं इस उल्टी नीति का आदी न था । कुछ दाल में काला-सा मालूम हुआ, पर फिर सोचा, शाबद इसे भी हिन्दुस्तान की

हवा लग गई है। अस्तु, जब उसने टूरिस्ट फोर्ड की ओर निगाह फेरी, तो मेरी वन आई। फौरन हाथ रगड़ते हुए, मूँह की बत्तीसी विस्तार कर बोला—“क्या मैं आपकी कुछ सेवा कर सकता हूँ ?”

वह मोठे स्वर में बोली—“नहीं, नहीं, ज़रा आपको तकलीफ़.....।”

मैंने बीच में ही टोक कर कहा—“एकदम नहीं। उसका ज़िंक ही न कीजिए। निश्चय यह टूरिस्ट ही आपके लिए ठीक पड़ेगी। एकदम नया मॉडल ! सुपर कार !! दुनिया में इसके मुक्काबिले की कोई है ही नहीं !!

वह धोमे से बोली—“सुपर कार ? ठीक है पर.....।”

मैं बीच में ही बोल उठा—“दाम का खयाल क़तई न कीजिए। हज़ार-पाँच सौ किसी के माई-बाप नहीं होते ; क्या इधर क्या उधर ! शुरु में कीमत में क़िफ़ायत करना गुनाह है। सबसे मुख्य चोज़ कार लेते वक़्त ध्यान में रखें, कि वह तेल कितना खाएगी ?”

वह बोली—“हाँ सो तो देखना ही चाहिए, मगर... ..।”

मैंने बीच में ही रोका—“ठीक कहा आपने। मुझे ऐसी ही उम्मीद थी। इसका स्ट्रीम लाइण्ड मॉडल तो बस हवा से बातें करता है। फी घण्टे चार आने पेट्रोल की बचत। इस प्रकार दो साल में कार मुक्त ; फिर कीमत से अधिक बचत ही बचत।

यह तो घण्टे में जितने मील चली जाय, थोड़ा है। आप तो इस मसले को समझती ही होंगी ?”

वह उकताई-सी हो बोली—“हाँ, सो तो मैं कार रख कर देख चुकी हूँ, फेर भी.....।”

मैंने रोड़ा अटकाया—“अहा ! यही तो आप गलती कर रही हैं। छुटाई-बड़ाई पर मत जाइए। अन्दर जगह काफी है और मजबूती में तो (मैं साइड बोर्ड के ऊपर तीन फीट उछल कर कूद पड़ा) इसका सानी दूसरी है ही नहीं ! इसमें लङ्काशायर के सान की स्टील स्प्रिंग है, मुरादावादी कलई है, अबरक के जोड़ हैं ताकि शॉक (Shock) न लगें। हजारों मील चलने पर भी चीं-चपड़ न करेगी। इसी मॉडल में चढ़ कर चेम्बरलेन साहब पीस-मिशन के लिए जाते थे, और कांग्रेस-मैन कांग्रेस के प्रोजेक्ट होने !”

वह प्रभावित हो बोली—“अच्छा !”

मैंने फूल कर सोचा, पड़ाव मार लिया है, बढ़े चलो। बोला— फिर यह एकदम स्वदेशी भी है। मिल-मालिक, मजदूर सब स्वदेशी। सब आप ही के देश के। और कीमत तो बस न पूछिए ! आजकल घर से घाटा दिया जा रहा है। सेल-प्राइस इसकी पूरे पाँच हजार हैं (पर नजदीक सट कर धीरे से) मैं आपसे क्या छिपाऊँ ? मालिक से कह-सुन कर तीन हजार चार सौ चौवन रुपए तीन आने नौ पाई में ही सौदा करा दूँगा ।”

इस पर वह घबड़ा कर बोली—“नहीं, मुझे वह कार नहीं चाहिए। मैं तो.....।”

पर मैं कब बिना कार बेचे छोड़ने वाला था। फौरन बोला—“माफ़ करिएगा। मैंने आपको अपने और-और मॉडल तो दिखलाए ही नहीं। वह कार नहीं पसन्द है, तो इसकी एट सिलेन्डर सेडान बॉडी को देखिए। बड़ी मनमोहिनी है। दिल खुश हो जायगा। कण्ट्रोल ऐसा सच्चा, कि हवा से बातें करते-करते एकदम डेड-स्टॉप कर दीजिए; क्या मजाल कि पेट का पानी भी हिल जाय। मैं बेबी कार तो.....।”

आजिज आ कर इस बार वह पन्थ में पहाड़ अटका कर बोली—“अच्छा, तो मैं जाती हूँ। मैंने सोचा था, कि शायद आप मेरे बेबी को खेलने के लिए कोई तस्वीरदार कैटेलाॅग दे सकेंगे।”



जमादार, खाँ साहब

मारें खाँ साहब को जब यह पता चला, कि उनके ससुर साहब ने उनका नाम पलटन में दे दिया है, तो उनकी रूह रुना हो गई, और वे फौरन घबड़ाए हुए बेगम साहिबा के पास पहुँचे और बोले—“अरी, ओ नेकबख्त, राज़ब हो गया। देखी, अपने हमदर्द अब्बा जान की करतूत !! उन्होंने मुझे दीन-दुनिया का नहीं रक्खा। तुम्हें बेवा बनाने की तरकीब सोच ली; हाय तकदीर !”—इतना कहते ही खाँ साहब सर पकड़ कर वहीं बैठ गए।

बेगम साहिबा, खाँ साहब की हालत नाजुक देख कर परेशान हो गई और बोली—“क्या हुआ, अब्बा ने क्या कर डाला ? जल्दी कहो, तुम्हारी बातों ने तो मेरा दिल दहला दिया।”

खाँ साहब बोले—“नेकबख्त, अभी तो दिल ही दहला है, अब मेरा प्यारा नाम ले-ले कर रोना पड़ेगा।”

इतना सुन कर बेगम साहिब बोलीं—“खुदा के वास्ते कुछ बताओ तो सही, बात क्या है ?”

खाँ साहब मुँह बिचका कर बोले—“अरी बात क्या है, तुम्हारे प्यारे अच्चाजान ने मेरा नाम पलटन में लिखा दिया है, समझी ! और उस पलटन में, जो बहुत जल्द लड़ाई पर कूच करने वाली है !”

बेगम साहिब बोलीं—“या अल्ला, मैं तो समझी, कि कोई आफत आ गई। तुम भी कैसे मर्द हो ? अजी खुश हो, जब तुम नौकर हो जाओगे, तो मेरे लिए अच्छे-अच्छे कपड़े और जेवर बनवाना !”

यह सुन कर खाँ साहब झल्ला कर बोले—“कपड़े-जेवर गए भाड़ में ! तुम्हें हरी-हरी सूझती है, यहाँ दिल पर हाथ रख कर देख, मेरी रूढ़ निकलने का रास्ता तलाश कर रही है.....!”

वह इतना ही कह पाए थे, कि उनके ससुर साहब आ पहुँचे और बोले—“अरे, यह कैसी मातमी सूरत बनाए है ? एक खुशखबरी सुनी, तुमको पलटन में जमादार की जगह मिल गई। बड़ा साहब मेरा बड़ा दोस्त है। उसने तुम्हारी फोटो देखते ही बस जमादार की जगह दे दी। तुम अब एक अफसर हो गए हो, जल्दी उठो, तुमको अभी जाना है, जल्दी चलो !”

इतना कह कर ससुर साहब ने खाँ साहब को किसी तरह तैयार कराया और पलटन में ले जाकर छोड़ आए।



खाँ साहब क्वॉटर में, जो उन्हें पलटन में मिला था, जा कर औंधे मुँह पड़ गए ! शाम को परेड पर चलने का बुलावा आया। आपको सब चीजें मिल चुकी थीं ! आप उन्हें पहन कर तैयार हुए, यह समझ में नहीं आया, कि जमादारी का बिल्ला कहाँ लगता है। कुछ सोचने के बाद आपने जेब में खोंस लिया। जब आप परेड पर पहुँचे, तो साहब ने बिल्ला गायब देख कर पूछा—“बेल बिल्ला किधर है ?”

आपने चट जेब से बिल्ला निकाल कर साहब के सामने पेश कर दिया। साहब ने बिल्ले को कोट में लगाने का हुक्म दिया। आपने उसको कोट में लगा लिया, अब परेड शुरू हुई। खाँ साहब का बुरा हाल था, भारी जूते पैर का कचूमर निकाल रहे थे। अगर साहब ‘राइट’ कहते, तो आप लेफ्ट पैर उठाते ! खुदा-खुदा करके वहाँ से छुट्टी मिली। लुड़कते-पुड़कते क्वॉटर में पहुँचे, अभी बेचारे पूरी तौर से कपड़े भी न उतार पाए थे, कि कहीं से आपको बन्दूक चलाने की आवाज सुनाई पड़ गई। आवाज सुनते ही आप क्वॉटर से निकल कर और सर पर पैर रख कर साहब के बंगले की तरफ भागे। रास्ते में आपकी मुठभेड़ एक सूबेदार साहब से हो गई। खाँ साहब को परेशान देख कर उसने उनका हाल पूछा। खाँ साहब बोले—

“न मालूम कौन कायर कर रहा है। मालूम पड़ता है, कुछ गड़बड़ हो गया है।”

सूबेदार साहब बोले—“जनाब, सिपाही लोग चाँदमारी कर रहे हैं। कल आप को भी करनी पड़ेगी।”—इतना कह कर सूबेदार साहब ने रास्ता लिया, और खाँ साहब मुर्दा फूँक कर लौटने वालों की तरह क्वॉटर में लौट आए और आँधे-मुँह चारपाई पर लेट गए !

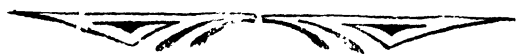
दूसरे दिन खाँ साहब को भी चाँदमारी के लिए जाना पड़ा ! हाथ में बन्दूक लिए आपके हाथ-पैर ऐसे काँप रहे थे, जैसे की मिरगी वालों के काँपते हैं ! आपको एक जगह दिखा कर निशाना लगाने को कहा गया। आपके हाथ तुरी तरह काँप रहे थे, आपने हिम्मत की और आँख बन्द करके बन्दूक का घोड़ा दबा दिया, इधर धोड़ा दबा और दूसरी तरफ शोर शुरू हो गया। आपने आँख खोल कर जो देखा, तो मालूम हुआ, आपकी गोली से साहब बहादुर का टोप गायब हो गया है ! यह देख कर खाँ साहब की पुतलियाँ चढ़ने लगीं। इतने में साहब बहादुर गरजते हुए उनके सर पर चढ़ आए और कड़क कर बोले—“यू मैन, तुम हमको मारना चाहता था ! हम तुमको जेल भेजेगा।”

जेल का नाम सुनते ही, खाँ साहब को चारों तरफ अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देने लगा। आपने चट अपना साफ़ा उतार कर साहब के पैर पर रख दिया. और रो-रो कर माफ़ी

माँगने लगे ! पर साहब बहादुर ने आपको एक हफ्ते की दलेल की सजा दे ही डाली। खुदा-खुदा करके आपने एक हफ्ता मिट्टी ढो-ढो कर काटा। आठवें दिन फिर आप परेड पर पहुँचे। परेड पर हुक्म मिला, कि कल सुबह पलटन यहाँ से बीस मील पर चाँदमारी के लिए जाएगी। बाहर जाने का नाम सुनते ही आप का बुरा हाल हो गया। आपने साहब से बहुत मिन्नतें कीं, कि उनको बाहर न ले जाया जाय। पर साहब की डाँट ने उनकी वाक़ी रही-सही हिम्मत का भी दिवाला कर दिया। दूसरे दिन सुबह पलटन जंगल में जा पहुँची। शाम को आप बदकिस्मती से चहलकदमी के इरादे से बाहर निकल गए। जब आप लौटे, तो अँधेरा हो गया था। आप जैसे ही पलटन के हाते के अन्दर आने लगे, कि पहरे के सिपाही ने जोर से कहा—“हॉल्ट, हू कम्ब्र देयर” (Halt, who comes there?) यह हुक्म सुनने का आपका पहला ही मौका था। आप ऐसे घबड़ा गए कि फौरन भाग खड़े हुए। आपको भागता देख सिपाही ने हवा में फायर किया। फायर की आवाज़ ने आपको और तेज़ दौड़ा दिया। इधर फायर की आवाज़ से सिपाही वगैरह सब खीमों से बाहर आ गए और चारों तरफ़ भागने वाले की तलाश शुरू हुई। और तो कोई नहीं मिला, पर पास ही की एक झाड़ी के अन्दर मिले खाँ साहब, जिनका कि डर के मारे बुरा हाल था। पूछने-पाछने पर पता चला, कि आप ही सिपाही की

आवाज़ से भाग खड़े हुए थे। तीसरे जमादार और सिपाहियों को आपकी हिम्मत का खूब पता चल गया ! उन लोगों ने इनको बेवकूफ बनाने की सोची, और स्कीम तैयार कर डाली। रात को जब खाँ साहब अपने खीमे में सो रहे थे, कि एक सिपाही आप की चारपाई में रस्सी बाँध आया, और बाहर जो सिपाही खड़े थे, उन्होंने खींचना शुरू किया। चारपाई जब हिली, तो आप की आँख खुल गई। धीरे-धीरे चारपाई खसकते देख आप उछल कर चारपाई पर खड़े हो गए और कूद कर बाहर भागे ! जैसे ही आप बाहर निकले, कि सिपाहियों ने पकड़ लिया और बोले—“यही खाँ साहब हैं, लाओ बन्दूक जल्दी से !” इतना सुनते ही खाँ साहब डरे और फटका दे कर बेतहाशा भागे। सुबह तमाम पलटन में और आस-पास खाँ साहब की बहुत तलाश हुई, पर कहीं पता न चला।

इधर खाँ साहब पसीने से तर बेगम साहिबा की सलवार पकड़े गिड़गिड़ा रहे थे, कि ऐ बेगम ! दिन भर मैं तेरी जूती साफ़ किया करूँगा, पर अब पलटन में मत भोजना !



भाभी जान का कमाल

७८ एक नवयुवक के जीवन में एक अवस्था ऐसी आती है, जब वह अपनी दिली दुनिया में एकनई दिल्ली बसाने की फ्रिक करता है; जब हर 'दुष्यन्त' अपनी 'शकुन्तला' के स्वप्नों में अलमस्त रहता है। जब बीसवीं सदी का प्रत्येक मजनूँ अपनी लैला के लिए कॉलेज की लाइब्रेरी, पार्क, एतवार और सनीचर के दिन सिनेमा-घर, और शाम के समय सिविल लाइन में चकर काटा करता है। और, वह दिन भी उनके लिए विशेष महत्त्व का होता है, जब वह सुनता है, कि उसके विवाह का सिलसिला छिड़ रहा है। भाभी और बहन चिढ़ाती हैं— 'भइया, चिट्ठी आई है। जानते हो, कहाँ से आई है ? मिठाई खिलाओ तो बताएँ !' फिर एक हफ्ते बाद — "भइया, फोटो आई है। भला, किसकी फोटो ? जैसे चाँद ज़मीन पर उतर आया हो !"

यह तो खैर, साधारण-सी बात है; किन्तु उस गरीब की हालत को क्या कहिए, जो खुद तो किसी और के प्रेम

की चक्की में पिस रहा हो, और उसके पिता जी किसी अन्य कुमारी को उसके सिर मढ़ रहे हों !

अब आपकी समस्या में आने लगा होगा, कि आखिर यह भूमिका क्यों ? आपका खयाल सही है। हम भी किसी की जुल्फ के पेचों के शिकार बन चुके हैं ! एक तो यों ही यदा-कदा हमारे हृदय रूपी भूतल पर प्रेम रूपी भूकम्प का हमला हुआ करता था। फिर, वह सूरत ! प्राचीन कवियों की तरह उसकी तारीफ में हम आपके सामने एक जिन्दा अजायब-घर या 'फ्रूट-मार्केट' तो रख नहीं सकते, कि उसकी नाक तोते की तरह है, आँखें हिरन की तरह हैं, आँठ विम्या फल की तरह हैं, इत्यादि। बस, इतना ही कहना यथेष्ट होगा, कि हम उससे उतनी ही मुहब्बत करते हैं, जितनी कि हिटलर अपनी मूँछ से, गाँधी बाबा अपने चर्खे से और जिन्ना साहब अपने पाकिस्तान से करते थे !

वह भी आज से नहीं, क़राव छः महीने हुए, हम बाइसिकिल पर जा रहे थे, उधर से वे आ रही थीं सामने से। दूसरे ही क्षण हमने देखा, कि हम ज़मीन पर थे, और दो बाइसिकिलें एक-दूसरे का आलिंगन कर रही थीं ! आपसे कोई चोरी नहीं, वह सूरत देख हम तो टकराना भूल ही गए थे, लेकिन उन्होंने कहा—“अन्धा कहीं का !”

हम बोले—“कोसिएगा तो आप इतमीनान से बाद में। पहले यह देखिए, कि आप को चोट तो नहीं लगी।”

यह सुन कर वह उठ खड़ी हुई। थोड़ा-सा लँगड़ाने लगीं। देखा, पाँव में थोड़ी-सी खरोंच आ गई थी। इस अवसर पर हमने बही बहादुरी दिखाई, जो कि सिनेमा का हीरो दिखाता; अर्थात् फौरन ही धोती से कपड़ा फाड़, पाम ही बम्बे से भिगो कर ले आए और कहा—“लाइये बाँध दें।” इस पर भी क्या कुछ गुस्सा बाक़ी रह जाता? फिर हम अपनी वाइसिकिल उठाने लगे, तो हाथ से छूट गई। दुबारा उठाने की कोशिश की, परन्तु उठाई न गई बेतहाशा, मुँह से एक हल्की चीख निकल गई। हमारे हाथ में बेहद दर्द हो रहा था। उन्होंने व्यग्रता दिखाते हुए कहा—“आपको ज्यादा चोट लग गई!”

“नहीं, कोई बात नहीं। ठीक हो जायगा।”

वे बोलीं—“नहीं, आप फौरन ही अस्पताल जाइए। कहीं हड्डी तो नहीं टूट गई।”

हमने कहा—“आपको अलवत्ता टिंबर आइडिन लगाने की ज़रूरत है। कहीं घाव पक न जाए।”

वे मुस्कुरा कर—जैसे बिजलियाँ चमकीं—बोलीं—“चलिए, दोनों चलें।”

साइकिलें, ताँगे पर लादी गईं, और चले अस्पताल! हमारी ओर उनकी सहानुभूति और भी बढ़ गई थी, जब उन्हें मालूम हुआ, कि हमारी कोहनी की हड्डी उखड़ गई है। परस्पर परिचय हुआ। हमारा रोआँ-रोआँ खुश था। चलते समय उन्होंने फिर कहा—“आपको चोट ज्यादा आ गई!”

हमने कहा—“अच्छी साइत से हमारी बाइसिकिल टकराई, कि आपसे परिचय का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अब यह बताइए, कि यह देखने के लिए, कि आपकी चोट अच्छी हो गई, हमें आपके दरे-दौलत पर हाज़िर होने की इजाज़त है ?”

लज्जानत हो मुस्कुरा कर उन्होंने कहा—“नमस्ते !”

उस समय की उनकी लज्जानत आँखें और वह मुस्कराहट हम पर विन्चेस्टर राइफल-सा काम कर गई। यह थी हमारी शुरुआत !

किन्तु, हमारी सोने की दुनिया जब मिट्टी में मिल गई, जब हमने सुना, कि अब हमारे विवाह की बातचीत हो रही है। फिर खबर आई, कि लड़की की फोटो भी आई है। फिर सुना, कि पिता जी ने हमें उसके सिर मढ़ने का इरादा भी पक्का कर लिया है। हमारी स्थिति बही हो गई, जो इस समय भारतवर्ष की है अर्थात् बिना हमारी स्वीकृति के हम बेलिगेरेण्ट (Belligerent) करार दे दिए गए !

अब हमारे सामने सबसे बड़ा मसला यह था, कि प्रेयसि रूपी स्वराज्य पाने के लिए, पिता जी रूपी वॉयसरॉय के पास किस सर तेज या जयकर को सन्धि के लिए भेजा जाय। खुद तो पिता जी से कुछ कहने की हिम्मत न थी, और न हमें विश्वास ही था, कि वे हमारी बात मान जाएँगे; बल्कि वे अपना इरादा जल्दी ही पूरा कर दिखावेंगे। माता जी से भी असली बात बता नहीं सकते थे। अस्तु, इस मामले

में हमने भाभी को ही अपना हथियार और सलाहकार बनाया । वे राजी भी हो गईं । हमने उन्हें साफ-साफ जता दिया था, कि हम अगर शादी करेंगे तो उन्हीं से, अन्यथा नहीं ।

भाभी ने कहा—“भइया, तुम पहले उनसे हमारा परिचय करा दो । दोस्ती के बहाने हम उन्हें घर ले आएँगे । अगर वे माता जी को ज़रा भी प्रभावित कर सकें, तो हम उनको राजी करने की कोशिश करेंगे । अगर माता जी को अपनी तरफ़ मिला लिया, तो फिर तुम्हारा काम आसानी से हो जायगा !”

एक दिन हम नहा कर गुस्लखाने से निकले ही थे, कि देखा कि वे और भाभी दोनों मोटर से उतर रही हैं और दोनों डॉइंग-रूम की तरफ़ आ रही हैं । चूँकि हम उस वक़्त सिर्फ़ तौलिया लपेटे हुए थे, इसलिए सामने पड़ भी नहीं सकते थे, चट से फिर गुस्लखाने में दाखिल हो गए । करते भी क्या ? उसी रास्ते से हो कर हम अपने कमरे में जा सकते थे । और बाहर यों नहीं निकल सकते थे, क्योंकि हम गुस्लखाने में साथ धोती नहीं ले गए थे । हमारी मुसीबत का अन्दाज़ा लगा सकते हैं आप ? हम उस काल-कोठरी में बन्द थे और वह भी अपनी राज़ी से ।

हम बैठे-बैठे कोस रहे थे उस मकान बनाने वाले को, जिसने इस बेढंगे तरीक़े से इसको बनाया था और फिर भाभी की अक़ल को, कि वे भी वहाँ जमी बैठी थीं, यह नहीं, कि ज़रा

देर के लिए अपने कमरे में ले जातीं। और अब देखा, कि माता जी भी वहाँ आ गईं, हमारी रिहाई की सारी उम्मीदें खत्म हो गईं! मजबूरन दरवाजे की दरार से झाँक कर ही सन्तोष कर लेना पड़ा। उधर हमारी ढुँढ़ाई मच रही थी। हम डर रहे थे, कि कहीं किसी को यह याद न आ जाय, कि हम नहा रहे हैं, नहीं तो इसी हालत में निकलना पड़ेगा। लेकिन खैरियत यह हुई, कि वे समझीं कि हम कहीं बाहर चले गए हैं।

किन्तु, इसका नतीजा हमें भुगतना पड़ा, जब हम शाम को उनके यहाँ पहुँचे। वे बाहर वरामदे ही में बैठी हुई थीं। हमें देख कर अन्दर चली गईं। फिर नौकर से कहलवा दिया, कि उनके सिर में सख्त दर्द है। इस समय नहीं मिल सकतीं। हमने सोचा, कि हे ईश्वर, यह कैसा सिर-दर्द, कि हमारी सूरत देखते ही पैदा हो गया! अभी तो भली-चंगी बाहर बैठी थी। हम माता जी के पास पहुँचे।

वे बोलीं—“दर्द-वर्द तो कुछ भी नहीं। अपने कमरे में बैठी होगी, जा कर देख लो।”

इजाजत मिल ही गई थी। हमने वहाँ जा कर पूछा—“मैं अन्दर आ सकता हूँ?”

वे बोलीं—“क्या नौकर ने आपको नहीं बताया, कि मेरे सिर में दर्द हो रहा है?”

हमने उत्तर दिया— ‘हम माफ़ी माँगने आए थे, कि कल जब आप मेरे घर तशरीफ़ ले गई थीं, तो हम बाहर चले गए थे !’

अब तो उनकी वाणी में बेहद आग थी। कहने लगीं— “क्यों झूठ बोलते हैं आप ? आप घर पर ही थे। मैंने आपके गाने की आवाज़ सुनी थी। लेकिन उससे क्या ? मैं आपसे मिलने थोड़े ही गई थी। आप जाइए, मेरे सिर में बहुत दर्द हो रही है।”

हमें याद आया, कि नहाने वक़्त हम चीख-चीख कर गा रहे थे। तबीयत तो आई, कि हम अपने गले को ही घोंट डालें। रास्ते भर अपनी तक़दीर को कोसते आए, कि हमारी जन्म-कुण्डली के सातवें स्थान पर क्यों खामखवाह केतु जी अपना कौतुक दिखा रहे हैं ?

घर आए तो भाभी हमें सज्जीदा देख कर पूछने लगीं— “क्या बात है ?”

‘हम उबल पड़े— या तो तुम माता जी से साफ़-साफ़ कह दो, कि हम उस लड़की से शादी नहीं करेंगे। वरना हम घर से निकल जाएँगे।”

“आखिर बात क्या है ? क्यों आग उगल रहे हो ? शान्ति से बताओ।” जब ज़रा तबीयत ठुसठुई, तो हमने सारा किस्सा सुनाया। वजाय हमसे सहानुभूति दिखाने के, भाभी खुश हो रही थीं। कहने लगीं— “भइया, तुम अन्धे हो, अन्धे।

अच्छा, अगर हम तुम्हारे दोनों काम पूरे करा दें, तो हमें क्या इनाम दोगे ?”

“क्यों जले पर नमक छिड़क रही हो, भाभी ?”

“दस-दस रुपए की शर्त, और वह भी इस हफ्ते के अन्दर !”

“कुछ जादू-टोना करोगी क्या ?”

तुम्हें इससे क्या ? लेकिन हमारी एक बात माननी पड़ेगी। जैसा हम कहें, वैसा ही करना होगा।”

“माना।”

“तो, कल शाम को चार बजे, बड़ी-सी मूँछ और छोटी-सी दाढ़ी लगा कर तैयार रहना। ऐसी सफ़ाई से लगाना, कि नक़ली न मालूम पड़े। समझे ?”

“यह क्या तमाशा है ? हमें नुमाइश में रख कर टिकट लगाने का इरादा है क्या ?”

“हमारी शर्त याद रखना, नहीं तो हमने हाथ धोए !”

मरता क्या न करता ! बहुरूपिया बन कर चार बजे तैयार हो गए। देखा, भाभी इन्तज़ार कर रही थीं। पहुँचे भी कहाँ, फ़ोटोग्राफ़र की दूकान पर। फ़ोटो उतारी गई !

पाँच-छः दिन बाद भाभी सजी-सजाई कमरे में आई। कहने लगीं—“तैयार हो जाना घण्टे भर में। बाहर चलना है।”

“क्यों, हमें फिर बन्दर बनाओगी क्या !”

“नहीं, जितनी अच्छी तरह सजना हो, सज लेना ?”

“आखिर कहाँ घसीटे ले जा रही हो ?”

इसका उत्तर महज यह था, कि तैयार रहना। घण्टे भर बाद सुना, कि भाभी चिल्ला रही हैं भइया ! ओ भइया ! हम बाहर आए, देखा कि भाभी मोटर में बैठी हुई हैं, और साथ में वे भी थीं। उन्होंने हमें देख कर गर्दन मोड़ ली, शायद यह जताने के लिए, कि उन्हें यह न मालूम था, कि हम भी साथ चल रहे थे।

उधर तो हमारे दिल में ऐसी धड़कन हो रही थी, कि मानों बनारस की सड़कों पर इक्के दौड़ रहे हों, और उधर भाभी की यह शरारत, कि न मालूम कहाँ की बेमतलब की बातें गढ़ रही थीं।

घूमते-घामते पार्क में पहुँचे। भाभी का हुक्म हुआ, कि यहीं बैठा जायगा। बैठे ! इतने में भाभी ने हमें, एक चिट्ठी निकाल कर दी, और कहा पढ़ो। चिट्ठी हमारे पिता जी के नाम थी। मुख्तसर-सी चिट्ठी थी। यह लिखा था, कि हमें आपके लड़के से शादी नहीं करनी।

“कमाल किया भाभी !”—हमारे मुँह से बेतहाशा निकल पड़ा—“यह तुम्हारी ही कारस्तानी मालूम पड़ती है ?”

भाभी ने उत्तर दिया— भइया, हमने तुम दोनों (जबरा जबरान की चातुरी देखिए) के पीछे जेल जाने का काम किया है। तुम तुले हुए थे, कि उस लड़की से शादी नहीं

करेंगे। इसीलिए हमने तुम्हें बहुरूपिया बनाया था, उस दिन ! तुम्हारी फोटो, और पिता जी के नाम से चिट्ठी लिख हमने वहाँ भेज दी। उन्होंने भी सोचा होगा, कि गेस मुच्छन्दर ! बदशक्त लड़के को कौन अपनी लड़की व्याहे, उन्होंने मनाही लिख भेजी। और भैया ! तुम जानते हो, ये तुमसे उस रोज क्यों नाराज हो गई थीं ?”

फिर उनसे पूछा—“बता दें ?”

उन्होंने मुस्कुरा कर, शर्म से गर्दन नीची कर ली।

पै ! इस मुस्कुराहट का क्या मतलब था ? हमारे दिल की धड़कन जैसे बन्द हो गई !

भाभी बोलीं—“जब ये उस दिन हमारे यहाँ आई थीं ! माता जी ने इन्हें बताया था, कि तम्हारा विवाह तय हो गया है। हमने इनके चेहरे का उतरना देख लिया था। देखो भइया ! हमने माता जी के कान में पहले ही भनक डाल दी है, अगर इस समय भी तुम कुछ न कह सके, तो कायर ही रहोगे। और हाँ, मैं मोटर लिए जा रही हूँ। थोड़ी देर में भेज दूँगी। मुझे घर जाना जरूरी है।”

अब इससे ज्यादा आपको कुछ और जानने का हक नहीं है !



घनश्याम की सजनी

घनश्याम !....घन....श्याम !!...आज मेरे प्राण तुम्हारे ही हाथ में हैं। तुम एक गरीब मजदूर और मैं एक लखपती हूँ तो क्या; लेकिन, आज...आज उसे मेरे पास नहीं पहुँचा जाते हो, तो सच जानो, कल मेरी लाश इस घर से निकलेगी। फिर रोज़ तुम्हें शराब कौन पिलाएगा ? किसके रुपए से मज्जा उड़ाओगे, और मुफ्त का डेरा रहने के लिए कौन देगा ? घनश्याम...मेरे प्यारे दोस्त ! लो, एक गिलास और लो। देखो, कितनी अच्छी शराब है !

प्यारे शाह के हाथ से शराब का गिलास ले कर घनश्याम गटू-गटू उतार गया।

घनश्याम गोरखपुर का रहने वाला था। प्यारे शाह के गोले में चावल के बोरे ढोया करता था। अच्छा लम्बा-तगड़ा जवान, उम्र २५ के लगभग; बात बनाने में चतुर और हँसमुख; इसी कारण वह प्यारे शाह से बहुत कुछ हिल-मिल गया था। गोरखपुर से जब उसकी नवविवाहिता पत्नी, सुखिया,

का पत्र आता, प्यारे शाह से ही उसे पढ़वा कर सुना करता और जवाब भी उन्हीं से लिखवा कर वह भेजा करता था। प्यारे शाह के आग्रह पर ही उसने उसे अपने पास बुला लिया था। चिथड़ों में छिपे सुखिया के निखरे हुए सौन्दर्य को देख कर शाह जी अवाक रह गए। उन्होंने अपना जाल फैलाना शुरू किया। सुखिया के रहने के लिए अपना एक घर बिना किराए के दे दिया। प्रति मास सात रुपए वह उसे इसलिए दे दिया करते थे कि उनके छोटे लड़के को खेलाया करे। यह सब केवल घनश्याम के आर्थिक अभाव को दूर करने के लिए नहीं, किन्तु कुछ और ही मतलब से किया गया था। पर, इतना करने पर भी, जब सुखिया ने उनके प्रति किसी प्रकार का आकर्षण अथवा कृतज्ञता का भाव न दिखाया, तो प्यारे शाह निराश हो चले। बल-प्रयोग के साधनों से युक्त रहने पर भी, घनश्याम की याद आते ही उनके हाथ-पैर ढीले पड़ जाते थे। फिर भी शाह जी हिम्मत हारने वाले नहीं थे। इस जीवन में ऐसे-ऐसे कितने बीढ़ड़ काम वह सफलतापूर्वक कर गुजरे थे। उन्होंने अब घनश्याम पर अपना जादू डालना शुरू किया था। अब उसी से जब-तब शराब मँगाते और कुछ पैसे दे देते। अब तो शाह जी अपनी पाशविक वासनाओं को शान्त करने के लिए जो कुछ भी करते, उसमें घनश्याम को भी शामिल रखते। धीरे-धीरे उसे भी शराब पिलाने लगे। अब वह भी प्यारे शाह के साथ पतन के मार्ग पर अग्रसर हुआ। शाह जी

इतने दिनों के बाद अपने कुचक्र में सफल होने की आशा कर पाए थे। घनश्याम अब एक पतित प्राणी था। शराब पिला कर, उसकी मुट्ठी गर्म कर जो चाहें आज उससे वह करा सकने की उम्मीद करते थे।

प्यारे शाह ने हाथ से गिलास लेते हुए कहा—“कैसी शराब है, दोस्त ?”

“बहुत बढ़िया, मालिक !”

“बस आज ही तुम्हारी वफादारी का इम्तहान है, घनश्याम ! देखो, काम कर दो, तो फिर जिन्दगी-भर का दुःख मिट जायगा, कल ही से मजदूरी छोड़ दोगे और बैठे-बैठे रोटियाँ तोड़ा करोगे। लो एक गिलास और लो !”

घनश्याम ने ललचाई आँखों से गिलास की ओर देखते हुए उसे ले लिया और एक साँस में खाली कर उसे एक ओर रख दिया। शाह जी ने फिर कहना शुरू किया—“दोस्त, तुम्हारी जिन्दगी में एक ओर दुःख है, दूसरी ओर मौज ! आज जो चाहो, खरीद लो। लो, इस काम के इनाम की रकम में पहिले ही दिए देता हूँ !”

शाह जी ने टन्-टन् कर पच्चीस रूपए घनश्याम के सामने गिन दिए।

२

घनश्याम रुपए ले कर जब शाह जी के घर से कुछ दूर चला गया, तो खड़ा हो कर एक बार खूब खिलखिला कर

हँसा। फिर बड़बड़ा उठा—“बड़ा पतित है! मुझी से कहता है कि अपनी औरतया को पहुँचा दो!! सुखिया सुने, तो भाड़ू से उनकी खबर ले, और मुझे वह-वह सुननी पड़े कि बस...!!”

घनश्याम घर की ओर बढ़ा। शीतल हवा के झोंके रह-रह कर उसके सिर के लम्बे-लम्बे बालों को सहला जाते थे। घनश्याम कुछ सोच न सका कि क्या करना चाहिए। यह तो निश्चित था कि कल वह शाह जी द्वारा अपने डेरे से निकाल दिया जाएगा, और इस शहर में निराश्रय हो जाएगा। नहीं, इतने ही पर वह दम न ले लेगा, बड़ा दुष्ट है! जरूर कुछ बखेड़ा खड़ा करेगा। मुमकिन है, चोरी का भूठा इलजाम लगा कर पुलिस के हवाले कर दे, और उसके पीछे-में सुखिया की ओर कदम बढ़ावे। और नहीं, तो दो-चार गुण्डों को रुपए दे कर, जब कभी सुखिया अकेली हो, उसे पकड़ मँगवावे। शाह को वह खूब जानता है। वह कब क्या सोचता है, यह भी वह बतला सकती है। उससे बैर मोल ले कर आरा-जैसे शहर में खाना-कमाना मुश्किल है।

घनश्याम एकाएक चिन्तित हो उठा। लाख सोचने पर भी शाह जी के चंगुल से निकलने का उसे कोई उपाय न सूझ पड़ा। इसी उधेड़-बुन में वह घर पहुँचा। सुखिया इन्तजार में जगी बैठी थी। जाते ही पूछ बैठी—“आज कहाँ इतनी देर की? शाम को बनी रसोई क्या अब तक गर्म रहती है!”

“लो ये रुपए ! यह तुम्हारी फीस है !! आज रात का शाह जी ने तुम्हें अपनी बैठक में बुलाया है ।

सुखिया सन्नाटे में आ गई, वह कुछ न समझ सकी; अवाक् पति की ओर देखती रही । जब उसने पति को नशे में चूर देखा, और बातें कुछ समझ में आईं, तो वह आवेश से काँपती हुई बोल उठी—“देखो, इस तरह की बातें मत किया करो । अगर अपना और अपने उस ‘मालिक’ का भला चाहते हो, तो फौरन ये रुपए उसे वापस कर आओ, और नौकरी को भी लान मारते आओ ! समझे न !!”

इसके बाद उसके हृदय का आवेग आँखों की राह वह निकला ।

घनश्याम ने जो कुछ कहा था, महज मजाक में । सुखिया को शाह के यहाँ वह भेजे या वहाँ वह जाय, ऐसी कोई बात उसके दिल में न थी । उसे अब बड़ा अफसोस हो रहा था कि उसने इस बात का जिक्र ही क्यों उसके सामने किया । वह सुखिया को लड़खड़ाती आवाज में समझाने लगा—कि उसने रुपया ले लिया है, तो क्या इसी से वह इतना पतित हो गया ।

बाहर सायबान में घनश्याम के चार-पाँच मजदूर साथी सो रहे थे । वे भी गोरखपुर के थे । रोने की आवाज सुन कर वे अन्दर आ गए । घनश्याम ने, जो कुछ हुआ था, साफ-साफ कह सुनाया । वे घनश्याम पर, शाह जी का साथ

करने के कारण, खूब बिगड़े। एक ने सलाह दी कि यह डेरा छोड़ दो; सुखिया को, जहाँ तक जल्दी हो, घर पहुँचा आओ; लेकिन औरों ने यह बुज्जदिली समझा। लोग तरह-तरह की तरकीबें बताने लगे। अन्त में फेकना ने कहा—“अगर मुझे पाँच रुपए दो, तो आज ही ऐसा उपाय कर दूँ कि शाह ससुरे की नानी मरे, जो कभी सुखिया की ओर नज़र उठा कर भी देखे। साथ ही तुम से कोई बैर का कारण भी नहीं रह जायगा !”

“लो, अभी लो ! पाँच क्या मैं सात देता हूँ ! कोई ऐसा उपाय कर दो, तो इस खुशी में सबको मैं भर पेट मिठाई खिला दूँ। आखिर ये पच्चीस रुपए किस काम आएँगे !” —यह कहते हुए घनश्याम ने सात रुपए फेकना के हाथ में गिन दिए।

३

रात के ग्यारह बजे का समय है। फीकी चाँदनी चारों ओर छिटकी है। चौक पर एक-आध पान की दूकान को छोड़ कर शहर की दूकानें बन्द हो गई हैं। सड़कें निर्जन और सुनसान हो रही हैं। घनश्याम लम्बे-लम्बे डग डालता हुआ प्यारे शाह के गोले की ओर चला जा रहा है। पीछे-पीछे बस्त्राभूषणों से सुसज्जित तथा पुष्ट शरीर वाली एक मँभोले क्रुद की स्त्री भी तेजी से साथ-साथ चल रही है।

घनश्याम के पहुँचते ही शाहजी ने उसे छानी से लगा लिया और कहा—“जीते रहो दोस्त !!”

‘सरकार, बड़ी मुश्किल से आई है। जरा होशियार रहिएगा !’

“अच्छा, तो अब तुम जाओ। मैं इस फन में उस्ताद हूँ। मना लूँगा।”—शाह जी उस रमणी की ओर ललचाई आँखों से देखते हुए बड़ी बेसब्री से बोले।

घनश्याम उस निर्जन अहाते से निकल कर बाहर फाटक पर बैठ गया। वह स्त्री घूँघट काढ़े थी इसलिए शाह जी अच्छी तरह उसका चेहरा देख नहीं पाते थे। वे काँपते हुए हाथों से उसका घूँघट हटाने को बड़े कि उसने झपटकर लैम्प बुझा दिया। कमरे में बाहर की चाँदनी के कारण एक धुँधला-सा प्रकाश रह गया, जिसमें कोई चीज़ साफ नहीं दिखाई पड़ सकती थी।

पहिले तो उस स्त्री ने शाह जी को धर्म और नीति क उपदेश किया और यह भी बता दिया कि मैं तुम्हें समझाने आई हूँ। मुझसे छेड़-छाड़ करोगे, तो ठीक नहीं होगा। पर शाह जी उसकी हर एक हरकत को नखरे में शुमार करते गए। आखिर उनसे जब नहीं रहा गया, तो भद्दे शब्दों में उसका सम्बोधन करते हुए उससे लिपट गए।

किन्तु यह शाह जी के लिए बड़ा महंगा पड़ा। उस स्त्री ने इस तरह उन्हें झकझोर दिया कि वे चारों खाने चित्त गिरे। फिर तो लगी उनकी वह खबर लेने कि शाह जी का नशान

जाने कहाँ भाग गया। लगे 'बाप ! बाप !!' चिल्लाने। लेकिन उस निस्तब्ध रात में सुनता ही कौन था। जब कभी शाह जी दरवाजे से निकल कर भागना चाहते, तब वह उन्हें पकड़ कर कर्श पर दे मारती। उसने उन्हें इतना पीटा कि आखिर कर्श पर पड़े कराहने लगे।



दूसरे रोज़ सुबह सब ने सुना कि शाह पर डाकुओं ने हमला किया था। वे कुछ ले तो नहीं गए, लेकिन उन्होंने बेचारे शाह की आधी जान ले ली। दूसरी ओर, शाह जी मन-ही मन सुखिया को गालियाँ दे रहे थे। किन्तु यह किसे खबर थी, कि न चोर आए थे, न डाकू, न सुखिया का ही कोई क्रसूर था; बल्कि यह सारी करामात तो फेकना की थी, जो एक रात के लिए घनश्याम की सजनी बन कर शाह का मनोरञ्जन करने गया था !



हारने का शुकराना

॥ बाबू खुशवक्त्र राय के लिए सचमुच जिन्दगी में कभी वुरे दिन नहीं आए। आपका शुमार उन चलते-पुर्जे कायस्थों में है, जो लहर गिन कर भी रुपयों की गठरी जमा कर लेते हैं। आप जिला रायबरेली में बकालत करते हैं और कानूनी उलझनों में बिना माथा-पच्ची किए हुए खासी रकम कमा लेते हैं और कभी बकालत के पेशे की निन्दा नहीं करते। आप नज्जायर के क्रायल नहीं हैं, और न उन्हें ढूँढ़ने के लिए कानूनी रिसालों में गोते लगाते हैं। मवकिलों से फीस माँगना आप अज्जाब समझते हैं। कभी-कभी उन्हें घर जाने के लिए किराए के पैसे भी अपनी तहवील से दिला देते हैं। फिर भी आपकी आमदनी औमत दर्जे के वकीलों से कहीं ज्यादा है। उसका रहस्य हम आप नहीं जान सकते, और न जानने की कोशिश ही करनी चाहिए। दूसरे वकीलों के यहाँ हमने मवकिलों को जीत कर उतना उत्साहित होते नहीं देखा, जितना बाबू खुशवक्त्र राय के मवकिलों को हार

कर उत्तेजित होते देखा है। मुकदमों का जीतना आप अशुभ समझते हैं, क्योंकि जीतने पर मुकदमेबाजी की इति-श्री हो जाती है। हारना आप अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि हारने से अपील की निगरानी का और कम से कम तजवीज सानी का दरवाजा खुल जाता है। यहाँ तक, कि दुनिया ने जीतने का शुकराना सुना होगा, पर हमको एक ऐसा केस मालूम है, जिसमें बाबू खुशवक्त राय ने हारने का शुकराना लिया है, और सर्वाकल ने खुशी तथा बड़े ताव से वह शुकराना अदा भी किया।

लाल साहब बहोरा रायबरेली के प्रसिद्ध रईस हैं। काँग्रेसी हलचल के पहले आपके इलाका से हस्व-ज्वररत रुपयों की वर्षा हुआ करती थी। केवल बीस हजार के मुनाफे में पाँच मोटरें, तीन जोड़ियाँ और दो हाथी दरवाजे पर भूमा करते थे। टमटम और बहलियों की तो कोई गिनती ही नहीं थी। वेदखली बन्द हो जाने से असमय नजरानों की रकम जाती रही, इसलिए इधर तीन बरस के अन्दर हाथी बिक गए, और मोटरें ऑर्डर में नहीं रहीं, फिर भी उनकी आधी दर्जन ठठरियाँ मोटरखानों की शोमा बढ़ा ही रही हैं, और देखने वाले अनायास कह पड़ते हैं, “खण्डहर बता रहे हैं, इमारत अजीम थी।” लाल साहब का ताल्लुक एक अहीरिन से, ब्रजभापा में कहिए एक गोपिका से, हो गया था और उसके लिए लाल साहब ने एक ‘महल’ बनवाने के वास्ते

महज २५०) रु० का पत्थर मँगाया था। रिसायत के कायदे के अनुसार पत्थर की कीमत अदा नहीं हुई थी, हालाँकि लाल साहब ने तक्राजो के वक्त पत्थर वाले की खातिर में और उसकी आमद-रफ्त के किराए में पचासों रुपए खर्च कर दिए थे लेकिन बदतमीज पत्थर वाले ने विलाखिर लाल साहब के ऊपर नालिश कर ही दी। अर्जी-नालिश बाबू खुशबक्त राय को दिखाई गई और तै पाया, कि जवाबदेही जरूर की जाय और ऐसे ठाठ से मुकदमा लड़ा जाय, कि पत्थर वाले को मुँह की खानी पड़े, वरना बुरी तमसील कायम हो जायगी और चूना वाले, सिमेण्ट वाले, लोहे वाले और न जाने कितने वाले प्रोत्साहित हो जाएँगे और सब की डिगरी चुकाने में रियासत तबाह हो जाएगी।

जवाब लगाया गया, कि लाल साहब ने खुद पत्थर खरीद नहीं किए, बल्कि मुसम्मात गुजराती देवी गोपिका के मुख्तार-आम की हैसियत से मँगाया था, इसलिए मुसम्मात मजकूर का फरीक मुकदमा बनाया जाना लाजमी है, और उसी के खिलाफ डिगरी सादिर फर्माई जाए। बाबू खुशबक्त राय ने बहस बड़े जोरों से की और बाहर निकल कर लाल साहब से शुकुराना तलब किया, लेकिन दूसरे दिन जज मदनमोहन गुप्ता ने फैसला लाल साहब के खिलाफ सुनाया और पत्थर वाले की डिगरी कर दी।

हुस्न इत्तिफ़क़ ! पत्थर वाले का नाम विनोद बिहारी गुप्ता था, और बाबू खुशवक़््त राय को जज की जाति-बिरादरी की खासी हैसियत मिल गई। लाल साहब को ताब जो आया, तो उन्होंने फ़र्माया, की बाबू साहब चाहे २५०) रु० के २५००) रु० रियासत को खर्च करना पड़े, लेकिन यह रक़म बस-चलते पत्थर वाले को अदा न की जाय ! बाबू खुशवक़््त राय ने कहा, कि इस नालायक़ जज के रहते हमारा-आपका कोई बस न चलेगा, और डिगरी की इजरा में भी यह गुप्ता की मदद करेगा। हाँ, और इसको आप यहाँ से हटा सकें तो सब कुछ मुमकिन हो जाय।

“कोई तरकीब ?”—लाल साहब ने वयग्र हो कर पूछा।

“तरकीब तो लाजबाब है” बाबू खुशवक़््त राय ने भेदभरी निगाहों से कहा—“मगर मुनासिब खर्च दरकार है।”

“कितना खर्च होगा ?”—लाल साहब ने उत्साहित हो कर पछा।

“सिर्फ़ दो सौ रुपए।”—बाबू खुशवक़््त राय ने दाढ़िने हाथ की दो उँगलियों को सीधा करके कहा।

“मञ्ज़ूर है !”—लाल साहब ने दृढ़ स्वर में मोहर लगाई।

किन्तु नक़द रुपए फ़ौरन कहाँ मिलें, समस्या यह थी; और बाबू खुशवक़््त राय यह जानते थे, कि ताब ठण्डा होने पर चिड़िया उड़ जाएगी ! चुनाऊँचे बाबू खुशवक़््त राय ने वह समस्या भी आनन-फ़ानन हल कर दी।

लाला गुलजारी लाल शहर के बैङ्कर और रईस उस वक्त लेजिस्ट्रेटिव काउन्सिल के उम्मीदवार थे, और न केवल लाल साहब, खुद, बल्कि उनके कई रिश्तेदार काउन्सिल के वोटर थे, चुनावचे सौदा होते देर न लगी और 'मनकि फलों बल्द फलों तहरीर करके लाल साहब ने फौरन २००) लाला गुलजारी लाल से कर्ज ले कर बाबू खुशवक्त राय के हवाले किए, और निश्चिन्त हुआ, कि आज ही रात की गाड़ी से बाबू खुशवक्त राय लखनऊ रवाना हो जाएँगे और कल काम करके वापस आ जाएँगे।

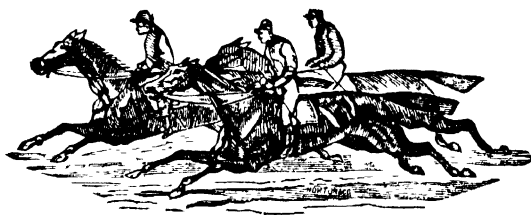
दूसरे दिन बाबू खुशवक्त राय सदर कचहरी में दिखाई नहीं पड़े, हालाँकि शहर की बेञ्च की इजलास में काम करते हुए पाए गए।

तीसरे दिन बाबू खुशवक्त राय लाल साहब के हाथ में हाथ मिलाए हुए खफीफा के सामने से गुजरे और चमकते हुए चेहरे से कहा—लाल साहब, आदाब अर्ज ! लाइए शुकुराना, मुबारकबाद ! रात ही में तार से ऑर्डर भेजवाया। न कहिएगा, जज साहब की कुर्सी खाली थी, और लञ्च-रूम में चार्ज दिया जा रहा था।

लाल साहब ने फौरन सोने की अँगूठी उतार कर बाबू साहब के हवाले की, क्योंकि नक़द रुपए न थे और इन्तज़ाम करके देने में ताव जाता था।

बतलाने की आवश्यकता नहीं है, कि बाबू खुशवक्तराय को तजवीज सुनाने के दिन ही यह मालूम था, कि जज खफीफा का तबादला हो चुका है, केवल उन्होंने मौके का फायदा उठाया था ।

क्या कोई वकील यह बतला सकता है, कि उसने जीतने का शुकराना इस हारने के शुकराने से ज्यादा पाया है ?



शादी या बर्बादी

१॥ त के दस बजे थे। कार लॉरेन्स रोड पर स्थित एक आली-
शान मकान के सामने रुकी।

“क्या मैं आपका शुभनाम पूछने की धृष्टता कर सकती हूँ?”—कमला ने कार से उतरते हुए कहा।

“जी, मैं किशोर के नाम से पुकारा जाता हूँ।”—युवक ने, जो अभी तक कार के भीतर ही बैठा हुआ था, उत्तर दिया।

“ऊपर चलिए, कुछ जलपान तो कर लीजिए।”

“एक आवश्यक कार्य से मुझे एक जगह जाना है, अतएव अभी क्षमा चाहता हूँ: फिर किसी समय दर्शन करूँगा।”

“तो कल आप चाय के समय अवश्य आइए। चाचा जी आपकी आज की बहादुरी के बारे में सुन कर आपसे मिलना चाहेंगे।”

“मैं आने का प्रयत्न करूँगा।”

“मैं बाट देखती रहूँगी।”—कमला ने किशोर की ओर देखते हुए कहा। आँखें चार हुईं। कमला भेंप गई।



कमला अमीर घर की इकलौती लड़की थी। एक स्थानीय कॉलेज में बी० ए० का अध्ययन कर रही थी। मरते समय उसके बाप, जो लाहौर के प्रसिद्ध बैरिस्टर्स में गिने जाते थे, चार लाख रूपए छोड़ गए थे, और उनकी एक मात्र उत्तराधिकारिणी थी कमला। कमला आजकल अपने चाचा के साथ रहती थी। शुद्ध पश्चिमी वातावरण में पलने के कारण कमला के कहीं आने-जाने में रोक-टोक न थी। आज शाम को जब कमला दिवाली देखने के लिए बाहर जा रही थी, तो उसके चाचा यह चाहते हुए भी, किरात को बाहर न जाय, उससे ऐसा कहने का सहास न कर सके थे।

कमला एक नौकर को गैरेज में कार रखने का आदेश करके किशोर से विदा माँग कर सीधे अपने चाचा के कमरे में जा पहुँची।

“कमला आज इतनी देर कैसे हुई?”—कमला के चाचा, नरेन्द्रनाथ, ने उत्सुकता से पूछा।

“चाचा जी, आज तो सौभाग्य से ही मैं एक दुर्घटना का शिकार होते-होते बची हूँ। शाम को कॉलेज का काम करते-करते कुछ थक-सी गई थी। मैंने नौकर को कार तैयार करने के लिए कहा, खयाल यह था, कि आउटिंग (सैर) भी हो

जावेगी और साथ ही साथ अनारकली में दिवाली की रौनक भी देख आऊँगी। जब मैं अनारकली से घूम कर लौटी और लॉरेन्स गार्डन की ओर कार को बढ़ाया तो सहसा तीन-चार गुण्डों ने मेरा रास्ता रोक लिया ; इससे पहले, कि मैं कुछ कहती; उनमें से एक मेरे हाथ से स्टीयरिंग ह्वील छीनने लगा, और शेष गुण्डे भी मेरी कार के फ़ुट-बोर्ड पर चढ़ गए। मेरे मुँह से एक चीख निकली। एक गुण्डे ने मेरे मुँह को दबाने का प्रयत्न भी किया। अभी यह प्रयत्न जारी ही था, कि सामने से एक युवक दौड़ता हुआ आया और उसने दूर से ही गुण्डों को ललकारा। गुण्डे उसे देखते ही भाग निकले। उस युवक ने मुझे ढाढ़स बँधाया और मेरे मना करने पर भी वह मुझे कोठी तक छोड़ गया। मैंने उसे कल चाय के लिए निमन्त्रण दिया है, ताकि आप भी उससे मिल सकें। यदि वह बेचारा ठीक समय पर न पहुँचता, तो न जाने मुझ पर क्या.....।” कमला आगे कुछ न कह सकी। वह बहुत भयभीत हो रही थी।

“बेटा, मैं तो शाम को तुम्हारे अकेले बाहर जाने के पहिले ही से विरुद्ध हूँ। आज भी मैंने तुम्हें इसलिए नहीं रोका, कि कहीं तुम गुस्सा न हो जाओ।”—नरेन्द्रनाथ ने खाँसते-खाँसते कहा।

कमला को नरेन्द्रनाथ की यह नुक़ता-चीनी पसन्द नहीं आई, तो भी वह चुप रही—अवसर ही ऐसा था।

२

दूसरे दिन किशोर ठीक समय पर कमला की कोठी पर पहुँचा। कमला ने नरेन्द्रनाथ से उसका परिचय कराते हुए कहा—“आपने ही मुझे गुण्डों से बचाया था।”

नरेन्द्रनाथ ने कृतज्ञता प्रगट की। चाय लाई गई। तीनों पीने लगे। भारतीयों में एक बड़ा गुण, या अवगुण; कुछ भी कहिए, यह है, कि वे नवपरिचित से भी ऐसी खुल कर बातें करते हैं, मानों वह कोई सगा-सम्बन्धी हो। आप ट्रेन में चले जाइए; दो मुसाफिरों को, जो एक-दूसरे का नाम तक न जानते हों, बातें करते सुनिए, तो आपको सहज में ही इस बात का अनुभव हो जाएगा। वे अपनी घरेलू बातों को भी एक-दूसरे से बतलाने में सङ्कोच न करेंगे। ट्रेन के दो-चार घण्टे के संग में ही वे बहुत हिलमिल जाते हैं। नरेन्द्रनाथ भी इस भारतीय प्रकृति के अपवाद न थे। कुछ ही मिनटों में वह किशोर से बेतकल्लुफ हो कर बात-चीत करने लगे। बातों ही बातों में उन्होंने किशोर से पूछा—“आप यहाँ क्या काम करते हैं?”

“मैं यँ ही लाहौर अपने व्यापार के सम्बन्ध में आया हुआ हूँ। कलकत्ते में हमारा एक छोटा-सा जूट का कारखाना है। दो मास मैं यहाँ व्यतीत कर चुका हूँ, अब एक-आध मास पश्चात् लौटने वाला हूँ। रहना तो मैं यहाँ और भी चाहता था, पर क्या करूँ, लड़ाई के कारण कारखाने का काम बढ़

गया है और कलकत्ते में मेरा उपस्थित रहना अत्यावश्यक है ।”—किशोर ने उत्तर दिया ।

“काम अपनी उपस्थिति के बिना सुचारु रूप से चल ही नहीं सकता ।”—कमला के चाचा ने हाँ में हाँ मिलाने हुए कहा ।



नरेन्द्रनाथ स्वतन्त्र विचारों वाले पुरुष थे । उन्होंने कमला को पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी थी, इसलिए कमला के यहाँ किशोर का आना-जाना बढ़ने लगा । किशोर ने गुण्डों को भगाने में जो वीरता दिखाई थी, वह कमला के हृदय में घर कर गई थी और किशोर के प्रति पहिले श्रद्धा के रूप में और फिर प्रेम के रूप में प्रगट होने लगी । किशोर भी कमला का प्रेम पाकर प्रसन्न था । कमला सर्व गुण सम्पन्ना युवती थी । भगवान ने उसको रूप, यौवन और धन प्रचुर मात्रा में दे रखे थे । कोई भी युवक कमला का प्रेम पा कर प्रसन्न क्यों न होता ?

कमला और किशोर प्रति दिन वायु-सेवनार्थ साथ जाते । कभी लॉरेन्स बाग की सैर होती, तो कभी रावी नदी की, कभी शहादरे जाते; तो कभी शालामार बाग में । एक दिन शालामार बाग के एक सुरम्य मैदान में बैठे हुए वे शाहजहाँ की सौन्दर्य-प्रियता पर विचार कर रहे थे, कि किशोर ने कहा—“कमला, शाहजहाँ धन्य था, कि उसे मुमताज महल-जैसी सच्चा प्रेम करने

वाली स्त्री मिली थी। उनका प्रेम अमरत्व को प्राप्त हो चुका है। क्या हम ऐसा प्रेम नहीं कर सकते?"—यह कहते हुए किशोर ने कमला को अपने वक्षस्थल से लगा लिया। कमला के समस्त शरीर को मानों बिजली ने झटक दिया !

उस दिन कमला और किशोर ने विवाह करने का निश्चय कर लिया।

कमला ने अपना इरादा नरेन्द्रनाथ पर प्रगट किया। वह कमला की बात सुन कर कुछ क्षण के लिए चुप हो गए और फिर कहने लगे—“कमला, मैं जानता हूँ, कि किशोर एक योग्य युवक है, किन्तु हमें याद रखना चाहिए, कि आज से पन्द्रह दिन पहिले वह हमारे लिए एक पूर्णतया अपरिवित व्यक्ति था। हमें यह भी तो पता नहीं कि वह अपने विषय में जो कुछ कहता है, वह सत्य है या भूठ। विवाह तुम दोनों का जीवन-पर्यन्त रहने वाला सम्बन्ध है, अतएव भावावेश में आ कर तुम्हें कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे पीछे पड़ताना पड़े !”

“आपको एक भद्रपुरुष के वचनों पर अविश्वास करने का कोई अधिकार नहीं। चूँकि यह प्रश्न केवल मेरे भावी जीवन से सम्बन्ध रखता है, अतएव इस विषय में अन्तिम निर्णय करने का मुझे ही अधिकार है। आपसे इस विषय में कोई परामर्श नहीं लेना चाहती, सूचना मात्र देने को आपके पास आई हूँ।”—कमला ने रोष-पूर्ण स्वर में कहा।

नरेन्द्रनाथ के मुख पर तमाचा-सा लगा। कुछ क्षण के बाद हिम्मत बटोर कर उन्होंने कहा—“कमला, प्रेमावेश में तुम किशोर में कोई अवगुण ढूँढ़ने पर भी नहीं निकाल सकती। मेरा कहा मानो, तो इस विषय पर पुनः विचार करो और हो सके, तो मुझे ही अपने लिए वर के चुनाव का अधिकार दे दो।”

“नहीं चाचा जी, यह नहीं हो सकता। वह दिन लट गए जब बड़े-बूढ़े कन्याओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध व्याह देते थे। मुझे खेद है, मैं आपकी बात नहीं मान सकती। चाहे अच्छे हों, चाहे बुरे, मैं तो किशोर के साथ ही शादी करूँगी। मेरे निश्चय में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।”—कमला कहती ही चली गई। कमला ने जब सिर ऊपर उठा कर देखा, तो उसके चाचा बाहर जा चुके थे, और वह अकेली रह गई थी।

३

कमला और किशोर की शादी सिविल मैरिज ऐक्ट के अनुसार हो गई। कमला उन दिनों बहुत प्रसन्न थी। हनीमून के लिए किशोर ने सीलोन को पसन्द किया।

एक दिन बात ही बात में उसने कमला से कहा—“यदि तुम अपने चार लाख रुपयों में से एक लाख रुपया निकाल लो, तो बड़ा अच्छा हो, क्योंकि युद्ध-काल है, और इस समय यदि कलकत्ते वाले कारखाने का काम बढ़ सके, तो बहुत लाभ होगा। यहाँ से सीलोन हो कर फिर हम सीधे कलकत्ते ही

जवेंगे। यहाँ अपने सामने वैङ्क से रुपया निकलवाने में आसानी भी रहेगी, पीछे कलकत्ते से पत्र-व्यवहार करने से शायद वैङ्क वाले अड़चनें डालें।”

कमला ने एक लाख रुपया निकलवा लिया। नरेन्द्रनाथ को जब यह समाचार मिला, तो वह कमला के पाम पहुँचे और कहा—“बेटा, तुम सीलोन का लम्बा सफ़र कर रही हो, और अपने साथ एक बड़ी रकम ले जा रही हो, यह काम खतरे से खाली नहीं। मेरी राय में रुपया यहीं छोड़ जाओ, पीछे आवश्यकतानुसार मँगा लेना।”

इससे पूर्व कि कमला कुछ उत्तर देती, किशोर बोल उठा—“चाचा जी, इस बात की चिन्ता न कीजिए, मैं अपनी जेबों में लाखों रुपये ले जाने का अभ्यस्त हूँ। अपने कारोबार में मुझे कई बार ऐसा मौका पड़ा है।”

कमला के चाचा अधिक न बोल सके। यात्रा में सावधान रहने का आदेश दे कर वे कमरे से बाहर हो गए।

४

सीलोन में कमला और किशोर को पहुँचे हुए आठ दिन हो चुके थे। कोलम्बो के सबसे बढ़िया होटल में उनका निवास-स्थान था। कमला को उन दिनों एक स्वर्गीय आनन्द का अनुभव हो रहा था। उस दिन प्रातःकाल ही किशोर ने कमला के गले में बाहें डालते हुए कहा—“कमला, आज मैं अपने व्यापार-सम्बन्धी

एक कार्य के लिए कोलम्बो से पन्द्रह-बीस मील दूर जाऊँगा
अनएव शाम को ही मेरी प्रतीक्षा करना ।”

किशोर यह कह कर चला गया । कमला ने किशोर के बिना बड़ी कठिनता से दिन काटा, शाम को वह किशोर की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करती रही । रात हो गई, पर किशोर न आया । कमला की चिन्ता बढ़ने लगी । किशोर के विषय में हजारों विचार उसके मन में उठने लगे । उसे निश्चय हो गया, अवश्यमेव किशोर के साथ कोई दुर्घटना घटी है, नहीं तो यह कैसे सम्भव था, कि वह नियत समय पर न आता ।

रात कमला ने बड़ी कठिनाई से काटी । मबेरा होते ही वह सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के दफ्तर में पहुँची और पुलिस-कप्तान से किशोर के लापता हो जाने की बात कही तथा प्रार्थना की, कि शीघ्र ही किशोर की खोज करवाएँ ।

“मिसेज कमला, क्या आप बतला सकती हैं कि जब किशोर होटल से गए थे, तो उनके पास कैश तो न था ?”—पुलिस-कप्तान ने घटना की तह तक पहुँचने का प्रयत्न करते हुए कहा ।

“जी हाँ, उनके पास एक लाख रुपए के नोट थे ।”—कमला ने उत्तर दिया ।

“इतना रुपया साथ ले कर जाने का कोई विशेष कारण ?”—पुलिस कप्तान ने गम्भीर मद्रा बनाते हुए कहा ।

कमला के पास इस बात का कोई उत्तर न था ।

“मिस्टर किशोर का कारोबार कहाँ पर है ?”

“जी, वह कलकत्ते की किशोर जूट मिल्स के स्वामी हैं।”

“अच्छा, तो आप जा सकती हैं। विश्वास रखिए, मि० किशोर को ढूँढ़ने में कोई कसर न रक्खी जाएगी। क्या आप कल इसी समय पता लेने के लिए आ सकेंगी?”

“अवश्य।”—कहती हुई कमला ने हॉटल का रास्ता लिया।

दूसरे दिन कमला फिर पुलिस-दफ्तर में पहुँची! उसका हृदय उत्कण्ठा से धड़क रहा था। वह ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी, कि किशोर के विषय में कोई सन्तोषजनक खबर मिले।

“आपके साथ किशोर की शादी हुए कितने दिन हुए हैं?”
—पुलिस-कप्तान ने कमला को कुर्सी पर बैठने का सङ्केत करते हुए पूछा।

“बारह दिन।”—कमला ने सकपकाते हुए उत्तर दिया।

“उससे पछिले कब से किशोर आप से परिचित थे।”

“एक महीने से।”

“हूँ, ठीक है।” कप्तान गुनगुनाया और फिर खुफिया पुलिस के गजट की एक पुरानी फाइल को खोल कर एक फोटो की ओर सङ्केत करके उसने पूछा—“क्या मिस्टर किशोर की आकृति इस आदमी से मिलती है?”

कमला फोटो देखकर चिल्ला उठी—“हाँ, हाँ, यह किशोर की ही फोटो है, अन्तर केवल इतना है, कि इसमें वह साफ़ पहिने हुए और मूँछें रक्खे हैं। मैंने उन्हें सदैव हैट में और

कर्ज-न-कैशन में देखा है।” कमला समझ न सकी, कि उस फोटो के साथ किशोर का क्या सम्बन्ध है।

“सिसेज कमला मुझे भय है, कि आप किसी गहरे पड़यन्त्र का शिकार हुई हैं।”—पुलिस कप्तान ने मुस्कुराते हुए कहा।

कमला अवाक् रह गई ?

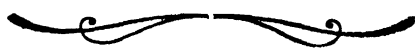
“कल मैंने कलकत्ता-पुलिस से तार-द्वारा सूचना मँगवाई जिससे पता चला है, कि कलकत्ते में, न तो कोई किशोर जूट मिल है, और न वहाँ की किसी जूट मिल का किशोर नाम का कोई मालिक ही है।” पुलिस-कप्तान कहता गया—“इस सूचना के मिल जाने पर मुझे निश्चय हो गया, कि आपको धोखे में रखने के लिए ही किशोर ने आपको अपना गलत पता बतलाया, और उसके लिए कारण भी थे। जैसा कि आपने स्वयं मुझे कल बतलाया था, कि उनके पास जो एक लाख रुपया था, वह आपका था और उसे आपने अपनी शादी के बाद उनको रखने के लिए दिया था। गलत पता बतलाए बिना किशोर उस रकम को नहीं हड़प सकता था।”

कमला को मानों साँप छू गया। वह चुप थी।

“मुझे अब निश्चय हो गया है।”—पुलिस कप्तान फिर बोला—“कि किशोर और इस फोटो में उतरा हुआ आदमी एक ही है। इस गज्रट से प्रतीत होता है, कि वह एक बड़ा भारी धूर्त है। इसने दो बार पूर्व भी सम्भ्रान्त महिलाओं को आपके समान ही ठगा है। उसका कार्यक्रम यह रहा है, कि किसी

औरत को अपने गुण्डों-द्वारा कष्ट में फँसा कर और स्वयं उसके रक्तक के रूप में उपस्थित हो कर उस स्त्री का विश्वास-पात्र बन जाता है और समय पाकर जेवर इत्यादि ले उड़ता है। आपके साथ तो उसने शादी तक का ढोंग रच लिया। बदमाश, इस समय न जाने कहाँ का कहाँ पहुँच चुका है ?” पुलिस-कप्तान ने पाँव ज़मीन पर खटखटाते हुए कहा और किसी अन्य कार्य में व्यस्त हो गया।

कमला को सारा संसार घूमता हुआ-सा मालूम हुआ। पुलिस-दफ़्तर से अपने होटल के लिए जब वह लौट रही थी, तो उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों रास्ते पर चलने वाला प्रत्येक आदमी उसकी सिविल मैरिज की कहानी जानता हो और उसकी खिल्ली उड़ा रहा हो !!



चचा छक्कन ने कारतूस भरे

ॐ यँ ! कायँ !! कायँ !!!

शाम का समय था। चचा छक्कन शेख साहब के साथ नित्य की भाँति शतरंज खेल रहे थे। मिर्जा साहब हुक्का पीते जाते थे और कभी-कभी किसी अच्छी चाल पर खुश हो कर दोनों की तारीफ भी करते जाते थे, कि इतने में शेख साहब बोले—“देखिए, जरा सँभल कर चलिए, उठा लूँ वजीर ?”

चचा छक्कन ने कहा—‘भई, माफ करना, गलती हुई, यह चाल वापस लेता हूँ !’—यह कहते हुए चचा छक्कन ने अपना बड़ा हुआ मोहरा वापस कर लिया और दूसरी चाल चली।

बाजी अच्छी-खासी खेल रहे थे, कि दोबारा बेपरवाही से गलत चाल चल दिए। शेख साहब ने कहा—‘देखिए, आप फिर बहके, माफ लूँ घोड़ा ?’

चचा छक्कन ने ‘लाहौल-विला कूवत’ कह कर अपनी चाल वापस कर ली और अब अधिक ध्यान से चाल चलने लगे।

मिर्जा साहब ने कहा—“न जाने क्या बात है, आज चचा छक्कन ध्यान से नहीं खेल रहे हैं, अगर वे हारे, तो शेख साहब, आप आज पड़ली ही बार जीतेगे !”

चचा छक्कन बोले—‘क्या मजाल, ऐसों को तो बरसों शतरंज खेलना सिखाऊँ, हज़रत मोहरे-तक तो पहिचानते नहीं, ये मुझे क्या मात देंगे ?”

इतने में फिर कायँ ! कायँ !! कायँ !!! हुई। चचा छक्कन का ध्यान ज़रा ही-सा विसात पर से हटा था, कि शेख साहब जोर से बोले—“लीजिए, यह किश्त और मात ! बड़ा दावा था अपने खिलाड़ी होने का ! ये हमें शतरंज खेलना सिखाएँगे ?”

चचा छक्कन ने खिसिया कर विसात उलट दी और बोले—“मिर्जा साहब, मुना आपने ? शेख साहब क्या कह रहे हैं ! इनको भी अपनी शतरंज पर नाज़ होने लगा ।” इतने में फिर कायँ ! कायँ !! कायँ !!!

“लाहौल-बिला कूव्वत !”—चचा छक्कन बोले—“मैं भी सोच रहा था, कि मुझे आज क्या हो गया है, जो चाल चलता हूँ ग़लत हो जाती है, मुना मिर्जा साहब आपने ? यह सब करामात इस कायँ-कायँ की है ।

मिर्जा साहब—‘कैसी कायँ-कायँ !”

चचा छक्कन—“मिर्जा साहब, आप भी कमाल करते हैं; ये क्या आसमान पर काजें उड़ी जाती हैं ।”

फिर कायँ ! कायँ !! कायँ !!!

मिर्जा साहब—“ठीक कहते हो, काजें बोल रही हैं; आ गया शिकार का मौसम । है शेख साहब इरादा ?”

शेख साहब—चचा छक्कन से कहिए, ये चले, तो हम भी चलें ।”

चचा छक्कन—“कोई काम तो नहीं है, हाँ कारतूस भरने होंगे ।”

शेख साहब—“क्यों, क्या कारतूसों की बाज़ार में कमी है, जो यह दर्दे-सर मोल लिया जाए ?”

चचा छक्कन—“कमी तो नहीं है, मगर उन पर भरोसा नहीं ।”

बात यह थी, कि गत वर्ष एक शिकार से ये लोग बिलकुल खाली हाथ लौटे थे; और क्यों खाली हाथ न लौटे, जब चार नम्बर का छर्रा दो सौ गज से चलाया गया था । चचा छक्कन बहुत मेंपे हुए थे, क्योंकि दोस्तों ने उन्हें खूब बनाया था ! चचा छक्कन को बहुत तंग करके, यारों ने कहा कि इसमें आपकी कोई खता नहीं, यह तो कारतूसों की खराबी से हुआ है । विलायत वाले भी अब इमानदारी नहीं बरतते, न जाने कारतूसों में क्या-क्या भर देते हैं, तभी तो बन्दूक खाली जाती है, नहीं तो क्या मजाल, जो आपका निशाना खाली जाता ! यह बात चचा छक्कन के जी में घर कर गई थी और उन्होंने सोच लिया था, कि अब अपने हाथ ही के भरे हुए कारतूस चलाएँगे । शिकार से

वापस आते ही चचा छक्कन ने पहला काम यह किया कि, कारतूस भरने की मशीन और अन्य आवश्यक सामान खरीदा, मगर तब से कारतूस भरने और शिकार पर जाने की नौबत ही न आई थी।

मिर्जा साहब बोले—‘ठीक है, उस बार शिकार में कैसी परेशानी हुई थी।’

शेख साहब—“इन्हीं कारतूसों के कारण न, नहीं तो भला यों खाली हाथ लौटने !”

चचा छक्कन—“तो फिर कल रात ही को चलेंगे, शेख साहब आप भी, और मिर्जा साहब आप भी तैयार हो कर आ जाइयेगा।”

यह निश्चय हुआ, कि अगली रात को मिर्जा साहब और शेख साहब टाँगा लेकर बारह बजे के लगभग चचा छक्कन के घर पर आ जाएँगे और वहीं से शिकार को चला जाएगा।

दूसरे दिन रात को बारह बजे के लगभग दोनों महाशय चचा छक्कन के मकान पर पहुँचे, दरवाजा खटखटाया, तो चचा छक्कन की आँखें खुलीं और बोले—“कौन ?”

मिर्जा साहब—“मैं हूँ, शेख साहब हैं और टाँगा भी।”

चचा छक्कन—“अभी हाज़िर होता हूँ।”

थोड़ी देर में चचा छक्कन लालटेन लिए मरदाने में आए और दरवाजा खोल कर अपने दोस्तों को अन्दर बुला लिया। फिर यह कह कर, कि ‘मशीन ले आऊँ’ अन्दर चले गए। इस

खयाल से कि चची की नांद खराब न हो, बिना रोशनी के कोठरी में जाकर मशीन तलाश करने लगे। खड़बड़ से चची की आँख खुली, तो वे बबरा कर 'बिल्ली-बिल्ली' कहती हुई उठ बैठी।

चचा छक्कन—“हूँ, हूँ, मैं हूँ, मैं।”

चची—“यह आधी रात को आप बावर्चीखाने में क्या कर रहे हैं? कहीं बच्ची का दूध न गिरा देना, क्या चाहिए, बतलाओ मैं ला दूँ।”

चचा छक्कन—“लाहौल-बिला कुव्वत ! रात को कुछ सूझता ही नहीं। कोठरी के धोखे में बावर्चीखाने में चला आया। कारतूस भरने की मशीन ढूँढ़ रहा हूँ।”

चची—“आओ मैं बतलाऊँ, इस सन्दूक में रक्खी है।”— यह कह कर वे अपने कमरे में चली गई।

चचा छक्कन ने सन्दूक खोला ही था, कि मिर्जा साहब की आवाज आई—“अरे भाई आओगे भी ! कारतूस भी भरने हैं और तालाब पर भी पहुँचना है, सुबह हो गई, तो शिकार क्या खाक मिलेगा ?”

चचा छक्कन जल्दी से बाहर निकले, तो चची चौंक कर बोलीं—“यह तुम कारतूसों की मशीन लिए जा रहे हो या नन्हें की टोपी ? क्या यही पहन कर शिकार में जाओगे ?”

चचा ने जो देखा, तो सचमुच मशीन के बजाय नन्हें की टोपी हाथ में लिए हुए थे।

इतने में शेख साहब ने कहा —“भई, एक बज रहा है, बस दो घण्टे बाकी हैं।”

कुछ तो चची के व्यंग्य से और कुछ दोस्तों के तकाजे से चचा छक्कन कुछ बदहवास से हो गए। खिसिया कर जल्दी से मशीन निकाली और सन्दूक बन्द कर दिया।

अब चचा छक्कन चारों ओर देख रहे हैं, कि मशीन कहाँ गई। देर हुई, तो चची भी आ गई। उनको देख कर चचा कहने लगे—“अभी सन्दूक से मशीन निकाली थी न जाने कहाँ रख दी, अभी-अभी तो निकाली है, ज़रा उधर मेज़ पर तो देखना।”

चची को यह सुन कर हँसी आ गई और वे कहने लगीं—
“और यह बग़ल में क्या दबाये हुए हो?”

चचा छक्कन ने आदत के अनुसार “लाहौल विला .फुव्वत” कहा और जल्दी से बाहर चले गए।

चचा छक्कन—“लो मिर्ज़ा साहब, ज़रा बन्दूक को अच्छी तरह साफ़ तो कर डालो। बैसलीन सब जगह से निकाल देना। और शेख साहब तुम ज़रा इधर आ कर कारतूस तो—।” यह कह कर चचा ने अँगोठी पर से बारूद का डिब्बा उतारा। आल्मारी में से छर्रा, टोपियाँ और डाटें निकाल कर जल्दी-जल्दी कारतूस भरने शुरू कर दिए।

“क्यों मिर्ज़ा साहब चालीस कारतूस काफी होंगे न?”—
चचा छक्कन ने पूछा।

काफ़ी हैं !”—मिर्ज़ा साहब ने बन्दूक में गज़ डालते हुए कहा ।

“तो अभी भर देता हूँ ।”—यह कह कर चचा छकन अपने काम में लग गए । कोई तीन बजे इस काम से छुट्टी पाई । हर चीज़ पर एक दृष्टि डाली और टाँगे पर सवार हो कर तालाब की ओर चल दिए । अभी सुबह होने में देर थी, ज़रा-ज़रा-सा चाँद भी निकल रहा था, कि ये सब लोग तालाब के किनारे पहुँच गए । चचा छकन ने इधर-उधर देख कर कहा—“देखिए, वह ईख का खेत सबसे अच्छी जगह जान पड़ती है, पानी के करीब भी है और छिपने का अच्छा मौक़ा है । मेरे साथ-साथ चले आओ, मगर बातें कोई साहब न करें, न सिगरेट सुलगाएँ, नहीं तो शिकार उड़ जाएगा ।”

यह हिदायतें करते हुए आगे-आगे चचा छकन और पीछे-पीछे दोनों मित्र उस खेत में घुसे । खेत में टखनों-तक पानी था, वह भी बहुत ठण्डा । मगर शिकार के शौक में आगे बढ़ते गए । गन्नों की अन्तिम पंक्ति में पहुँच कर सब लोग दम साध कर बैठ गए । कायँ-कायँ की आवाज़ पास ही से आ रही थी, मगर चूँकि चाँद की रौशनी मध्यम थी, इसलिए शिकार दिखाई न पड़ता था । सिर्फ़ सुबह की रोशनी का इन्तज़ार था । कोई घण्टा-भर इन्तज़ार किया होगा, कि क़ाज़ों की एक टुकड़ी कोई बीस गज़ पर पानी में बैठी दिखाई पड़ी । चचा छकन ने धीरे से मिर्ज़ा साहब और शेख़ साहब को वह टुकड़ी

दिखाई और होठों पर अँगुली रख कर चुप रहने का इशारा किया ।

अब बन्दूक चलाने का अच्छा मौका था, और फासला इतना कम था, कि एक फायर में कई काजों के मर जाने का विश्वास था । पहिले तो चचा छकन ने ज़रा अपने हाथों को बगलों में दबा कर गर्म किया, फिर 'विसमिल्लाह' कह कर बन्दूक उठाई । टोपी चलने की आवाज़ हुई और साथ ही काजों के उड़ने की । कारतूस ने खता की थी । चचा छकन ने तुरन्त दूसरी नाल उड़ती हुई काजों पर चलाई, मगर उसका भी यही फल हुआ । चचा छकन को क्रोध आ गया और उन्होंने जल्दी-जल्दी कारतूस बदल-बदल कर फायर करने शुरू किए, मगर परिणाम वही का वही रहा, यानी सिर्फ टोपी चटख कर रह गई ।

शेख साहब जल कर बोले— कभी पहिले भी कारतूस भरे थे ?”

चचा छकन ने इसका तो कोई उत्तर न दिया, लेकिन हसरत से कहने लगे—“बड़ा अच्छा शिकार हाथ से निकल गया ।”

मिर्जा साहब बोले—“ज़रूर कारतूस भरने में भूल हुई, नहीं तो, आज क्या खाली हाथ जाते ?”

चचा छकन— भूल की भी एक ही कही, 'मियाँ दूकानदार से अच्छी तरह पूछ कर और उसके सामने नमूने के कारतूस

मर कर लाया था और चला कर इनमीनान भी कर लिया था । यह तो भाग्य की बात है ।”

क्राजें सब उड़ चुकी थीं, और इन्तजार करना बेकार था । अच्छा-खामा दिन निकल आया था । किसान खेतों की ओर आ रहे थे । पैर इतने ठण्डे हो गए, कि जान पड़ता था, कि शरीर में उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है । अब घर लौटने के बिना कोई और चारा ही नहीं था, अतः चले और शीघ्र ही घर पहुँच गए । चचा छकन को कारतूसों के न चलने का बड़ा दुःख था । इससे उनके कमाल में बढ़ा लगता था: अतः घर आते ही उन्होंने पहिला काम यह किया, कि चाकू निकाल कर कारतूसों को काटने लगे । पहिला ही कारतूस काटा था, कि मिर्जा साहब और शेख साहब हँसी के मारे लोट गए । चचा छकन, जो पहिले ही से जले हुए थे, अब और भी जल गए और गुस्से से बोले—“आप लोगों को भी बेवक्त की हँसी आती है । भला यह हँसने का कौन मौका है ?”

शेख साहब और मिर्जा ने कटे हुए कारतूस की ओर इशारा किया और फिर अधिक जोर से हँसने लगे । चचा छकन को और भी क्रोध आ गया । कहने लगे— लानत है, जो आज से आप ऐसे लोगों से दोस्ती रखे । यह मुझसे हमदर्दी हो रही है या मेरी हँसी उड़ाई जा रही है ?”

यह देख कर, कि चचा छकन हाथ से निकले जा रहे हैं,

मिर्जा साहब ने हँसी रोक कर कहा—‘बिगड़ने की क्या बात है ? कारतूस चलते कैसे, आपने उनमें भरा क्या है ?’

चचा छकन—“आपने भी मुझे अनाड़ी समझ रखा है ? भरा क्या है ? बारूद है, छरा है, डाट है, और भी कुछ भरा जाता है ?”

शेख साहब—“भरा तो यही जाता है, मगर यह आपने बारूद भरी है ?”

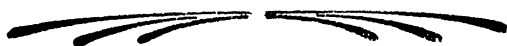
चचा छकन—“और क्या ? (फिर चौंक कर) लाहौल-विला-कूवत, अरे यह बारूद नहीं, तो और क्या है ।”

मिर्जा साहब चुपके से उठ कर अँगोठी पर गए और दो डिब्बे उतार कर चचा छकन के सामने रख दिए ।

चचा छकन—“इसका मतलब ?”

मिर्जा साहब—“ज़रा इनको खोल कर देखिए ।”

चचा छकन ने जो डिब्बों को खोल कर देखा, तो एक में बारूद थी और दूसरे में लिपटन की चाय । अवाक रह गए और ‘लाहौल-विला-कूवत’ कहते हुए चचा छकन ने चाय का डिब्बा घर से बाहर फेंक दिया और दोनों दोस्तों से खिसिया कर बोले—“मरदूद हो, जो अब तुम्हारे साथ शिकार को जाए ।”



हमारी पड़ोसिन

भजहब और इखलाक में पड़ोसी या हमसाया का बड़ा रुतबा है। इस्लाम और दूसरे धर्मों के आचार्यों ने इसे प्रायः इतनी रियायतों का हकदार माना है, कि अगर आप धार्मिक दृष्टिकोण से इसका मतलब समझना चाहें, तो बिना सोचे उसे 'मदज़ल्ला' कह सकते हैं, और अगर गाँधीवाद के दृष्टिकोण से उसे देखना हो, तो बिना शिष्टाचार के उसे 'हरिजन' समझ सकते हैं।

संक्षेप में यह कि हमारे पूर्वजों ने आँख बन्द करके और किसी 'राउण्ड टेबिल कॉन्फरेन्स' की आवश्यकता समझे बग़ैर वह सब अधिकार पड़ोसियों को प्रदान कर दिए हैं, जो आप वर्षों से 'डोमिनियन-स्टेट्स' या 'होम-रूल' के ज़रिए हासिल करने के स्वप्न देख रहे हैं। परन्तु समाज के आधुनिक क्रम को देखते हुए यह प्रश्न पैदा होता है, कि क्या आजकल का पड़ोसी भी केवल पड़ोसी होने के कारण इन तमाम रियायतों का हकदार हो सकता है, जिन्हें पॉलिटिक्स (राजनीति) में

‘Essence of independence’ (स्वतन्त्रता का सार) कहा गया है !

इसमें सन्देह नहीं कि हमारा मत इस विषय में खानगी है, और मामला हर सूरत से ‘अन्तर्राष्ट्रीय संघ’ के निर्णय के योग्य है; इसलिए इसे स्थान नहीं दिया जा सकता। अस्तु—

इस जहाँगर्दी के ज़माने में हमें बहुत-से पड़ोसियों से सावकाश पड़ा है, जिनमें से कई एक की मेहरबानियों और कई एक की बेइन्साफ़ियों की हमारे हृदय पर ऐसी गहरी छाप पड़ गई है, कि आज उनकी बदौलत हमारा दिल अच्छा-खासा ‘रंग-महल’ कहा जा सकता है !

पड़ोसियों और पड़ोसिनों की बहुत-सी क्रिमों हैं—जैसे शराबी पड़ोसी, नमाज़ी पड़ोसिन, सभ्य पड़ोसी, खूद-सूरत पड़ोसिन, सवाली पड़ोसी, अजाली पड़ोसिन, तुम्हारा पड़ोसी और हमारी पड़ोसिन, वगैरह वगैरह ।

इस प्रकार अगर पड़ोसियों और पड़ोसिनों की क्रिमों लिखी जाएँ, जो अच्छी खासी ‘गुल्जारे नसीम’ तैयार हो सकती है, लेकिन न आपको इतनी लम्बी ‘दास्ताँ’ सुनने की फुरसत है, न हमें सुनाने की ‘मोहलत’ ! इन सब क्रिमों में से केवल आखिरी क्रिम, यानी हमारी पड़ोसिन, का विस्तृत वर्णन सुन लीजिए ।

हमारी पड़ोसिन सौभाग्य या दुर्भाग्य से बेवा हैं और फ़िलहाल सात बच्चों की माँ हैं, जिनमें से केवल एक लड़का है ।

यह लड़का, उनके कथनानुसार, परदेस में मुलाजिम है। बाक़ी छः लड़कियाँ हैं, जो हमारे खयाल में तो सब ही अपने घर-बार वाली हो चुकी हैं।

हमारी पड़ोसिन की उम्र 'गवर्नमेण्टो-पेंशन' के लगभग होगी, परन्तु इनकी आवाज़ का कड़ाका, जिस्म का मुटापा और चाल का धमाका ऐसी चीज़ें हैं, कि सूरत देखने से पहले युवती होने का खासा भ्रम हो सकता है।

लड़कियाँ अधिक होने के कारण हमारी पड़ोसिन को एक यह भी फ़ायदा पहुँचा है कि आयु-भर उन्हें कोई खादिमा रखने की आवश्यकता नहीं हुई और प्रायः बहार महीने अपनी अक्ल और चालाकी से ऐसा फेर डालती हैं, कि कम से कम दो-चार लड़कियाँ इनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए हमेशा मौजूद रहती ही हैं !

पड़ोसिन की उदर-पूर्ति का जरिया किराए की वह दुकानें हैं, जो उन्हें 'तरका-शौहरी' से मिल गई हैं। इनमें महीने-भर की आय इतनी हो जाती है, कि एक पड़ोसिन, इनकी आने-जाने वाली लड़कियाँ, एक गाय, एक बकरी, (हर हफ्ते भाग जाने वाला) लड़का, एक मुर्गा, एक कुतिया और आठ मुर्गियाँ बड़ी बे-फिक्री के साथ महीने के तीस नहीं, तो छव्वीस दिन अवश्य गुज़ार देते हैं। बाक़ी के दिन आवश्यकता पड़ने पर पेशगी किराया ले कर गुज़ार लिए जाते हैं।

जब कभी क्या, आम तौर पर, ज्योंही माँ-बेटियाँ इकट्ठी हुई, कि सिनेमा में आई हुई नई फ़िल्म की मुनादी करने वालों की तरह शोर मचा कर सारा मुहल्ला सर पर उठा लेती हैं। नाश्ता करने के बाद जो कभी लिखने-लिखाने की धुन में कागज़-पेन्सिल सँभाल कर सहन में आ बैठे, और बेगम अपना सोना-पिरोना ले कर बैठ गई; तो माँ-बेटियाँ कानों के पर्दे फाड़ने लगती हैं, या उनकी मुर्गियाँ सहन में आ कर कुक्-कुक्-कुक्, कुक्-कुक्-कुक्-कुक्-ऊँ की आवाज़ लगा कर सारी विचार-धारा भिन्न-भिन्न कर देती हैं। बेगम से कई बार कहा कि माँ-बेटियों पर तो बस नहीं चलता, लेकिन इन कमबख्त मुर्गियों को तो कहीं ग़ारत कर दो; लेकिन बेगम कहती हैं कि पड़ोसियों की चीज़ अमानत होती है।

समझ में नहीं आता कि जिन लोगों को मुर्गियाँ पालने का शौक है, वह उन्हें चुगने और ग़लाज़त फैलाने के लिए पड़ोसियों की तरफ़ क्यों निकाल देते हैं?

पड़ोसिन मुर्गियाँ भेज कर अलग परेशान करती हैं। अभी पिछले एतवार की बात है कि सुबह मुँह-अँधेरे, पौने आठ बजे का अमल होगा कि हम बिस्तर पर पड़े हुए मीठी नींद के मज्जे ले रहे थे। बहुत ही दिलकश नज़्जारे नज़र आ रहे थे। कभी काशमीर की बादियाँ, कभी पेशवाग़ का स्टेशन और कभी हवाई जहाज़ के सपाटे! यकायक क्या देखते हैं कि गोया हम आवसारे नियागरा के पास आते जा रहे हैं, और हमारे

पीछे एक भारी लश्कर जंगे-अजीम बरपा करता हुआ चला आ रहा है—नोपें चल रही हैं, बम भी बरस रहे हैं, टैंक भी टकरा रहे हैं, मशीनगनें भी राउण्ड कर रही हैं—बोड़ों की हिनहिनाहट, जखिमयों की चीख-पुकार, हवाई जहाजों की गड़-गड़ाहट, मोटरों की खड़खड़ाहट और सबके साथ दुनिया के सबसे बड़े जल-प्रपात का शोर ! यह मालूम हो रहा था, गोया तामत आने में बस कुछ ही सेकेंड बाकी हैं !

यकायक हमने देखा कि एक बड़ा भारी गोला फटा, दो हवाई जहाज टकराए और पैन हमारे भिर पर गिरने लगे । हम चौंक कर उठ बैठे ।

होश ठीक करने के बाद देखते क्या हैं कि हमारी पड़ोसिन अपने छोकरे पर गरज रही हैं, और इसी शोर में सारा घर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मीटिंग बना हुआ है !

हमने आसमान की तरफ नज़र डाल कर अपनी सलामती का शुक्रिया अदा किया और बेगम से कहा, “सुना ! आज सब से पहिला काम यह होना चाहिए कि सारा सामान ‘पैक’ (Pack) हो जाए ।”

शोर के सबब से बेगम की समझ में न आया । आगे बढ़ कर कहने लगीं—“क्या ?”

हमने कहा—“असबाब पैक कर लो ।”

हँस कर कहने लगीं—“खैरियत ?”

“बस इस मकान में हमारा निवाह नहीं हो सकता। जब तक यह पड़ोसिन हैं, तब तक कोई आदमी, जो जन्म से बहरा न हो, इस मकान में नहीं रह सकता। यहाँ या तो कोई शुगर कैक्ट्री क्रायम रह सकती है या ऑयल एंजिन से चलने वाली फ्लॉवर मिल !”

कहने लगीं—“सुबह से यही आफत बर्पा है !”

“अजी, आज ही की सुबह क्या, यहाँ हर रोज ११ मई, सन् १८५७ ई० का ‘रिहर्सल’ होता है !”



प्रोफेसर साहब

वो बनावें क़ानून, हम उसे तोड़ते रहें,
फिर बताइए उनकी हमारी पटे कैसे ?

निया में क़ानून तोड़े बिना इन्सान रह ही नहीं सकता ।
क़ानून बनाए ही जाते हैं इस बात को मद्दे नज़र रख कर
कि वे तोड़े जाएँगे । मगर प्रोफेसर साहब न जाने क्यों इस
बात को नहीं समझते थे । आप ही बताइये कि कौन नौजवान
युनिवर्सिटी में पढ़ता हुआ सिनेमा न देखेगा और होस्टल का
क्रायदा बना हुआ था कि रोल कॉल के बाद बाहर न निकलो
तथा और भी इस तरह के अनाप-शनाप क़ायदे थे; नौकर को
चप्पन न लगाओ, बरामदे में मत नहाओ, सुबह के वक़्त, गाना
न गाओ, ग्रामोफोन न बजाओ, गर्मी में पङ्खा न चलाओ, रात
को दस बजे सो जाओ, सुबह पाँच बजे उठ जाओ । मगर यह न
मालूम था कि नियमों की पाबन्दी उनके उल्लंघनों से होती है ।
बहरहाल रूल बने ही रहे और लड़के भी सिनेमा जाते ही रहे ।
मौज से कटती रही । जब तक देशी राज्यों का इन्तज़ाम देशी

रहता था तब तक तो रियाया बची रहती थी, मगर ज्योंही उममें अंग्रेजी शासन की मुसैदी घुसनी थी, लोगों को राम-राज्य के बजाय रावण राज्य की याद आने लगती थी। हम लोगों को भी इस परम सत्य की अनुभूति का अवसर तब मिला जब प्रोफेसर गुप्ता साहब बॉर्डन बन कर पधारे। प्रोफेसर साहब की सफाई में यह तो जरूर कहना पड़ेगा कि उनके कानूनदा होने के सम्बन्ध में दो राय हो ही नहीं सकती। रोमन लॉ, हिन्दू लॉ तथा और भी इस क्रिम के कानून के अलावा उन्हें होस्टल के भी कानून मूजवानी याद थे। यही नहीं, वो उन लोगों में थे जो दुनिया को बड़ी सख्ती-दगी से देखते हैं और हर बात को फर्ज का ऊँचा दर्जा देते हैं। प्रोफेसर साहब ने इस बात को भी अपना फर्ज समझा कि होस्टल के उन सभी कानूनों को अमल में लाया जाए, फलतः नौकरों-चाकरों को बुला कर हिदायतें दे दी गई।

सुबह में बरामदे में खड़ा होकर शेर करने की तैयारी कर रहा था। तबीयत थड़ी मस्त थी, बड़े मजे में अलाप रहा था, शायद गाना था :

पाटनवाला का साबुन लगाया करो,
प्यारे नित उठ के दाढ़ी बनाया करो !

ऊपर के प्रोफेसर साहब उतरे और बड़ा घुन्ना चेहरा बनाए आगे से जाने लगे। गाना मेरे मुँह में ही रह गया।

मैंने पुकार कर पूछा, “फूल बाबू, आज ऐसे कटे-कटे क्यों घूम रहे हो ?”

फूल बाबू मुँह फुला कर बोले—“सब पता लग जाएगा, घबड़ाते क्यों हो ?”

मैंने समझा आज जरूर कुछ बात हो गई है। खैर जैसे-तैसे दाढ़ी बना कर नौकर को पुकारा—“अबे आज पानी नहीं लाया, नहाएंगे कैसे ?”

नौकर बोला—“ह, जूर साहब मना कीहिन हैं।”

मैंने कहा—“क्या मना कीहिन हैं, साहब के बच्चे, अब क्या नहाना बन्द हो जाएगा।”

“ह, जूर बाथ-रूम में नहा लेई !”

‘बाथ-रूम में नहीं जाएंगे, ले आ पानी फौरन।’

मगर अच्छा कह कर नौकर जो गायब हुआ तो वापस आने का नाम ही नहीं लिया। मैं तब में मेस की तरफ चला, जहाँ अमूमन नौकरों का अड्डा रहा करता था। इरादा कहार को अच्छी तरह ठोकने का था। रास्ते में ही प्रोफेक्टर साहब का कमरा था। तोबड़ा-सा मुँह लिये वह कुछ लिख रहे थे। मैंने अन्दर घुस कर पूछा—“क्या लिख रहे हो ?”

“रेजिगनेशन।”

“रेजिगनेशन”—मैंने चौंक कर पूछा।

“जी हाँ, आज से होस्टल में कानून का राज्य कायम हो गया। अब सुबह-सुबह बरामदे में खड़े होकर आप तानसेन

को चैलेंज नहीं दे सकते, नहाने भी हुआ, जूर को बाथ-रूम में ही जाना होगा, कमरे के सामने नहाना बहुत असभ्यता और अश्लीलता है।”

उसी दिन से होस्टल में सिविल वॉर या यों कहिए कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू हो गया। बाबजूद वॉर्डन साहब की लिखित नोटिसों, धमकियों और वॉर्निंगों के हम लोग क्रायदों को तोड़ते ही रहे, जो तोड़ने के लिये बनाए ही गए थे। वॉर्डन साहब ने एक नई हरकत की। कानूनन उन्हें होस्टल में राउण्ड लगाने का अधिकार जरूर प्राप्त था, परन्तु उनके पूर्ववर्ती वॉर्डनों ने सिवा हम लोगों को चायपार्टी की शिरकत या किसी के बीमार पड़ने पर देखने आने और इसी क्रिस्म के “कर्टसी कॉल” के कभी इस अधिकार का उपयोग नहीं किया था। प्रोफेसर गुप्ता साहब ने अब बाक्रायदा सुबह-शाम चक्कर लगाना शुरू किया। कई रोज़ तक मैं बचता रहा, एक रोज़ नहा कर कमरे के अन्दर दाखिल हुआ ही था, कि प्रो० गुप्ता की मनहूस शकल कोने से झलकी। फौरन खाट पर लेंट कर अपने को लिहाफ़ से ढँक लिया। प्रोफेसर गुप्ता ने कमरे के सामने ठहर कर बरामदे में बहते हुए पानी को गौर से देखा। बाल्टी में मेरी धोती भी पड़ी हुई थी। “यहाँ किसने नहाया है?” लड़कों ने, जो कि अब तक कमरों से निकल आए थे, अपनी अनभिज्ञता जाहिर की। मैं खाट पर पड़ा कराह रहा था और भुनभुना रहा था, “न जाने क्यों क्रम्बरत मेरे ही

रूम के आगे नहाते हैं, मुझे तो बुखार आया है नहीं तो उसकी होश दुस्त कर देता।”

वॉर्डन साहब ने नौकर को बुला कर वाल्टी ऊपर उठा कर रखने का हुक्म दिया और बोले, अगर आप लोगों ने यहाँ नहीं नहाया है तो यह आपकी नहीं हो सकती। खैर मैं अपने यहाँ रगवण लेता हूँ, जिन साहब की हो वह आकर ले जाएँगे। वाल्टी उठवा कर गुप्ता साहब चलते बने। मारे क्रोध के मेरा सर्वांग जल रहा था, बाकई मुझे उस वक्त इनकी गर्मी थी कि टेम्परेचर लेने पर १०० डिग्री अवश्य निकलता। यार लोग अलग हँस रहे थे, “बड़े खुराट बनते थे बच्चू अब धोती-वाल्टी वसूलो तो जाने।”

मैंने कहा, “खैर यह तो अभी हो जाएगा।” शाम को मैंने एक बिट्टी लिखी कि “सुबह मेरे कमरे के सामने से जो धोती आप उठवा ले गए हैं वह मेरे एक मेहमान की थी, उन्हें होस्टल-रूल का पता नहीं था, कमरे के सामने पानी रक्खा देव कर उन्होंने नहाया और संध्या करने के लिये छत पर चले गए, बाद में पता चला।”

धोती तो खैर आ गई मगर इस नोटिस के साथ कि “आगे से मेहमान बिना वॉर्डन साहब की इजाजत के होस्टल में न ठहरें।”

इसी क्रिस्म की मुठभेड़ रोज़ाना हो जाया करती था। गुप्ता साहब की वेहूदा हरकत रुकती न थी। अब उन्होंने रात को भी चक्कर लगाना शुरू किया। प्रोफ़ेसर साहब के कमरे में रोल-कॉल की स्लिप रद्द करती थी, अमूमन पहला आदमी, जो इतिफाक से गुज़रता, हम सब के लिये दस्तखत कर दिया करता था। इस अत्यन्त सुविधाजनक तरीक़े से यह लाभ हम लोगों को होता था, कि हाज़री के वक़्त होस्टल में रहने की ज़रूरत से बरी हो जाते थे, और बिना किसी दिक्कत के मार्केटिंग, सिनेमा वग़ैरह-वग़ैरह ज़रूरी काम कर सकते थे। गुप्ता साहब एक रोज़ रोलकॉल के वक़्त नीचे आए। प्रीफ़ेक्ट का रुम बन्द था, सारे ब्लॉक में सन्नाटा था। सिर्फ़ कोने वाले कमरे में हमारे होस्टल के सबसे योग्य विद्यार्थी विद्याध्ययन-रूपी महत्वपूर्ण कार्य कर रहे थे। दिवाल पर कील से स्लिप अटकी हुई थी और सब के दस्तखत मौजूद थे। दूसरे रोज़ प्रीफ़ेक्ट ने गुप्ता साहब के अत्यन्त नीच और अपने प्रति अविश्वासपूर्ण रवैय्ये के विरोध में इस्तीफ़ा दे दिया और गुप्ता साहब रोल कॉल के वक़्त खुद मौजूद रहने लगे। ब्लॉक का कोई भी सदस्य प्रीफ़ेक्ट होने को तैयार न था और गुप्ता साहब को भी हम पर विश्वास न था। गुप्ता साहब को यह सन्तोष था कि उन्होंने हम लोगों को होस्टल में रहने के लिये मजबूर कर दिया, और हमें यह सन्तोष था कि हमने गुप्ता साहब को इमारती ठीक़ेदार बना दिया। हम लोग जान-भू कर रोलकॉल के वक़्त लोटे लेकर

पाखानों की तरफ निकल जाते थे और इसी तरह के अन्य कानूनी या वैधानिक उपायों से उनको तंग करते थे।

बहरहाल हालत उस हद पर, जिसे सियासी जवान में क्राइसिस कहते हैं; पहुँच रहे थे। हम लोगों के गरम दल को यह वैधानिक तरीका नागवार महसूस हुआ और प्रोफेसर साहब के खिलाफ 'डिरेक्ट एक्शन' का एलान किया गया। दूसरे रोज मधुप जी प्रोफेसर साहब से बात बर रहे थे। प्रोफेसर साहब ने बड़े गौर के बाद कहा— यह तो बड़ी सीरियस बात है, आपने मुझसे क्यों नहीं कहा ?”

अजी साहब जब मामला बर्दाश्त के बाहर पहुँचा तब आप के पास आया, वर्ना मुझे स्नीकिंग (चुगलखोरी) से बड़ी नफरत है।”

“नहीं, नहीं, यह तो आप का फर्ज है। होस्टल में इस क्रिस्म की बात नहीं हो सकती, स्टूडेन्ट्स की मोरेलिटी हमारा लुक-आउट है, मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता।”

मधुप जी ने और भी गम्भीर होकर कहा, “नहीं साहब इससे भी ज्यादा की नौबत पहुँच गई है। महज डिंकिंग और और गैम्बलिंग ही नहीं, मैंने जब समझाने की कोशिश की तब प्यूरिटन कह कर खिल्ली उड़ाई गई और यह भी कहा कि अपने चाचा प्रोफेसर को भी भेज देना।” प्रोफेसर साहब का चेहरा लाल हो गया, “मैं आज शाम को जरूर इनक्वायरी करूँगा।”

‘अजी साहब तब तो सारा गुड़ गोबर हो जाएगा। साढ़े दस बजे के करीब महफिल जमती है, उससे थोड़ी देर बाद आप एकाएक वर्मा (अर्थात् मेरे) के रूम में नॉक करें।’

“अल राइट थैंक यू” आप वाकई शरीफ आदमी हैं।”

ग्यारह बजे रात को प्रो० गुप्ता दबे पाँव बत्तक में दाखिल हुए। रूम नौ के सामने रुके। दरार में से रोशनी आ रही थी और बड़े जोरों की भन्नाहट सुनाई पड़ रही थी। फिर गाने की आवाज़ आने लगी :

प्रेम का पुरवा, प्रेम का पत्तल, प्रेम का पड़ेगा अचार,
प्रेम के जून, प्रेम के चप्पल, प्रेम से पड़ेगे हजार।

“वाह-वाह डार्लिंग। एक बार कलेजे से लग जाओ, ओ हो प्रेम की चप्पल खाने के लिए चाँद खुजला रही है।”

प्रो० गुप्ता अब अपने की ज़वत न कर सके। हथौड़े की तरह उनका मुक्का दरवाज़े पर पड़ा और दरवाज़ा फ़ौरन खुल गया। गुप्ता साहब अन्दर घुस गए। कमरे का सीन देखने काबिल था। बिस्तर पर दुपल्ली टोपी लगाए मुँह में पान भरे एक साहब पंचम सुर में प्रेम का राग अलाप रहे थे। बीच में टेबुल था, उस पर शराब की बोतलों में लाल-लाल अंगूरी छल-छलता रही थी। एक नाजमीन नीली जॉरजेट की साड़ी पहने

चकराई-सी खड़ी थी। एक साहब उसके गले में हाथ डाले उसे शराब का जाम पिलाने की कोशिश कर रहे थे। दूसरे साहब घुटने के बल सीने पर हाथ रखे दर्दे-दिल की शिकायत कर रहे थे। गुप्ता साहब के समझ में न आया कि युनिवर्सिटी के स्वनाम धन्य वकील के नाम पर बने होस्टल के कमरे में खड़े हैं या दालमण्डी के किसी गोशे में ! उसके बाद प्रोफेसर साहब ने बिना कॉमा-फुल-स्टॉप की जो इंगलिस्तानी स्पीच भाड़ी उसका मतलब यही समझ में आया कि हमें होस्टल छोड़ने का हिटलरी हुक्म दिया जा रहा है और शोहदे-गुण्डे आदि अलकाजों से समादृत किया जा रहा है। स्पीच देकर गुप्ता साहब हाँफते हुए रुके मगर पाप कर्म में पकड़े जाने वालों को जैसी घबड़ाहट और बदहवासी होना चाहिये उसका हम पर नाम-निशान नहीं था।

मैंने कहा—“आखिर आप इतना नाराज़ क्यों हो रहे हैं ?”

बेशर्म बेहया निकालो इस चुड़ैल को। गेट आउट, गेट आउट। हँसी के ठहाके ने प्रोफेसर साहब का स्वागत किया। एक झटके से मैंने उस चुड़ैल की साड़ी खींच ली, उसके नीचे से सक्सेना साहब की, जो हमारे होस्टल की मशहूर व्यूटी थे, शकल निकल आई। प्रोफेसर साहब ने शराब की बोतल उठाई मगर उसमें तो लाल पानी भरा हुआ था जिससे वह भीग भी गए। मैंने निहायत नम्रता से उन्हें समझाया कि हम लोग महज़ युनिवर्सिटी की जुबली के लिए ड्रामे की तैयारी कर रहे थे।

प्रोफेसर साहब ने मधुप जी की ओर, जो उनके पीछे ही कमरे में दाखिल हुए थे, आग्नेय नेत्रों से देखा। मधुप जी बोले “सर; मुझे क्या मालूम था, मैं तो समझता था कि ये लोग वास्तव में डिट्किंग आदि करते थे। हम लोगों ने फिर एक ठहाका लगाया ? प्रोफेसर साहब ने पीछे घूम कर बाहर का रास्ता लिया। डाय-रेक्ट एक्शन की सफलता बड़ी शानदार थी !!



शहीद

जुलूस अब मरघट बाजार से गुजर रहा था। यकायक जुलूस के नेता को, जिसकी लम्बी दाढ़ी देख कर यह संदेह होता था जैसे यह दाढ़ी नहीं झाड़न है, खयाल आया कि जुलूस जरूरत से ज्यादा खामोश है। अतएव उसने पूरी शक्ति से चिल्ला कर कहा—“दुष्टता आन्दोलन।”

हजूम ने एक स्वर से नारा लगाया—“ज़िन्दाबाद !”

‘प्रेम व मुहब्बत’

“मुर्दाबाद ।”

“हम क्या चाहते हैं ?”

“दंगा-फ़साद ।”

नेता को विश्वास हो गया कि हजूम में ज़िन्दगी के काफी आस र हैं। जुलूस बाजार से गुजरता हुआ गिरगट रोड की तरफ बढ़ने लगा ।

मातादीन उस जुलूस का नफ़रत रोड से पीछा कर रहा था। उसके कपड़े गन्दे, बाल बड़े हुए और निगाहें भूखी थीं ।

पचासवीं बार उसने अपने सूखे होठों पर जीभ फेरते हुए अपने दायें-बायें चलने वाले व्यक्तियों को जेबों की ओर निगाह दौड़ाई और पचासवीं बार उसे निराशा हुई। वह दिल ही दिल में हैरान था। किसी व्यक्ति की जेब में फूटी कौड़ी तक न थी। फूटी कौड़ी तो खैर बहुत बड़ी बात थी, यहाँ तो ऐसे लोग भी थे जिनके शरीर पर फटी हुई कमीज तक नहीं थी। मातादीन को उन लोगों पर अत्यधिक क्रोध आया और उसने मुँह ही मुँह में उन्हें दो-एक मोटी गालियाँ दीं। उसका जी चाह रहा था कि जुलूस के नेता की लम्बी दाढ़ी पकड़ कर उससे कहे कि दुष्टता आन्दोलन बहुत खूब है लेकिन यह कहाँ की दुष्टता है कि किसी आदमी की जेब में इतने पैसे भी नहीं हैं कि एक भूखा जेब-कतरा जेब काट कर खाना खा सके !

आज मातादीन का तीसरा उपवास था। भूख के कारण वह निठाल हो रहा था, उसका दिमाग चकरा रहा था और हर कदम पर उसे ऐसा अनुभव हो रहा था कि मानो अभी लड़खड़ा कर जमीन पर गिर पड़ेगा। लेकिन इतने बड़े जुलूस में लड़खड़ाना भी तो कठिन था। उसके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ इतनी अधिक भीड़ थी कि अगर वह गिरना चाहता तो भी शायद न गिर सकता। अचानक जुलूस एक चौराहे पर खड़ा हो गया। आगे ट्रैफिक का 'रश' था। जुलूस के आदमी आपस में तरह-तरह की बातें करने लगे, किसी ने कहा—
“सेक्रेटेरियट अब नजदीक है।” किसी ने कहा—“आज पुलिस

बाधा नहीं डाल रही है।” मातादीन ने अपने दाहिनी तरफ़ खड़े हुए व्यक्ति की जेब की ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखा। बारीक मलमल से उसे दो-एक रूपहले सिक्के झलकते हुए दिखाई पड़े। उसके सूखे होठों पर मुस्कराहट की एक झल्की-सी लहर दौड़ गई। वह उस आदमी के और निकट सरक कर उपयुक्त अवसर की राह देखने लगा। उसने एक-आध बार उस आदमी की आँख बचा कर अपना हाथ जेब की तरफ़ बढ़ाने की कोशिश की लेकिन उसे जेब काटने का साहस न हुआ। दो-चार मिनट वह उसी सोच-विचार में खड़ा रहा। आखिर उसने हिम्मत से काम लेते हुए एक बार और कोशिश करने का इरादा किया। उसने धीरे से अपना हाथ उस आदमी के कंधे पर रखते हुए कहा—‘क्यों जी! यह जुलूस अब चलेगा भी या नहीं?’ इससे पहले कि वह आदमी उसे जवाब देता, किसी ने पीछे से आकर उसकी पीठ पर हाथ मारते हुए कहा—‘अरे मेरे चाँद! तू इस मजमे में क्या कर रहा है?’ मातादीन ने घूम कर देखा, वह आवाज़ उसके हमपेशा कल्लू शेख की थी। मातादीन ने उसे आँख मारते हुए चुप रहने का इशारा किया। लेकिन कल्लू शेख चुप रहने वाला आदमी न था। उसने मातादीन का हाथ दबाते हुए धीरे से उसके कान में कहा—‘देख बेटा! यह बात ठीक नहीं। जुलूस मेरी क्रौम के लोगों का है। तुम यहाँ.....!’

मातादीन ने उसकी बात काटते हुए उसी तरह धीरे से

कहा—“नाराज मत हो यार ! आधा हिस्सा तुम्हारा रहा ।” अपने स्वभाव के विपरीत कल्लू शेख ने जिन्दगी में पहली बार अपने सहकारी की बात मान ली । जुलूस के लीडर ने एक बार फिर एक जोशीला नारा लगाया और जुलूस सेक्रेटेरियट की तरफ़ रवाना हुआ । कल्लू शेख और मानादीन साथ-साथ चलने लगे ।

सेक्रेटेरियट पहुँचने से पहले जुलूस को एक सँकरी गली से गुज़रना था जिसके बाहर पुलिस ने मजमे को रोकने का पूरा इन्तज़ाम कर रक्खा था । जैसे ही जुलूस उस गली के आखिरी हिस्से पर पहुँचा, एक मैजिस्ट्रेट ने, जो घोड़े पर सवार था, उसे हट जाने का हुक्म दिया । मजमे ने नेता की ओर देखा । नेता ने मैजिस्ट्रेट की आज्ञा की परवाह न करते हुए एक के बाद एक करके चार-पाँच नारे लगवाने के बाद जुलूस को आगे बढ़ने के लिए कहा । मैजिस्ट्रेट ने अन्तिम चेतावनी दी किन्तु जुलूस पर इसका कोई खास असर न पड़ा । अन्त में जब मजमे ने पुलिस पर पत्थर फेंकना शुरू कर दिया तब मैजिस्ट्रेट ने पुलिस को लाठी चार्ज का हुक्म दे दिया । मजमे में भगदड़ मच गई । बहुत से लोग उल्टे पाँव सँकरी गली की तरफ़ दौड़े लेकिन गली तंग थी और मजमा बढ़ा । इस भगदड़ में कई बूढ़े और बच्चे रौंद गये । दर्जनों आदमियों को चोटें आईं । भागते समय मातादीन गिर पड़ा । पुलिस अब गली में आ पहुँची थी और लोग सख्त

घबराहट की हालत में भाग रहे थे। मजमे का एक रेलगाड़ी मातादीन के ऊपर से गुजरता हुआ गली की एक मस्जिद में जा घुसा। इतने में पुलिस अफसर ने सीटी बजाई। कुछ लोग सेक्रेटेरियट के दफ्तर में भागने में सफल हो गए थे। उन्हें गिरफ्तार करना था। पुलिस के सिपाही सीटी की आवाज सुन कर तंग गली से बाहर की ओर दौड़े।

पुलिस के चले जाने के बाद जब लोगों के होश ठिकाने हुए तब उन्होंने इधर-उधर नज़र डाली। कुछ बच्चे डर के मारे ज़मीन पर पड़े हुए थे। उन्हें उठा कर अपने-अपने घरों को चले जाने के लिये कहा। कुछ बूढ़े जखमी हो गये थे, उनकी मरहम-पट्टी की गई। मातादीन को बेहोशी की हालत में उठा कर मस्जिद में लाया गया। उसके मुँह पर ठण्डे पानी के छींटे दिए गये। उसे हिला-हिला कर जगाने की कोशिश की गई लेकिन मातादीन बेसुध ज़मीन पर पड़ा रहा। एकाएक किसी को ख्याल आया कि इसकी नाड़ी टटोली जाए। उसने मातादीन की नाड़ी पर हाथ रक्खा और ताज्जुब व अफसोस के मिले-जुले स्वर में कहा—“अरे यार, यह तो खात्म हो गया।”

एक पनवाड़ी ने दाँत निकालते हुए कहा—“तभी तो मैं सोँचूँ कि यह साला उठे क्यों नहीं?”

मातादीन की मृत्यु का समाचार तुरन्त दुष्टता आन्दोलन के दफ्तर में पहुँचाया गया। देखते ही देखते मस्जिद में हजारों

लोगों का जमघट हो गया। आन्दोलन के बड़े-बड़े नेता मोटरों में सवार होकर मस्जिद में पहुँच गए। लोग एक दूसरे से पूछने लगे—“यह कौन आदमी था?” “कहाँ का रहने वाला था?” “क्या वह आन्दोलन का बाकायदा मेम्बर था?” “क्या वह आन्दोलन का हमदर्द था?”

दुष्टता आन्दोलन के किसी नेता को इस व्यक्ति के बारे में कुछ मालूम न था। वे केवल इतना जानते थे कि इसका नाम मातादीन है क्योंकि यह नाम उसकी बाँह पर लिखा हुआ पड़ा गया था। लेकिन उन्होंने एकमत से मातादीन को ‘शहीद’ की पदवी दे दी और एलान किया कि इस शहीद का जनाजा बड़ी धूमधाम से निकाला जाए। आन्दोलन के अखबारों को हिदायत भेजी गई कि ‘शहीद मातादीन’ के अवसान की खबर बड़े-बड़े टाइपों में छापी जाए। अखबारों ने धड़ाधड़ ‘सलिमेण्ट’ निकालने शुरू कर दिए जिनमें स्वर्गीय आत्मा की राष्ट्रीय सेवाओं का उल्लेख करते हुए दुष्टता आन्दोलन से पहले शहीद को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

‘पिशाच पत्र’ नामक दैनिक ने लिखा—“शहीद मातादीन दुष्टता आन्दोलन के संस्थापकों में से थे! आप एक उच्च घराने के दीप थे। जन-सेवा और राष्ट्र-सेवा की भावना आपको विरासत में मिली थी। आपके परदादा ‘दुष्टता आन्दोलन’ के एक मुख्य स्तम्भ थे। मातादीन जी की मृत्यु से देश को जो हानि हुई है उसकी पूर्ति सहज में नहीं हो सकती।”

साप्ताहिक 'घृणादृष्ट' ने लिखा—“हमें स्वर्गीय मातादीन जी की व्यक्तिगत मित्रता का सौभाग्य प्राप्त था। आप बड़े ही शिष्ट और मिलनसार व्यक्ति थे। यदि उन्हें देवता कहा जाए तो इसमें रक्ती भर भी अतिशयोक्ति न होगी। आपका जीवन मानव-जाति की भलाई के कामों में ही व्यतीत हुआ। आपकी मृत्यु से हमें व्यक्तिगत रूप से दुख पहुँचा है।”

शहीद मातादीन की अर्थी के जुलूम में लगभग एक लाख आदमी शामिल हुए और स्मशान तक वायुमण्डल ‘शहीद मातादीन जिन्दावाद’ के नारों से गूँजता रहा। शहीद मातादीन की चिता को जलाने के बाद एक बहुत बड़ी शोक-सभा हुई जिसमें भाषण देते हुए दुष्टता आन्दोलन के नेता ने कहा ‘सज्जनों! हम एक बहुत बड़े शहीद को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। शहीद मातादीन जी ने अपनी बेमिसाल कुर्बानी से सिद्ध कर दिया है कि दुष्टता आन्दोलन में ऐसे सफ़ररोश मौजूद हैं जो समय आने पर प्राणों का बलिदान दे देते हैं किन्तु आन्दोलन का झण्डा झुकने नहीं देते। (तालियाँ) मातादीन जी पुलिस के जालिमाना लाठी-चार्ज के शिकार हुए (शेम-शेम) उनकी छाती और सर पर छः गहरे घाव लगे। उनकी जान बचाने की प्रत्येक सफल चेष्टा की गई ले कन अफ़सोस कि वे बच न सके। आज शहीद मातादीन जी हमारे बीच नहीं लेकिन उनकी कुर्बानियों की याद युगों तक हमारे दिलों को गर्माती रहेगी। जिस सच्चाई और नेकनियती से उन्होंने दुष्टता आन्दो-

लन की सेवा की है वह आप सब पर प्रगट है। यदि मैं यह कहूँ कि उन्होंने अपने रक्त से हमारे आन्दोलन को सींचा है तो यह गलत न होगा। मातादीन जी के सामनेस देव एक उद्देश्य रहा कि जाति के प्रत्येक व्यक्ति की सहायता की जाए और जहाँ तक हो सके इस पिछड़ी हुई कौम का दामन मोतियों से भर दिया जाए।” (तालियाँ)

मजमे ने जोश से बेकाबू होकर “शहीद मातादीन जिन्दा-बाद” के नारे लगाए और सभापति के भ्रमण की शेषांश इस कोलाहल में सुना न जा सका।

दूर एक कोने में कल्लू शेख ने एक आदमी की जेब काटते हुए होठों ही होठों में मुस्कुरा कर कहा— ‘साला, शहीद कहीं का।’



बदचलन

मिजली की रौशनी में जगमगाती दुकानों से घिरा हुआ अमीनाबाद पार्क सन्ध्या के समय बड़ा रमणीक हो उठता है। चारों तरफ सड़कों पर इक्के, ताँगे और मोटरों की चिल्ल-पों, रास्ता चलते लोगों की चहल-पहल और इसी में मिश्रित आलू-कचालू और जल-जीरा की विचित्र तारीफें तटस्थ दर्शकों को बड़ी लुभावनी मालूम पड़ती हैं।

दफ्तर में दिन-भर से पिसे हुए बाबुओं के घड़ी भर तबीयत बहलाने के लिए तो वह तीर्थ-स्थान है ही, साथ में, शौकीन तबीयत वालों के लिए भी वह विशेष आकर्षक है—इसलिए कि अक्सर औकात उन्हें 'अच्छी चीजों' के दर्शन हो जाया करते हैं—खास कर मंगल से दिन ! उनकी किम्मत से अगर कहीं 'आँखें चार' हो गईं, तो मित्र-मण्डली में दिली परेशानी का इज्जदार करने के लिए काफी मसाला मिल जात है। अस्तु, शाम को अच्छी-खासी भीड़ हो जाया करती है।

रोज की तरह आज भी मन्द-मन्द स्फूर्तिदायक हवा में ठण्डी-ठण्डी घास पर हम लोगों की बैठक जमी हुई थी। नवयुवकों की बात-चीत का क्षेत्र प्रायः सङ्कुचित ही रहता है—सिनेमा स्टार्स या कॉलेज की लड़कियाँ !

उस दिन हमारे बहस-मुवाहसे का मसाला था चाल-चलन। हम लोगों की गोष्ठी में एक उल्लेखनीय सज्जन हैं। वे अपने-आपको मनोविज्ञान का विशेषज्ञ समझते हैं। वे हैं या नहीं, यह तो ईश्वर जाने, लेकिन वे हम लोगों के लिए मनोरञ्जन का साधन अवश्य हैं !

“लखनऊ निहायत ‘करप्ट’ जगह है।”—आपने अधिकार जताते हुए कहा।

“मेहरबान, यह तो हर बड़े शहर और तीर्थ-स्थान के बारे में कहा जा सकता है। इसमें कौन-सी नई बात है।”—एक साहब ने टोका।

“जी !”—उन्होंने जबड़ा नेनकाल, आँखें तरेरते हुए, उत्तेजित हो कर कहा—‘लखनऊ ‘सेण्टर’ है इन बातों का सेण्टर ! यहाँ ऐसे-ऐसे अड्डें हैं, कि आँखें खुल जाएँ। दूर ही क्यों जाइए, इस पार्क में आपको ऐसे दलाल मिल जाएँगे, जो प्राइवेट घरों में आपकी पहुँच करा सकें।’

“ग़ज़ब करते हो यार।” दूसरे सज्जन बोले—‘तुम्हीं कहो, एक अर्सा हो गया हम लोगों को यहाँ बैठते। कभी

कोई ऐसी घटना सामने आई ? हाँ, कुछ अच्छी शक्तें देख कर आँखें जरूर तृप्त हुईं, किन्तु यह तो कोई 'करपशन' नहीं है।”

“बड़े बुद्धू हो !” वे किञ्चित् अधीर हो कर बोले—“ये सब बातें विज्ञापन करा के थोड़े ही की जाती हैं। ‘जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ !”

“तो फिर हाथ कंगन को आरसी क्या ? हमें भी गहरे पानी में पैठवा दो न, भाई।”—तीसरे सज्जन बोले।

“जी हाँ, यह भी क्या खाना बनाया और चट्ट ! अरे, भाई ! यह तो मछली का खेल है, कभी जाल में, और कभी बाहर !”—उन्होंने कहा।

“क्या म्याँ ! हटने लगे न पोछे ? हम तो जानते ही थे।” हमने ताना दिया।

हम लोगों ने सर्व-सम्मति से तय किया, कि मनोवैज्ञानिक सहोदय को अपनी बात प्रमाणित करनी ही होगी।

पाँच-छः बार पार्क का चक्कर लगाने पर भी उनको कोई ऐसा सूत्र नहीं मिला, जिससे वे अपनी बात पूरी कर सकते। किन्तु एकाएक वे रुक गए, कहने लगे—“देखो, वह औरत ऐसी-वैसी ही मालूम पड़ती है। तुम लोगों में से एक ही साहब हमारे साथ आएँ।” हम साथ हो लिए।

देखने में वह सुन्दर अवश्य थी। उसके साथ एक पाँच-छः बरस का बच्चा था।

“देखते हो, उसके साथ बच्चा है, हमारी खोपड़ी फालतू नहीं है।”—हमने कहा।

इतने ही में बच्चा रो उठा, वह बेतरह मचल रहा था।

मित्र महोदय ने अवसर का इस्तेमाल किया। पास जा कर सहानुभूति दिखाने लगे—“यह आप को परेशान कर रहा है। क्या मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ?”

उसने उत्तर न दिया। बच्चे को तीन-चार तमाचे जड़ दिए और फिड़का—“भूख-भूख क्यों चिल्ला रहा है। चुप रह। यहाँ क्या खाने को मिलेगा?”

मित्र-महोदय ने मिठाई ला कर सामने रख दी।

“आपने नाहक ही.....।”

“ओह, कोई बात नहीं। इससे क्या हुआ। कोई आपके साथ है नहीं क्या?—नहीं तो मैं ही आपको पहुँचा आऊँ। कहाँ है घर आपका।”—वे बात काट कर बोले।

“कहाँ बताऊँ, कहाँ है घर?”—उसने कहा।

हमें तो उसकी वाणी में करुणा और कृतज्ञता का ही आभास मालूम पड़ा।

“तो चलिए, कहीं घूमा ही जाए। यहाँ बैठे-बैठे क्या करिएगा?”—उन्होंने अपना आखिरी हाथ खेला।

यह हिम्मत ! मैं तो स्तम्भित रह गया । लेकिन मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब मैंने उसे गम्भीरतापूर्वक और शान्ति के साथ पूछते सुना—“कहाँ चलिएगा ?”

“पहले रेस्टराँ चलिए । खाया-पिया जाए । दस-पन्द्रह रुपए की कोई बात नहीं । फिर देखा जाएगा ।” मैं तो दंग रह गया था उनकी ‘मनोविशेषज्ञता’ देख कर !

“लेकिन घंटे-भर में तो आ जाइएगा न ? नहीं तो मेरे पति व्यर्थ राह देखेंगे ।”—उसने पूछा ।

मुझे यह बात कुछ हास्यास्पद-सी लगी । मुझसे न रहा गया । “माफ़ कीजिएगा ! आपके पति.....!”

वह तमक कर मेरी ओर मुखातिब हुई—“मैं आपके साथ जा रही हूँ, तो यह न समझिएगा, कि.....” वह पूरी बात न कह सकी, और फूट-फूट कर रोने लगी ।

“लेकिन जब आप राजी ही से चल रही हैं, तो यह रोना क्यों ?” शायद मेरी वाणी में कुछ कठोरता थी ।

“तो सुनिए ।” वह बोली—“दो महीने हुए, मेरे पति की नौकरी छूट गई । जो कुछ था ख़ातम हो गया । मक़ान से भी निकाल दिए गए, इसलिए कि छः महीने का किराया बाक़ी है । हम तीनों चार दिन से भूखे हैं । पति कुलीगिरी करने गए हैं,

लेकिन वे भूखे क्या बोझ ढो पाएँगे । हम तो भूखों मर सकते हैं, किन्तु यह बच्चा ! अब शायद आपकी तबीयत पूरी कर इसका पेट भर सकूँ ।”

उफ् ! मैं सिर से पैर तक काँप उठा !! हम और वह !!! बदचलनी का एक यह भी पहलू था !

